https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISION IAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

UNIT-1-10(PART-1)

भारतीय संविधान एवं शासन

2019

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. परिचय 3

1.1. संविधान क्या है? 3

1.2. संविधान के कार्य 3

1.3. संविधानवाद (Constitutionalism) क्या है? 3

1.3.1 भारत में संविधानवाद 4

2. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं 4

2.1. लिखित एवं सबसे विस्तृत संविधान 4

2.2. नम्यता एवं अनम्यता का समन्वय 5

2.3. लोकतांत्रिक गणराज्य 6

2.4. सरकार का संसदीय स्वरूप 6

2.4.1. संसदीय संप्रभुता एवं भारतीय संसद की स्थिति 6

2.5. संघीय और एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण 7

2.6. असममितीय संघवाद 9

2.7. मौलिक अधिकार 9

2.8. राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत 9

2.9. मूल कर्तव्य 10

2.10. पंथनिरपेक्ष राज्य 10

2.11. स्वतंत्र, निष्पक्ष और एकीकृत न्यायपालिका 10

2.12. एकल नागरिकता 10

2.13. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार 10

2.14. आपातकालीन शक्तियां 11

2.15. शक्तियों का पृथक्करण 11

2.16. स्वतंत्र अभिकरणों की व्यवस्था 12

3. भारतीय संविधान के स्रोत 12

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1. परिचय

1.1. संविधान क्या है?

- संविधान विशिष्ट कानूनी वैधता वाला एक विधिक दस्तावेज़ है। इसमें राज्य के मूलभूत संस्थानों की स्थापना का ढांचा (framework) निहित होता है। यह विभिन्न संस्थानों की कार्य प्रणाली को नियंत्रित करने वाले मूल सिद्धांतों को निर्दिष्ट करता है। इसके साथ ही यह विभिन्न संस्थानों की संरचना, संघटन, अधिकार क्षेत्र एवं उनके प्रमुख जनादेश को भी निर्धारित करता है।
- वस्तुतः यह विभिन्न संस्थानों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को परिभाषित करता है तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में नागरिकों और राज्य के मध्य संबंधों का संचालन करता है। संक्षेप में यह किसी राष्ट्र की नियम पुस्तिका है जो उस समाज और उसके कानूनों को नियंत्रित करती है।
- संविधान, राज्य के शासकीय निकायों द्वारा अनुसरण की जाने वाली नीतियों को भी दर्शाता है। चूंकि भारत एक लोकतंत्र है, अत: इसका संविधान नागरिकों को मूल अधिकारों की गारंटी प्रदान करता है। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से मूलभूत सामाजिक-राजनीतिक मूल्यों को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है।

1.2. संविधान के कार्य

संविधान (लिखित या अलिखित) की महत्वपूर्ण राजनीतिक महत्ता होती है। इसके अनेक प्रकार्य होते हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- **विचारधारा की अभिव्यक्ति:** यह किसी राष्ट्र-राज्य के दर्शन एवं विचारधारा को दर्शाता है।
- **मूलभूत कानून की अभिव्यक्ति**: संविधान मूलभूत कानूनों को प्रदर्शित करता है। इन कानूनों को एक प्रक्रिया के माध्यम से सामान्यतया संशोधित या परिवर्तित किया जा सकता है, जिसे संविधान संशोधन कहा जाता है। कुछ विशेष कानून भी होते है, जो नागरिकों के अधिकारों पर केंद्रित होते हैं; उदाहरणस्वरुप अभिव्यक्ति, धर्म, सम्मेलन, प्रेस आदि की स्वतंत्रता से सम्बंधित अधिकार।
- **संगठनात्मक ढांचा:** यह सरकार के लिए एक संगठनात्मक ढांचा प्रदान करता है। यह विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के कार्यों, उनके अन्तर्सम्बन्धों, उनके अधिकारों पर प्रतिबंधों आदि को परिभाषित करता है।
- **सरकार के स्तर**: संविधान सामान्यत: सरकार के विभिन्न घटकों के स्तरों को प्रदर्शित करता हैं। आम तौर पर यह संविधान द्वारा निरुपित किया जाता है कि वह संघीय है, परिसंघीय है या एकात्मक है। यह राष्ट्रीय और प्रांतीय सरकारों की शक्तियों को भी निरुपित करता है। भारत में तो यह स्थानीय सरकार की शक्तियों को भी निरुपित करता है।

उदाहरण:

सोवियत संविधान में मुख्यतः विचारधारा की अभिव्यक्ति थी। उसमें संगठनात्मक ढांचे की अभिव्यक्ति कम थी। इसके विपरीत अमेरिकी संविधान, तत्कालीन सरकार के दर्शन की अभिव्यक्ति की तुलना में सरकारी संगठन एवं शासन पद्धति अभिव्यक्ति अधिक है।

1.3. संविधानवाद (Constitutionalism) क्या है?

सर्वप्रथम हमें **संविधान** और **संविधानवाद** के मध्य अंतर समझने की आवश्यकता है।

- राज्य सत्ता में निहित **बाध्यकारी शक्ति** का शासकों द्वारा मनमाने ढंग से प्रयोग किया जा सकता है। संविधान का निर्माण राज्य सत्ता के विरुद्ध एक सुरक्षा तंत्र के रूप में किया जाता है। इस व्यवस्था को जो लिखित (सामान्यत:) या अलिखित संविधान के माध्यम से सरकारों या शासकों को क्षेत्राधिकार के भीतर रहने के लिए बाध्य करती है, उसे संविधानवाद कहा जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संविधानवाद का तात्पर्य है कि राजनीतिक शक्ति का प्रयोग, सीमाओं, निर्बंधनों, नियंत्रण और नियमों के अंतर्गत किया जाएगा। संविधानवाद की अवधारणा में शक्ति के निरंकुश एवं अधिनायकवादी प्रयोग के विरुद्ध **'सीमित सरकार'** और **'विधि के शासन'** के सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है।

के.सी.व्हेयर एवं डब्ल्यू जी एंड्रयूज के अनुसार संविधानवाद का अर्थ है:

- शक्तियों का विभाजन, न की शक्तियों का केन्द्रीकरण
- समाज में बहुमत हितों की स्वीकृति
- अधिनायकवादी या तानाशाही नेतृत्व की अनुपस्थिति
- व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर न्यूनतम प्रतिबंधों का आरोपण

कार्ल जे फ्रेडरिक के अनुसार, **शक्तियों का विभाजन** संविधानवाद का सबसे महत्वपूर्ण आधार है। संविधानवाद राजशाही या गणराज्य, अभिजात्य वर्गीय राज्य या लोकतंत्र में विद्यमान हो सकता है यदि वहाँ शक्तियों का विभाजन व्याप्त है।

1.3.1 भारत में संविधानवाद

संविधानवाद भारतीय संविधान में भी विद्यमान है। निम्नलिखित विशेषताएं इसका साक्ष्य है:

- लिखित संविधान
- संसदीय लोकतंत्र
- विधि का शासन
- मूल अधिकार
- शक्तियों का पृथक्करण तथा नियंत्रण एवं संतुलन
- लचीला संविधान तथा अपरिवर्तनीय आधारभूत ढांचा
- सरकार का संघीय स्वरुप
- स्वतंत्र न्यायपालिका और न्यायिक समीक्षा

2. भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषताएं

- संविधान की प्रमुख विशेषताएं स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने वाले लक्षण या विशेष बातें होती हैं। भारतीय संविधान इन्हीं विशिष्ट लक्षणों के माध्यम से विभिन्न वैचारिक नियम और मूल्यों के मध्य समन्वय स्थापित करता है। ये सब विशिष्ट लक्षण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के ऐतिहासिक मूल्यों से प्रेरित रहे हैं, जो भारतीय संविधान की सफलता को आगे बढाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

2.1. लिखित एवं सबसे विस्तृत संविधान

- भारतीय संविधान एक लिखित संविधान है। इसके साथ ही साथ यह विश्व के सभी देशों के संविधान की तुलना में सबसे अधिक विस्तृत है। मूल संविधान में 395 अनुच्छेद एवं 8 अनुसूचियां सम्मिलित थी, जिनमें संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से कई परिवर्तन किये गए हैं। अप्रैल 2017 तक इसमें 25 भाग, 12 अनुसूचियों और 5 परिशिष्टों सहित 448 अनुच्छेद हैं। 1950 में अधिनियमित होने के पश्चात् संविधान संशोधन हेतु 123 संविधान संशोधन विधेयक प्रस्तुत किये गए हैं तथा 101 संविधान संशोधन कानून पारित किये गए हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

हालांकि अनुच्छेद 395, संविधान का अंतिम अनुच्छेद है, परन्तु अप्रैल 2017 तक अनुच्छेदों की कुल संख्या 448 है। संशोधन के माध्यम से जोड़े गए नए अनुच्छेद, मूल संविधान में सम्बंधित भाग में सम्मिलित कर दिए गए हैं। अनुच्छेदों के मूल क्रम को उलट-पुलट नहीं करने के उद्देश्य से नए अनुच्छेद अल्फान्यूमेरिक सूची के अनुसार सम्मिलित किये गए हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा के अधिकार से संबंधित अनुच्छेद 21A, 86 वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में सम्मिलित किया गया था।

संविधान के विस्तृत होने के पीछे विभिन्न कारक जिम्मेदार हैं:

- सबसे प्रमुख कारकों में से एक यह है कि संविधान निर्माताओं ने विभिन्न स्रोतों और विश्व के बहुत से अन्य संविधानों से कई उपबंध ग्रहण किये थे। जैसे संविधान निर्माताओं ने प्रशासनिक विवरण से संबंधित विषयों पर प्रावधान निर्माण हेतु **भारत सरकार अधिनियम,1935** का अनुसरण किया गया तथा उसकी कई विशेषताओं को बनाए रखा गया।
- दूसरा, भारत से सम्बंधित विशिष्ट मुद्दों के लिए प्रावधान निर्मित करना आवश्यक था, जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और पिछड़े क्षेत्रों हेतु विभिन्न प्रावधानों का होना।
- तीसरा, केंद्र-राज्य संबंधों में उनके प्रशासनिक, विधायी एवं वित्तीय संबंधों तथा अन्य गतिविधियों के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं के लिए विस्तृत प्रावधान किए गए हैं।
- चौथा, चूंकि भारतीय राज्यों के लिए पृथक संविधान नहीं है, अतः राज्य प्रशासन से सम्बंधित प्रावधान भी भारतीय संविधान में सम्मिलित किये गए हैं।
- पाँचवां,स्थानीय स्वशासी संस्थाओं से सम्बन्धित प्रावधान भी भारतीय संविधान में सम्मिलित किये गए हैं।
- इसके अतिरिक्त, संविधान को आम नागरिकों के लिए सुस्पष्ट बनाने हेतु व्यक्तिगत अधिकारों, राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों की एक विस्तृत सूची एवं प्रशासकीय प्रक्रिया की जानकारी संविधान में समाविष्ट की गयी है।

2.2. नम्यता एवं अनम्यता का समन्वय

- भारतीय संविधान विशुद्ध रूप से न तो कठोर या अनम्य है और न ही नम्य या लचीला है। इसमें कठोरता और लचीलेपन का समन्वय है। संविधान के कुछ भागों को संसद के साधारण कानून बनाने की प्रक्रिया द्वारा संशोधित किया जा सकता है। हालांकि कुछ प्रावधानों में संशोधन तभी किया जा सकता है, जब इस उद्देश्य के लिए एक विधेयक संसद के प्रत्येक सदन के कुल सदस्यों के बहुमत तथा सदन में उपस्थित एवं मतदान में भाग लेने वाले सदस्यों के कम से कम **दो-तिहाई बहुमत** से संसद के प्रत्येक सदन में पारित हो जाता है।
- साथ ही कुछ अन्य ऐसे प्रावधान भी हैं जो उपरोक्त विधि द्वारा संशोधित किये जा सकते हैं परन्तु उन्हें राष्ट्रपति के समक्ष अनुमति हेतु प्रस्तुत करने से पूर्व कम से कम आधे राज्यों का अनुसमर्थन आवश्यक है। यह भी ध्यान दिया जाना चाहिए कि संविधान संशोधन विधेयक लाने की शक्ति केवल संसद में निहित है, राज्य विधानसभाओं में नहीं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संविधान सभा में **पंडित नेहरू** के शब्द: "यद्यपि हम संविधान को इतना दृढ़ और स्थायी बनाना चाहते हैं जितना हम बना सकते हैं, फिर भी संविधान में कोई स्थायित्व नहीं है। संविधान में कुछ लचीलापन होना चाहिए। यदि आप कुछ भी कठोर और स्थायी बनाते हैं, तो आप राष्ट्र के विकास, जीवन के विकास... आदि को रोक देते हैं। किसी भी स्थिति में, हम इस संविधान को इतना कठोर नहीं बना सकते थे कि बदलती परिस्थितियों के अनुसार इसका पालन नहीं किया जा सके। जब विश्व में अशांति है और हम अत्यंत तीव्र संक्रमण काल से गुजर रहे हैं, तब हम जो आज करते है संभवतः वह भविष्य में पूर्णतया लागू नहीं हो सकता है।"

2.3. लोकतांत्रिक गणराज्य

- भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत की संप्रभुता भारत के लोगों में निहित है। वे सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से स्वयं को प्रशासित करते हैं। भारत का राष्ट्रपति जो देश का सर्वोच्च अधिकारी है, एक निश्चित समयावधि के लिए चुना जाता है।
- हालांकि भारत एक संप्रभु गणराज्य है, फिर भी इसकी राष्ट्रमंडल (कॉमनवेल्थ) की सदस्यता जारी है, जिसकी प्रमुख ब्रिटिश सम्राज्ञी हैं। राष्ट्रमंडल में भारत की सदस्यता एक संप्रभु गणराज्य के रूप में उसकी स्थिति से समझौता नहीं करती है क्योंकि राष्ट्रमंडल, मुक्त और स्वतंत्र राष्ट्रों की एक संस्था है। ब्रिटिश सम्राज्ञी इस संस्था की मात्र प्रतीकात्मक प्रमुख हैं।

2.4. सरकार का संसदीय स्वरूप

- भारत ने ब्रिटेन द्वारा अपनाई गयी **वेस्टमिंस्टर प्रणाली** को अपनाया गया है। यह सरकार की एक लोकतांत्रिक संसदीय प्रणाली है। इस प्रणाली में कार्यकारिणी, विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है । यह सत्ता में केवल तब तक बनी रहती है जब तक इसे विधायिका का विश्वास प्राप्त है।
- भारत का राष्ट्रपति नाममात्र का संवैधानिक प्रमुख होता है। केंद्रीय मंत्रिपरिषद का गठन विधायिका से ही किया जाता है। इसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। केंद्रीय मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। यदि केंद्रीय मंत्रिपरिषद सदन में विश्वास खो देती है तो यह इस्तीफा देने के लिए बाध्य होती है।
- राष्ट्रपति जो नाममात्र का कार्यकारी होता है, केंद्रीय मंत्रिपरिषद अर्थात् वास्तविक कार्यकारिणी की सलाह के अनुसार अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है। राज्यों में भी सरकार संसदीय प्रकृति की होती है।

2.4.1. संसदीय संप्रभुता एवं भारतीय संसद की स्थिति

- **संसदीय संप्रभुता** को संसदीय सर्वोच्चता या विधायी सर्वोच्चता के रूप में भी जाना जाता है। यह संसद को सर्वोच्च कानूनी प्राधिकरण बनाती है, जो किसी भी कानून को समाप्त कर सकती है या नया कानून बना सकती है। तात्पर्य यह है कि संसद ऐसा कोई कानून पारित नहीं कर सकती है जिसे भविष्य में स्वयं ससंद द्वारा संशोधित न किया जा सके। इसके अतिरिक्त, **न्यायपालिका कानून को ख़ारिज नहीं कर सकती है** अर्थात् संसद द्वारा पारित किसी कानून की न्यायिक समीक्षा नहीं हो सकती है।

Website - https://upscpdf.com

निम्नलिखित सिद्धांत संसदीय संप्रभुता के विपरीत है:

- संवैधानिक सर्वोच्चता का सिद्धांत
- शक्तियों के पृथक्करण का सिद्धांत (यह अधिकांशत: सामान्य कानून बनाने के लिए विधायिका के कार्य क्षेत्र को सीमित करता है)
- न्यायिक समीक्षा का सिद्धांत (विधायिका द्वारा पारित कानूनों को कुछ निश्चित परिस्थितियों में अमान्य घोषित किया जा सकता है)

संसदीय संप्रभुता, ब्रिटिश संविधान का सिद्धांत है। यह ब्रिटेन में संसद को सर्वोच्च कानूनी अधिकार प्रदान करता है।

क्या भारतीय संसद संप्रभु है?

- भारतीय संसद की संप्रभु स्थिति ब्रिटेन के समान निरपेक्ष या निरकुंश नहीं है, क्योंकि यह संविधान के उपबंधों के अधीन है। संविधान ही भारतीय संसद को अधिकार और शक्तियां प्रदान करता है। इसकी कुछ पूर्व-निर्धारित सीमायें है, जो निम्नलिखित है:
  - संसद केवल उन विषयों के संबंध में कानून बना सकती हैं जो या तो संघ सूची में अथवा समवर्ती सूची में निर्दिष्ट हैं।
  - संसद द्वारा बनाए गए कानून, उच्चतम न्यायालय की न्यायिक समीक्षा की शक्ति के अधीन होते हैं। इसका तात्पर्य है कि यदि संसद द्वारा निर्मित कोई कानून, संविधान के आधारभूत प्रावधानों के विरुद्ध है,तो उसे सम्बंधित न्यायालय द्वारा अमान्य घोषित किया जा सकता है।
- **निष्कर्ष:** इस प्रकार, ब्रिटेन के संसदीय सर्वोच्चता के सिद्धांत के विपरीत भारत में संविधान की सर्वोच्चता का सिद्धांत अपनाया गया है।

2.5. संघीय और एकात्मक विशेषताओं का मिश्रण

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 1 के अनुसार: **'भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ'** होगा। हालांकि संविधान में कही भी 'संघीय' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, तथापि भारत एक संघीय गणतंत्र है।

कोई राज्य संघीय होता है, यदि:

- सरकार दो स्तरों में विभक्त होती है तथा दोनों के मध्य शक्तियों का वितरण होता है;
- लिखित संविधान होता है, जो देश का सर्वोच्च कानून होता है; तथा
- संविधान की व्याख्या और केंद्र एवं राज्यों के मध्य विवादों के समाधान के लिए एक स्वतंत्र न्यायपालिका का प्रावधान होता है।

भारतीय संविधान में संघात्मकता के लक्षण निम्नलिखित हैं:

- उपरोक्त सभी संघात्मक विशेषताएं भारतीय संविधान में निहित हैं। सरकार के दो स्तर विद्यमान हैं, एक केंद्र स्तर पर एवं दूसरा राज्य स्तर पर। इन दोनों के मध्य शक्तियों के वितरण का विस्तृत विवरण हमारे संविधान में किया गया है (73वें एवं 74वें संविधान संशोधनों के पश्चात शक्तियों को स्थानीय स्तर तक विकेंद्रीकृत किया गया है)।
- भारत का संविधान लिखित है एवं संविधान ही देश का सर्वोच्च कानून है।
- एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर, उच्चतम न्यायालय भी विद्यमान है, जो कार्यपालिका और विधायिका के नियंत्रण से स्वतंत्र है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

भारतीय संविधान में एकात्मकता के लक्षण निम्नलिखित हैं:

- संघीय राज्य की इन सभी आवश्यक विशेषताओं के बावजूद, भारतीय संविधान में कुछ एकात्मक प्रवृत्तियां भी विद्यमान हैं। अन्य संघ जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका दोहरी नागरिकता का प्रावधान करती हैं जबकि भारत के संविधान में एकल नागरिकता का प्रावधान है।
- सम्पूर्ण देश के लिए एक ही एकीकृत न्यायपालिका है।
- अखिल भारतीय सेवाओं जैसे भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा एवं भारतीय वन सेवा के प्रावधान, एक अन्य एकात्मक विशेषता प्रदर्शित करते हैं। इन सेवाओं के सदस्य, संघ लोक सेवा आयोग द्वारा अखिल भारतीय आधार पर नियुक्त किये जाते हैं। चूंकि ये सेवायें केंद्र सरकार द्वारा नियंत्रित होती हैं, अत: कुछ हद तक ये राज्यों की स्वायत्तता में बाधा उत्पन्न करती हैं।
- भारतीय संविधान की एक महत्वपूर्ण एकात्मक विशेषता आपातकाल का प्रावधान है। आपातकाल के दौरान केंद्र सरकार और अधिक शक्तिशाली हो जाती है तथा संघीय संसद को राज्यों हेतु कानून बनाने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।
- राज्यपाल राज्य का संवैधानिक प्रमुख होता है। यह केंद्र सरकार के एजेंट के रूप में कार्य करता है और केंद्र सरकार के हितों की रक्षा करने के निमित्त होता है। उपरोक्त प्रावधान, हमारे संघ की एकात्मक प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष:

- **प्रोफेसर के.सी. व्हेयर** के अनुसार, भारतीय संविधान, "सरकार की एक अर्द्ध संघीय प्रणाली है एवं अतिरिक्त एकात्मक विशेषताओं के साथ एक एकात्मक राज्य" का प्रावधान करता है।
- संविधान निर्माताओं ने स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि संघवाद और एकात्मकता के मध्य सामंजस्य विद्यमान है। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, "संविधान में अपनायी गयी राजनीतिक प्रणाली, समय एवं परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार एकात्मक के साथ ही संघीय हो सकती है"। यह कहा जा सकता है कि भारत में केंद्रीय मार्गदर्शन एवं राज्य अनुपालन के साथ एक **सहकारी संघवाद** विद्यमान है।
- संयुक्त राज्य अमेरिका वास्तविक संघीय संविधान अपनाने वाला पहला देश था। इसकी संघीय संरचना अभी भी संदर्भ के रूप में यह निर्धारित करने हेतु प्रयुक्त की जाती है कि कोई संविधान संघीय है या नहीं।
- भारतीय संविधान का निर्माण जिन परिस्थितियों में किया गया था वे 1787 में निर्मित अमेरिकी संविधान की परिस्थितियों से बिलकुल भिन्न थी। आजादी के समय भारत दुखद विभाजन तथा देश के कोने-कोने में विद्यमान विभाजित प्रवृत्तियों का साक्षी था। इसलिए राज्य को एक इकाई के रूप में बनाए रखने तथा अंत में अपने लोगों को एक राष्ट्र के रूप में एक साथ बनाये रखने के लिए एक मजबूत केंद्र का निर्माण करना तात्कालिक आवश्यकता थी।
- हालांकि संविधान में कुछ केंद्रीय प्रवृत्तियां पायी जाती हैं, परन्तु भारतीय राज्यों में भी शक्ति और स्वायत्तता का एक उचित स्तर निहित है। भारतीय विधि आयोग के अनुसार, एक मजबूत संघ और मजबूत राज्यों के मध्य कोई विरोधाभास नहीं होता है।
- उपरोक्त विचार-विमर्श को संभवतः प्रोफेसर अलेक्सेंडरोविज़ (Alexanderowicz) के शब्दों में सर्वश्रेष्ठ रूप से संक्षेपित किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने कहा है कि "भारत एक संघ है परन्तु एक सुई जेनेरिस (sui generis) संघ है, अर्थात् अपने ही प्रकार का संघ या एक अद्वितीय संघ है।"

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.6. असममितीय संघवाद

(Asymmetric federalism)

- भारत के संविधान में कुछ राज्यों के लिये विशेष प्रावधान किये गये हैं। जम्मू-कश्मीर राज्य को अनुच्छेद 370 के अंतर्गत विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। साथ ही भारतीय संविधान के सभी उपबन्ध जम्मू-कश्मीर राज्य पर लागू नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र एवं गुजरात (अनुच्छेद 371), नागालैंड (अनुच्छेद 371-A), असम (अनुच्छेद 371-B), मणिपुर (अनुच्छेद 371-C), आन्ध्र प्रदेश (अनुच्छेद 371-D एवं 371-E), सिक्किम (अनुच्छेद 371-F), मिजोरम (अनुच्छेद 371-G),अरुणाचल प्रदेश (अनुच्छेद 371-H) और गोवा (अनुच्छेद 371-I) के लिए भी विशेष उपबन्ध विभिन्न राज्यों की प्रादेशिक समस्याओं और मांगो के कारण बनाये गए हैं। इन सब विशेषताओं के कारण ही भारतीय संघवाद को असममितीय संघवाद के नाम से जाना जाता है |

2.7. मौलिक अधिकार

- भारतीय संविधान का आधारभूत ढांचा यह पुष्टि करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ आधारभूत अधिकार प्राप्त हैं। इन अधिकारों की चर्चा संविधान के भाग III में की गयी है इन्हें मूल अधिकारों के रूप में जाना जाता है। मूल रूप से संविधान में सात मूल अधिकारों की श्रेणियां थीं, परन्तु अब यह संख्या छह रह गयी है। ये हैं: (i) समानता का अधिकार, (ii) स्वतंत्रता का अधिकार, (iii) शोषण के विरुद्ध अधिकार, (iv) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, (v) सांस्कृतिक और शिक्षा संबंधी अधिकार और (vi) संवैधानिक उपचारों का अधिकार। संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31), मूलतः, एक मूल अधिकार था, जिसे 44 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा हटा दिया गया। वर्तमान में यह केवल एक कानूनी अधिकार है।
- मूल अधिकार राज्य के नकारात्मक दायित्वों के रूप में वर्णित हैं और ये राज्य की सत्ता के विरुद्ध सीमाओं के रूप में कार्य करते हैं।
- मूल अधिकार न्यायोचित हैं। इन अधिकारों में से किसी एक का भी अतिक्रमण होता है तो कोई भी व्यक्ति उच्चत्तर न्यायपलिका, अर्थात उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय में अपील दायर कर सकता है। मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचारों का अधिकार) के तहत सीधे उच्चतम न्यायालय में जाने के अधिकार की गारंटी दी गई है। हालांकि, भारत में मूल अधिकार असीमित नहीं हैं। राज्य और समाज की सुरक्षा और अन्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इन पर उचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है।

2.8. राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत

- संविधान की एक अनूठी विशेषता इसमें सम्मिलित राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत हैं। ये सिद्धांत सरकार के लिए **निर्देशात्मक प्रकृति** के हैं, जिन्हें सरकार सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना के लिए लागू कर सकती है।
- इसमें सम्मिलित महत्वपूर्ण सिद्धांत जीविका के लिए पर्याप्त साधन, पुरुषों और महिलाओं को समान कार्य के लिये समान वेतन, लोकहित के लिए धन का वितरण, नि:शुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा, काम का अधिकार, वृद्धावस्था, बेरोजगारी, बीमारी और विकलांगता की स्थिति में सार्वजनिक सहायता, ग्राम पंचायतों का गठन, आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए विशेष प्रावधान आदि हैं।
- इन सिद्धांतों में से अधिकांश भारत को एक कल्याणकारी राज्य बनाने में मदद करते हैं। हालांकि ये न्यायोचित नहीं हैं, फिर भी इन सिद्धांतों को **"देश के शासन के लिए आधारभूत"** कहा गया है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.9. मूल कर्तव्य

- 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत के पश्चात् मूल कर्तव्यों के लिए एक नया भाग IV(A) जोड़ा गया। संविधान में मूल कर्तव्यों को सम्मिलित करने का उद्देश्य नागरिकों को यह स्मरण कराना है कि जिस प्रकार नागरिक अपने अधिकार का आनंद लेते हैं, उसी प्रकार उन्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए क्योंकि **अधिकार और कर्तव्य सहसंबद्ध** होते हैं।

2.10. पंथनिरपेक्ष राज्य

- एक पंथनिरपेक्ष राज्य न तो धार्मिक और न ही अधार्मिक या धर्म विरोधी होता है। बल्कि यह धर्म के मामलों में तटस्थ होता है। भारत का कई धर्मों का देश होने के कारण से संविधान के संस्थापकों ने इसे पंथनिरपेक्ष राज्य बनाना उचित समझा।
- भारत एक पंथनिरपेक्ष राज्य है क्योंकि यह धर्म के आधार पर लोगों के मध्य किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करता है। यह न तो किसी धर्म को प्रोत्साहित करता है और न ही किसी धर्म को हतोत्साहित। इसके विपरीत, संविधान में धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार सुनिश्चित किया गया है और किसी भी धार्मिक समूह से संबंधित लोगों को उनकी पसंद के धर्म को मानने, आचरण करने या प्रसार करने का अधिकार देता है।

2.11. स्वतंत्र, निष्पक्ष और एकीकृत न्यायपालिका

- हमारे संविधान में न्यायपालिका को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है और इसे विधायिका और कार्यपालिका से स्वतंत्र भी रखा गया है। भारत का उच्चतम न्यायालय एकल एकीकृत न्यायिक प्रणाली के शीर्ष पर है।
- यह भारतीय नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा की गारंटी देता है। संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करता है।
- यदि विधायिका द्वारा पारित कोई कानून या कार्यपालिका द्वारा की गयी कोई भी कार्यवाही संविधान के प्रावधानों का उल्लंघन करती है तो उसे उच्चतम न्यायालय द्वारा शून्य घोषित किया जा सकता है।

2.12. एकल नागरिकता

- भारत का संविधान एकल नागरिकता को मान्यता देता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, दोहरी नागरिकता का प्रावधान है। भारत में हम केवल भारत के नागरिक है, न कि उस संबंधित राज्य के जिससे हम निवास करते हैं। यह प्रावधान राष्ट्र की एकता और अखंडता को बढ़ावा देने में मदद करता है और अलग-अलग क्षेत्रों के लोगों के बीच बंधुता को बढ़ावा देता है।

2.13. सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार

- भारत के संविधान में सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार का उल्लेख किया गया है। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के तहत सभी व्यस्क नागरिकों को उनके धर्म, जाति, नस्ल, रंग और लिंग के आधार पर कोई विभेद किए बिना चुनाव प्रक्रिया में भाग लेने का अधिकार प्रदान किया गया है।
- सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार प्रदान करने का मुख्य उद्देश्य भारतीय संविधान निर्माताओं का उदारवादी विचारों से अत्याधिक प्रभावित होना था। सभी नागरिकों को समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करना जिससे राष्ट्रीय भावना का विकास किया जा सके।
- मूल संविधान में वयस्कता की आयु 21 वर्ष निर्धारित की गयी थी। जिसे 61वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1989 द्वारा घटाकर 18 वर्ष कर किया गया।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.14. आपातकालीन शक्तियां

- भारतीय संविधान में आपातकालीन शक्तियों का प्रावधान किया गया है। यह प्रावधान देश को इसके समक्ष उपस्थित किसी भी आपात स्थिति से निपटने के लिये सक्षम बनाती है।
- आपातकालीन शक्तियां भारत के राष्ट्रपति में निहित हैं। संविधान में तीन प्रकार के आपातकाल का उल्लेख किया गया है: राष्ट्रीय आपातकाल (अनुच्छेद 352); संवैधानिक तंत्र की विफलता (अनुच्छेद 356) और वित्तीय आपातकाल (अनुच्छेद 360)।

2.15. शक्तियों का पृथक्करण

- शक्तियों के पृथक्करण की संकल्पना के पीछे की मूल धारणा यह है कि शक्तियों का केन्द्रीकरण जब एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह में हो जाता है तो वे सरकारी मशीनरी का उपयोग जनहित के स्थान पर व्यक्तिगत हित में करने लगते हैं। शक्तियों का पृथक्करण किसी भी व्यक्ति या समूह के हाथ में सत्ता के संकेन्द्रण को रोकने का एक तरीका है। इससे सत्ता का दुरूपयोग कठिन हो जाता है।
- इसके अनुसार, राज्य सत्ता एकल इकाई नहीं बल्कि विभिन्न राज्य निकायों द्वारा एक-दूसरे से स्वतंत्र रहकर किए जाने वाले विभिन्न सरकारी कार्यों (अर्थात् विधायी, कार्यकारी और न्यायिक) का समिश्रण है। विधायिका कानून का निर्माण करती है; कार्यपालिका कानून को लागू करती है; और न्यायपालिका उन कानूनों की व्याख्या करती है।
- शक्ति पृथक्करण का परंपरागत विचार **मोंटेस्क्यू** द्वारा 1748 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **द स्पिरिट ऑफ द लॉज** (The Spirit of the Laws) में दिया गया है। इन्होंने सरकार के तीनों अंगों अर्थात् कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के मध्य शक्ति और कार्यों के सख्त एवं निरपेक्ष पृथक्करण की वकालत की है। इन तीनों पृथक निकायों के मध्य शक्तियों का वितरण इस प्रकार होगा कि उनके प्रकार्य पूर्णतया पृथक हों और इनके प्रकार्यों में कोई अतिव्यापन (ओवरलेपिंग) न हो।
- हालांकि भारत का संविधान शक्तियों के विभाजन के सिद्धांत के संदर्भ में एक समकालीन दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। हमारे संविधान के तहत शक्तियों का कठोर पृथक्करण, सिद्धांत और व्यवहार दोनों में व्याप्त नहीं है। चूंकि संसदीय लोकतंत्रों में कार्यपालिका या मंत्री परिषद् जैसे कि भारत या ब्रिटेन में, विधायिका का भी भाग होते हैं, इसलिए, यहाँ शक्ति का कठोर पृथक्करण मौजूद नहीं हो सकता है।
- वस्तुतः भारत के संविधान ने शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत के साथ नियंत्रण और संतुलन के सिद्धांत को अपनाया है। इस सिद्धांत के तहत सरकार के अलग-अलग अंग जैसे विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका एक-दूसरे को नियंत्रण में रखते हैं। इसलिए भारत में सरकार का प्रत्येक अंग अपने क्रियाकलापों के दौरान दूसरे अंगों के कार्यक्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। लेकिन ठीक उसी समय यह सुनिश्चित करना भी आवश्यक होता है कि सरकार के दूसरे अंग शक्तियों का दुरूपयोग न करें या अपने अधिदेश (मैंडेट) की सीमा का अतिक्रमण न करें।
- इस सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण प्रश्न राज्य के इन तीनों अंगों के बीच संबंध का है अर्थात क्या इन तीन अंगों के बीच शक्तियाँ पूरी तरह पृथक होनी चाहिए या उनके बीच समन्वय होना चाहिए।

डॉ. दुर्गा दास बसु के शब्दों में,

- "जहाँ तक न्यायपालिका का संबंध है, इस सिद्धांत के अनुप्रयोग (शक्तियों का पृथक्करण का सिद्धांत) में दो प्रस्ताव निहित हो सकते हैं:

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- सरकार के तीनों अंगों विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका में से कोई भी एक अंग **समुचित** रूप से अन्य दोनों अंगों में से किसी के भी अंतर्गत आने वाली शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकता है।
- विधायिका अपनी शक्तियों का प्रत्यायोजन (Delegation) नहीं कर सकती है। (किसी उच्च अधिकारी द्वारा अधीनस्थ अधिकारी को विशिष्ट सत्ता एवं प्राधिकार प्रदान करना **प्रत्यायोजन** कहलाता है।)

- यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य **'समुचित'** शब्द है जो शक्तियों के एक व्यापक पृथक्करण को ध्यान में लाता है। जहाँ सरकार के किसी अंग को प्रदत्त मुख्य (कोर) प्रकार्य एक ही है। हालाँकि कुछ विषयों के सीमावर्ती क्षेत्रों को लेकर कुछ व्याप्ति हो सकती है। इन कानूनी पहलुओं पर न्यायालय की राय यह है कि भारतीय संविधान में शक्तियों का व्यापक पृथक्करण निहित है।

2.16. स्वतंत्र अभिकरणों की व्यवस्था

संविधान में दिए गए कुछ विशिष्ट कार्यों को संपादित करने के लिए स्वतंत्र अभिकरणों की भी व्यवस्था की गयी है। हालाँकि भारतीय शासन अधिनियम, 1935 में भी ऐसे अभिकरणों की व्यवस्था थी। उनमें से कुछ अभिकरण निम्नलिखित हैं:

- **निर्वाचन आयोग:** यह संसद, राज्य विधान मंडलों, राष्ट्रपति तथा उप राष्ट्रपति के निर्वाचन की व्यवस्था करता है इस संस्था को कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में कुछ प्रावधान किये गए हैं।
- **नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक:** यह संघ तथा राज्यों के वित्त एवं लेखा परीक्षण करता है तथा उनको नियंत्रित करता है। इसे भी संघीय और राज्यों की कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त रखने के लिए संविधान में व्यवस्था की गई है।
- **संघीय और राज्य लोक सेवा आयोग:** ये क्रमशः केंद्रीय और राज्य सरकारों की उच्चतर सेवाओं के लिए अभ्यर्थियों की भर्ती हेतु परीक्षाओं का संचालन एवं उनकी नियुक्ति की संस्तुतियाँ करते हैं।

3. भारतीय संविधान के स्रोत

- भारतीय संविधान इस सन्दर्भ में भी अद्वितीय है कि इसके निर्माण में विश्व के कई देशों के संविधानों का सहारा लिया गया। हमारे संविधान निर्माता सभी ज्ञात शासन-विधानों के कार्यकरण से प्राप्त अनुभवों को अपने संविधान में संजोना चाहते थे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य देशों के संविधानों से विभिन्न प्रावधानों को ग्रहण करना किसी नकलची मानसिकता का परिचायक नहीं है। बल्कि इसका उद्देश्य भारतीय परिप्रेक्ष्य, समस्याओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाले विश्व के सर्वोत्तम संवैधानिक प्रावधानों को ग्रहण करना था।
- हमारे संविधान के मूल अधिकार और सर्वोच्च न्यायालय संबंधी व्यवस्थाओं पर संयुक्त राज्य अमेरिका का, राज्य की नीति निदेशक तत्वों पर आयरलैण्ड का, आपातकालीन व्यवस्थाओं पर जर्मनी का, विधायी शक्तियों के वितरण पर कनाडा का तथा संसदीय संस्थाओं पर ब्रिटेन का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।
- इनके अतिरिक्त, हमारे संविधान निर्माताओं ने भारतीय शासन अधिनियम, 1935 के बहुत से प्रावधानों को शब्दशः ले लिया गया था। 1935 के अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में संघ तथा राज्यों के मध्य शक्तियोँ का विभाजन, राष्ट्रपति की आपातकालीन शक्तियां, अल्पसंख्यक वर्गों के हितों की रक्षा, उच्चतम न्यायालय का अधीनस्थ न्यायालयों पर नियंत्रण, संघ का राज्य के शासन में हस्तक्षेप, द्विसदनी विधायिका आदि सम्मिलित हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

भारतीय संविधान के विदेशी स्रोतों को संक्षेप में निम्नलिखित तालिका में दर्शाया गया है:

देश	ग्रहण किये गए प्रावधान
यूनाइटेड किंगडम	• सांकेतिक प्रमुख - राष्ट्रपति (जैसा कि ब्रिटेन में सम्राज्ञी की स्थिति) • विधि के शासन का विचार • कानून निर्माण की विधि • मंत्रियों की कैबिनेट प्रणाली • प्रधानमंत्री का पद • सरकार का संसदीय स्वरुप • द्विसदनीय विधायिका • एकल नागरिकता • निम्न सदन अधिक शक्तिशाली • मंत्रिपरिषद् निम्न सदन के प्रति उत्तरदायी • लोकसभा अध्यक्ष की शक्तियां और उसकी भूमिका • सर्वाधिक मत के आधार पर चुनावों में जीत का निर्णय (फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम)
संयुक्त राज्य अमेरिका (USA)	• लिखित संविधान • प्रस्तावना • मूल अधिकार • राष्ट्रपति की स्थिति राज्य के कार्यकारी प्रमुख और सशस्त्र बलों के सर्वोच्च सेनापति के रूप में • राज्यसभा के पदेन अध्यक्ष के रूप में उप राष्ट्रपति • राज्यों से संबंधित प्रावधान • राष्ट्रपति पर महाभियोग • उच्चतम न्यायालय • न्यायपालिका की स्वतंत्रता और न्यायिक समीक्षा की शक्ति • उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पदच्युति
USSR	• मूल कर्तव्य • प्रस्तावना में न्याय (सामजिक,आर्थिक एवं राजनितिक) का आदर्श
ऑस्ट्रेलिया	• समवर्ती सूची का प्रावधान • प्रस्तावना की भाषा • व्यापार, वाणिज्य और समागम सम्बन्धी प्रावधान
जापान	• विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया • वह विधि जिसके आधार पर उच्चतम न्यायालय कार्य करता है
जर्मनी का वाईमर गणराज्य	• आपात काल के दौरान मूल अधिकारों का निलंबन
कनाडा	• एक मजबूत केंद्र के साथ संघीय योजना • केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का वितरण • अवशिष्ट शक्तियाँ केंद्र में निहित
आयरलैंड	• राज्यों के नीति निदेशक तत्वों की अवधारणा (आयरलैंड ने यह अवधारणा स्पेन से ग्रहण की) • राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि • राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा में सदस्यों का नामांकन
फ्रांस	• गणतंत्रात्मक शासन प्रणाली
दक्षिण अफ्रीका	• संविधान संशोधन की प्रक्रिया

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

2. संविधान की प्रस्तावना

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. संविधान की प्रस्तावना: एक परिचय 3

1.1. प्रस्तावना की विषय-वस्तु 4

1.2. संविधान की प्रस्तावना में निहित मूल तत्व 4

1.3. क्या प्रस्तावना संविधान का अंग है? 4

1.4. प्रस्तावना के निर्वचन एवं संशोधन से जुड़े विभिन्न वाद (Cases) 5

1.4.1. बेरूबारी संघ वाद (1960) 5

1.4.2. गोलकनाथ वाद (1967) 5

1.4.3. केशवानंद भारती वाद (1973) 5

1.4.4. रघुनाथ राव बनाम भारत संघ वाद (1993) 5

1.4.5. एस. आर. बोम्मई वाद (1994) 5

1.4.6. एल आई सी ऑफ़ इंडिया वाद (1995) 5

1.5. प्रस्तावना में उल्लिखित प्रमुख शब्दों की व्याख्या 5

1.5.1. संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न 5

1.5.2. समाजवादी 6

1.5.3. पंथनिरपेक्ष 6

1.5.4. लोकतंत्रात्मक 6

1.5.5. गणराज्य 7

1.5.6. न्याय 7

1.5.7. स्वतंत्रता 8

1.5.8. समता 9

1.5.9. बंधुता 10

2. प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा नीति-निदेशक तत्वों के मध्य पारस्परिक संबंध 10

3. प्रस्तावना से संबंधित हालिया विवाद 10

4. उपसंहार 12

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com singh(akash.visionias@gmail.com)

Website - https://upscpdf.com

1. संविधान की प्रस्तावना: एक परिचय

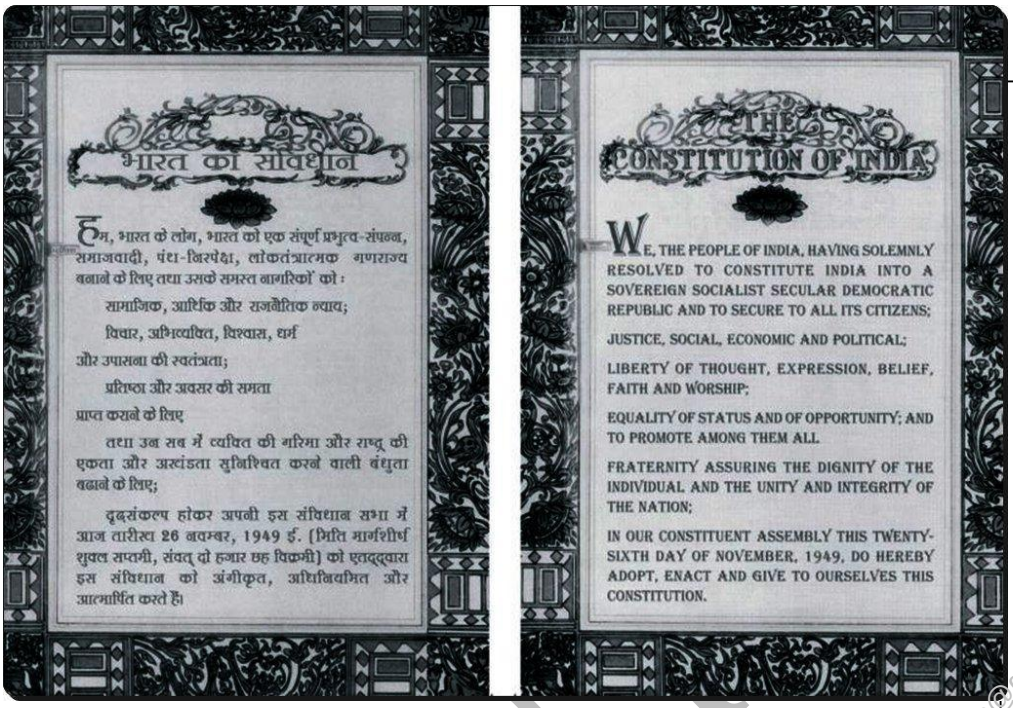

- प्रस्तावना का शाब्दिक अर्थ होता है, भूमिका अथवा प्रारंभिक परिचय। संयुक्त राज्य अमेरिका द्वारा सर्वप्रथम अपने संविधान में प्रस्तावना को सम्मिलित किया गया।
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना का संबंध उसके उद्देश्यों, लक्ष्यों, आदर्शों तथा उसके आधारभूत सिद्धान्तों से है।
- संविधान की प्रस्तावना संविधान सभा द्वारा 22 जनवरी 1947 को पारित उद्देश्य प्रस्ताव पर आधारित है।
- ध्यातव्य है कि जब अन्य सभी उपबंध अधिनियमित किए जा चुके थे, उसके पश्चात् प्रस्तावना को अलग से पारित किया गया था
- संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार बी. एन. राव ने उपर्युक्त प्रस्ताव के आधार पर प्रस्तावना का प्रारूप तैयार किया। संविधान की प्रारूप समिति ने इस प्रारूप पर विचार किया तथा इसमें आवश्यक संशोधन करके संविधान सभा के कार्यों के आखिरी चरण में इसे पारित किया ताकि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों के अनुरूप हो।
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना की विशिष्ट भाषा आस्ट्रेलिया के संविधान से ग्रहण की गयी है। प्रख्यात न्यायविद संवैधानिक विशेषज्ञ एन. ए. पालकीवाला ने प्रस्तावना को **'संविधान का परिचय पत्र'** कहा है।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com singh(akash.visionias@gmail.com)

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.1. प्रस्तावना की विषय-वस्तु

'**हम भारत के लोग**, भारत को **एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**

प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन **सब में** व्यक्ति की गरिमा और

राष्ट्र की एकता और अखंडता

सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख **26 नवंबर, 1949 ई.** (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं**।'

कुछ अति महत्त्वपूर्ण तथ्य

- प्रस्तावना की प्रकृति न्यायोचित नहीं है अर्थात इसकी व्यवस्थाओं को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती।
- प्रस्तावना में कोई भी संशोधन केवल अनुच्छेद 368 के अधीन ही हो सकता है।
- अब तक प्रस्तावना को **केवल एक बार** 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा **03-01-1977** को संशोधित कर, इसके पहले पैरा में दो शब्द **समाजवादी और पंथनिरपेक्ष** एवं छठे पैरा में **और अखंडता** शब्द सम्मिलित किया गया।

1.2. संविधान की प्रस्तावना में निहित मूल तत्व

संविधान की प्रस्तावना में निहित चार मूल तत्व निम्नलिखित हैं :

- **संविधान के शक्ति का स्रोतः** प्रस्तावना में उल्लेख है कि संविधान भारत के लोगों से शक्ति अधिगृहीत करता है।
- **भारत की प्रकृतिः** प्रस्तावना में उल्लेख है कि भारत एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक व गणतांत्रिक राजव्यवस्था वाला देश है।
- **संविधान के उद्देश्य:** न्याय, स्वतंत्रता, समता व बंधुता।
- **संविधान लागू होने की तिथिः** 26 नवंबर, 1949

1.3. क्या प्रस्तावना संविधान का अंग है?

प्रस्तावना संविधान का अंग है या नहीं यह विवाद का विषय रहा है। **बेरुबारी वाद (1960)** में उच्चतम न्यायालय ने प्रस्तावना को संविधान का अंग नहीं माना था। हालाँकि **केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)** वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व के संवैधानिक रुख में संशोधन करते हुए कहा कि प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है।

VISION IAS
This document is personalised for akash (visionias@gmail.com, akash.visionias@gmail.com)

Website - https://upscpdf.com

1.4. प्रस्तावना के निर्वचन एवं संशोधन से जुड़े विभिन्न वाद (Cases)

बेरूबारी संघ, गोलकनाथ, केशवानंद भारती, रघुनाथ राव आदि वाद इससे जुड़े हुए हैं।

1.4.1. बेरूबारी संघ वाद (1960)

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रस्तावना संविधान में निहित सामान्य प्रयोजनों को दर्शाता है अत: "यह संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क को समझने की कुंजी है।" उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा कि प्रस्तावना संविधान का भाग **नहीं** है।

1.4.2. गोलकनाथ वाद (1967)

उच्चतम न्यायालय ने कहा कि जहाँ संविधान की भाषा अस्पष्ट या संदिग्ध हो, वहां उसके अर्थ को स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना का सहारा लिया जा सकता है।

1.4.3. केशवानंद भारती वाद (1973)

उच्चतम न्यायालय ने बेरूबारी संघ वाद में दिए गए स्वयं के निर्णय को अस्वीकार कर दिया और यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का **एक भाग है**। यहां न्यायालय ने यह भी कहा कि संसद अनुच्छेद 368 के तहत इसका संशोधन भी कर सकती है, लेकिन प्रस्तावना में निहित मूल ढांचे को संशोधित नहीं किया जा सकता है।

1.4.4. रघुनाथ राव बनाम भारत संघ वाद (1993)

उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित बातें कहीं:

- प्रस्तावना शक्ति का स्रोत नहीं है, विधि की शक्ति का स्रोत विनिर्दिष्ट अनुच्छेद ही हो सकता है।
- प्रस्तावना विधानमंडल की शक्तियों पर प्रतिबंध आरोपित करने का स्रोत नहीं है।
- संविधान के संदिग्ध तथा द्विअर्थी उपबंधो का अर्थ स्पष्ट करने के लिए प्रस्तावना उपयोगी है।

1.4.5. एस. आर. बोम्मई वाद (1994)

"प्रस्तावना संविधान का अभिन्न अंग है। सरकार का प्रजातांत्रिक स्वरुप, संघीय संरचना, राष्ट्रीय एकता और अखंडता, पंथनिरपेक्षता, समाजवादी स्वरूप, सामाजिक न्याय एवं न्यायिक पुनर्विलोकन भी इसकी मौलिक संरचना में सम्मिलित हैं।"

1.4.6. एल आई सी ऑफ़ इंडिया वाद (1995)

उच्चतम न्यायालय ने पुनः व्यवस्था दी कि प्रस्तावना संविधान का आंतरिक हिस्सा है।

1.5. प्रस्तावना में उल्लिखित प्रमुख शब्दों की व्याख्या

प्रस्तावना में कुछ प्रमुख शब्दों का उल्लेख किया गया है, जो इसमें निहित मूल्यों एवं दर्शन के द्योतक हैं। ये हैं: **संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य, न्याय, स्वतंत्रता, समता व बंधुता।** आइये इन्हें संक्षेप में समझते हैं:

1.5.1. संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न

- संप्रभु शब्द का आशय है कि भारत अपने आंतरिक तथा बाह्य मामलों का निर्धारण करने के लिए स्वतंत्र है। यद्यपि वर्ष 1949 में भारत ने राष्ट्रमंडल की सदस्यता स्वीकार करते हुए ब्रिटेन को इसका प्रमुख माना तथापि राष्ट्रमंडल एवं संयुक्त राष्ट्र की सदस्यता किसी भी तरह भारतीय संप्रभुता को प्रभावित नहीं करती।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com Singh(akash.visionias@gmail.com)

- एक संप्रभु राज्य होने के नाते भारत किसी विदेशी सीमा का अधिग्रहण अथवा किसी अन्य देश के पक्ष में अपनी सीमा के किसी हिस्से से दावा छोड़ सकता है।
- वस्तुतः यह पद बिना किसी बाह्य दबाव या प्रभाव के आत्मनिर्णय की शक्ति का द्योतक है।

1.5.2. समाजवादी

- मूल प्रस्तावना में, समाजवादी शब्द का उल्लेख नहीं था, क्योंकि संविधान हमारे देश को किसी विशिष्ट आर्थिक संरचना के साथ नहीं जोड़ता है। लेकिन वर्ष **1976** में **42वें** संविधान संशोधन के द्वारा संविधान में समाजवादी शब्द जोड़ा गया।
- यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय समाजवाद **'लोकतांत्रिक समाजवाद'** है न कि **'साम्यवादी समाजवाद'** जिसे **'राज्याश्रित समाजवाद'** भी कहा जाता है, जिसमें उत्पादन और वितरण के सभी साधनों का राष्ट्रीयकरण और निजी संपत्ति का उन्मूलन सम्मिलित है।
- लोकतांत्रिक समाजवाद वस्तुतः मिश्रित अर्थव्यवस्था में आस्था रखता है, जहां सार्वजनिक व निजी क्षेत्र साथ-साथ मौजूद रहते हैं। भारतीय समाजवाद मार्क्सवाद और गांधीवाद का मिला-जुला रूप है, जिसमें **'गांधीवादी समाजवाद'** की ओर ज्यादा झुकाव है।

1.5.3. पंथनिरपेक्ष

- भारत के सन्दर्भ में पंथनिरपेक्ष का अभिप्राय है कि भारत किसी एक धर्म या धार्मिक विचारधारा से निर्देशित नहीं होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि राज्य (देश) किसी धर्म विशेष के विरुद्ध है। यह अपने सभी नागरिकों को किसी भी धर्म को मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। साथ ही संविधान धार्मिक आधार पर किसी भी प्रकार के भेद-भाव पर भी रोक लगाता है। अर्थात पंथनिरपेक्षता से आशय धर्म के आधार पर भेद-भाव का निषेध और सभी धर्मों के प्रति समान भाव है।
- पंथनिरपेक्षता की पश्चिमी अवधारणा के अनुसार धर्म और राज्य दोनों अलग-अलग हैं। इसके अनुसार धार्मिक संस्थानों एवं पदाधिकारियों का, राज्य के प्राधिकारियों से पृथक्करण होना चाहिए।
- 1974 में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यद्यपि 'पंथनिरपेक्ष राज्य' शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया है तथापि इसमें कोई संदेह नहीं है कि, संविधान के निर्माता ऐसे ही राज्य की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए संविधान में अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता से संबंधित अधिकारों को जोड़ा गया।
- कालान्तर में पंथनिरपेक्ष शब्द को 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया।

1.5.4. लोकतंत्रात्मक

- संविधान की प्रस्तावना में एक लोकतांत्रिक राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई है, जहाँ सर्वोच्च शक्ति जनता में निहित है। लोकतंत्र में प्रत्येक नागरिक को अपने देश के शासन में भाग लेने का अधिकार है। लोकतंत्र जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन है।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com (akash.visionias@gmail.com)

- लोकतंत्र के दो प्रमुख प्रकार हैं- **प्रत्यक्ष** व **अप्रत्यक्ष**। प्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोग अपनी राजनीतिक एवं प्रशासनिक शक्तियों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से करते हैं, जैसे-स्विटजरलैंड में। प्रत्यक्ष लोकतंत्र को **परिपृच्छा (Referendum), पहल (Initiative), प्रत्यावर्तन या प्रत्याशी को वापस बुलाना (Recall) तथा जनमत संग्रह (Plebiscite)** के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। दूसरी ओर अप्रत्यक्ष लोकतंत्र में लोगों द्वारा चुने गए प्रतिनिधि जनता की ओर से सर्वोच्च शक्ति का प्रयोग करते हैं और सरकार चलाते हुए कानूनों का निर्माण करते हैं। इस प्रकार के लोकतंत्र को प्रतिनिधि लोकतंत्र भी कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है: **संसदीय और अध्यक्षीय**।
- भारतीय संविधान में प्रतिनिधिक संसदीय लोकतंत्र (Representative Parliamentary Democracy) की व्यवस्था है, जिसमें कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए विधायिका के प्रति जवाबदेह होती है। वयस्क मताधिकार, सामयिक चुनाव, विधि की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता व भेदभाव का अभाव भारतीय राजव्यवस्था में निहित लोकतांत्रिक लक्षण हैं।
- संविधान की प्रस्तावना में लोकतांत्रिक शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है, जिसमें न केवल राजनीतिक लोकतंत्र बल्कि सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को भी शामिल किया गया है। लोकतंत्र के तहत लोकतांत्रिक सरकार की ही कल्पना नहीं है बल्कि ऐसे समाज की कल्पना है जिसमें विचारों का मुक्त आदान-प्रदान हो और प्रत्येक व्यक्ति की समाज में समान प्रतिष्ठा हो।

1.5.5. गणराज्य

- गणराज्य से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ राजनैतिक संप्रभुता किसी एक व्यक्ति जैसे राजा में केन्द्रित होने के स्थान पर जनता में निहित होती है और कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग विद्यमान नहीं होता है।
- प्रत्येक सार्वजनिक कार्यालय बिना किसी भेदभाव के प्रत्येक नागरिक के लिए खुला होता है।
- गणतंत्र में राज्य प्रमुख सदैव प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक निश्चित समय के लिए चुनकर आता है, जैसे: अमेरिका अथवा भारत में। भारत में राज्य के प्रमुख (राष्ट्रपति) को निर्वाचन द्वारा पद प्राप्त होता है, अनुवांशिकता के आधार पर नहीं। उसका चुनाव पांच वर्ष के लिए अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।

1.5.6. न्याय

- न्याय का सामान्य अर्थ एक ऐसी स्थिति से है जहाँ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं हो और सबको उनके उचित अधिकार प्राप्त हों। प्रस्तावना में तीन प्रकार के न्याय की संकल्पना की गयी है: **सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक**। सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के तत्वों को **1917 की रूसी क्रांति** से ग्रहण किया गया है। इनकी सुरक्षा मौलिक अधिकार व नीति निदेशक सिद्धांतो के विभिन्न उपबंधों के द्वारा की जाती है।
- **सामाजिक न्याय** से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जहाँ जाति, मूलवंश, लिंग, जन्म स्थान, धर्म या भाषा आदि में से किसी भी आधार पर किसी के साथ भेद-भाव न किया जाए तथा समाज में सबको समान अवसर/स्थान प्राप्त हो। इसका अर्थ है समाज में किसी वर्ग विशेष के लिए विशेषाधिकारों की अनुपस्थिति और अनुसूचित जाति, जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जाना।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com singh (akash.visionias@gmail.com)

- **आर्थिक न्याय** का अर्थ है कि आर्थिक कारणों के आधार पर किसी भी व्यक्ति से भेदभाव नहीं किया जाएगा। इसमें संपदा, आय व संपति की असमानता को दूर करना भी शामिल है।
- **राजनीतिक न्याय** का अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त होंगे। सभी नागरिकों को समान रूप से मतदान का, चुनाव लड़ने का तथा सार्वजनिक पद प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हो।

प्रस्तावना में निहित **न्याय शब्द** के भाव से संबंधित **कुछ मूल अधिकार/ नीति निदेशक तत्त्व/ अन्य अनुच्छेद:**

सामाजिक न्याय

अनुच्छेद 17: अस्पृश्यता/छुआछूत का अन्त; भारतीय संसद ने अस्पृश्यता निषेध अधिनियम 1955 बनाकर इसे दण्डनीय अपराध घोषित किया है।

अनुच्छेद 18: उपाधियों का अन्त किया गया है, राज्य सैन्य और शैक्षिक क्षेत्र के अतिरिक्त कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा (बाद में भारत रत्न एवं पद्म पुरस्कारों के अनुच्छेद 18 से असंगत होने के मुद्दे पर उठे विवाद के आलोक में उच्चतम न्यायालय के निर्णय के बाद, समाज सेवा सहित ऐसे अन्य क्षेत्रों में भी उपाधि प्रदान की जा सकती है)।

अनुच्छेद 46: अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि।

राजनीतिक न्याय

अनुच्छेद 14 से 18 में दिए गए समता के अधिकार राजनीतिक न्याय के आधार हैं। इसके अतिरिक्त,

अनुच्छेद 38: राज्य लोक कल्याण की अभिवृद्धि के लिए सामाजिक व्यवस्था बनाएगा

अनुच्छेद 39: राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति निदेशक तत्व

अनुच्छेद 39क: समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता

अनुच्छेद 41: कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार

1.5.7. स्वतंत्रता

- प्रस्तावना में विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म व उपासना की **स्वतंत्रता** उल्लिखित है। इसका अभिप्राय यह है कि सभी नागरिकों को समान रूप से इच्छानुसार धर्म पालन करने और अपने विचारों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता हो और राज्य इन विषयों में तब तक हस्तक्षेप न करे जब तक दूसरों की स्वतंत्रता अथवा अधिकार बाधित न हों।
- हालांकि स्वतंत्रता का अभिप्राय यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ भी करने का अधिकार मिल गया है। स्वतंत्रता के अधिकार का प्रयोग संविधान में उल्लिखित सीमाओं के अंतर्गत ही किया जा सकता है। संक्षेप में कहा जाए तो प्रस्तावना में प्रदत्त स्वतंत्रता एवं मौलिक अधिकार निरपेक्ष नहीं हैं। हमारी प्रस्तावना में **स्वतंत्रता, समता और बंधुता** के आदर्शों को **फ्रांस की क्रांति (1789-1799 ई.)** से लिया गया है।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com singh.akash.visionias@gmail.com)

प्रस्तावना में निहित **स्वतंत्रता शब्द** के भाव से संबंधित **कुछ मूल अधिकार/ नीति निदेशक तत्त्व/ अन्य अनुच्छेद:**

अनुच्छेद 19: वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मलेन की स्वतंत्रता, संगम या संघ बनाने की स्वतंत्रता, भारत के राज्यक्षेत्र में कहीं भी अबाध संचरण की स्वतंत्रता, भारत के किसी भी भाग में बसने एवं निवास करने की स्वतंत्रता तथा कोई भी वृत्ति, उपजीविका,व्यापार या कारोबार करने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 25: अंत:करण एवं धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता

अनुच्छेद 27: किसी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता

अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता

1.5.8. समता

- समता का अभिप्राय है कि न्याय, कराधान, लोक पद और नियोजन के संबंध में सभी के साथ एक समान व्यवहार किया जाना। इसके अंतर्गत समाज के किसी भी वर्ग के लिए विशेषाधिकार का न होना भी शामिल है। हमारे संविधान में मूल अधिकारों से संबंधित अनु. 14 - 18 के अंतर्गत इस सिद्धांत को प्रभावी बनाया गया है।
- भारतीय संविधान की प्रस्तावना प्रत्येक नागरिक को स्थिति और अवसर की समता प्रदान करती है। इस उपबंध में समता के तीन आयाम शामिल हैं: नागरिक, राजनीतिक व आर्थिक।

मौलिक अधिकारों के तहत निम्न प्रावधान नागरिक समता को सुनिश्चित करते हैं-

अनुच्छेद 14 से 18

- विधि के समक्ष समता (अनुच्छेद-14)
- धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर विभेद का प्रतिषेध (अनुच्छेद-15)
- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनुच्छेद-16)
- अस्पृश्यता का अंत (अनुच्छेद-17)
- उपाधियों का अंत (अनुच्छेद-18)

संविधान में दो अन्य उपबंध हैं जो राजनीतिक समता को सुनिश्चित करते प्रतीत होते हैं:

- प्रथम; धर्म, जाति, लिंग अथवा वर्ग के आधार पर किसी व्यक्ति को मतदाता सूची में शामिल होने से अयोग्य न ठहराना **(अनुच्छेद-325)** तथा
- दूसरा; लोकसभा और विधानसभाओं के लिए वयस्क मतदान का प्रावधान **(अनुच्छेद-326)**।
- **आर्थिक समता** के तहत राज्य के नीति-निदेशक सिद्धांत महिला तथा पुरुष को जीवन यापन के लिए पर्याप्त साधन और समान काम के लिए समान वेतन के अधिकार को सुरक्षित करते हैं (अनुच्छेद-39)।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com (akash.visionias@gmail.com)

1.5.9. बंधुता

- बंधुता का अर्थ है: भाईचारे की भावना। मूल कर्तव्य (अनुच्छेद-51क) में भी यह उल्लेख है कि "प्रत्येक भारतीय नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह धार्मिक, भाषायी, क्षेत्रीय अथवा वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे होकर सौहार्द्र और आपसी भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित करेगा"।
- प्रस्तावना में बंधुता के संबंध में दो बातों का उल्लेख है:- (a) व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करना एवं (b) देश की एकता और अखंडता सुनिश्चित करना। इन्हीं कारणों से संविधान में अस्पृश्यता का निषेध (अनु. 17) किया गया है और इसका व्यवहार अपराध बना दिया गया है।

2. प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा नीति-निदेशक तत्वों के मध्य पारस्परिक संबंध

प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा नीति-निदेशक तत्व, भारत के संविधान के अभिन्न अंग हैं।

- **प्रस्तावना** संविधान का भाग है और इसलिए संशोधनीय भी है किन्तु इसमें उल्लिखित संविधान के आधारभूत लक्षणों में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता (केशवानंद भारती वाद, 1973)।
- संविधान के भाग-3 (अनुच्छेद 12-35) में दिए गए **मूल अधिकार** 'स्वतंत्रता तथा समानता' के संकल्प की व्यावहारिक प्राप्ति सुनिश्चित करने वाले साधन हैं। ये न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय अधिकार हैं। ये प्रतिषेधकारी हैं तथा राज्य पर नकारात्मक दायित्व आरोपित करते हैं।
- संविधान के भाग-4 में दिए गए **नीति-निदेशक तत्व**, 'सामाजिक तथा आर्थिक न्याय' के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु राज्य के सकारात्मक कर्तव्य हैं। इनमें अन्तर्निहित सिद्धांत राष्ट्र के शासन के मूलभूत सिद्धांत हैं। ये न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय हैं। ये शासन, प्रशासन व विधायिका द्वारा संतुष्ट किए जाने योग्य संवैधानिक अपेक्षाएं हैं।
- अतः प्रस्तावना, मूल अधिकार तथा नीति निदेशक तत्त्व एक ही संवैधानिक ढ़ांचे के अभिन्न अंग हैं और समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

3. प्रस्तावना से संबंधित हालिया विवाद

पृष्ठभूमि

- 26 नवम्बर, 2015 एवं 26 जनवरी, 2016 (क्रमशः संविधान के **अंगीकृत** एवं **लागू** होने की 66वीं वर्षगाठ) को दो अलग-अलग सरकारी विज्ञापनों में **मूल प्रस्तावना** का विज्ञापन प्रकाशित किया गया था।
- इस प्रकार उक्त विज्ञापन में 42वें संविधान संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़े गए तीन शब्दों - समाजवादी, पंथनिरपेक्ष एवं अखंडता को स्थान नहीं दिया गया।
- इसके बाद विभिन्न विपक्षी दलों एवं नागरिक समाज के कुछ कार्यकर्ताओं द्वारा सरकार के इस कदम की आलोचना की गयी।
- इसी दौरान केंद्र सरकार के एक मंत्री के इस बयान पर कि, "इस बात पर अब बहस होनी चाहिए कि, क्या 'समाजवाद' एवं 'पंथनिरपेक्ष' जैसे शब्दों का प्रस्तावना में स्थान दिया जाना चाहिए अथवा नहीं। यह विवाद सुर्ख़ियों में रहा था।

VISION IAS
This document is personalised for akash (akash.visionias@gmail.com)

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को हटाने में पक्ष तर्क

- **समाजवाद** शब्द का आशय है: "पूंजी, सम्पत्ति, भूमि आदि उत्पादन के साधनों पर राज्य का स्वामित्व एवं इनके वितरण में समानता"। यही कारण है कि संविधान निर्माताओं ने जान-बूझकर समाजवादी शब्द का प्रयोग प्रस्तावना में नहीं किया था। क्योंकि वे देश को किसी विशिष्ट आर्थिक संरचना से संबद्ध नहीं करना चाहते थे।
- **सेक्युलर (पंथनिरपेक्ष)** का आशय है: "धार्मिक अथवा आध्यात्मिक मामलों से राज्य का जुड़ा न होना एवं राज्य का संचालन किसी धार्मिक नियम से न होकर संविधान द्वारा होना। प्रस्तावना के हिंदी रूपांतरण में अंग्रेजी के सेक्युलर शब्द के लिए काफी सोच समझ कर धर्मनिरपेक्ष के बजाय पंथनिरपेक्ष शब्द कर प्रयोग किया गया है, क्योंकि हमारा संविधान एवं देश के विभिन्न कानून राज्य को धर्म से निरपेक्ष न होकर पंथ से निरपेक्ष होने की अपेक्षा करते हैं।
- मूल प्रस्तावना में 'भारत के समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक **न्याय** सुनिश्चित कराने की बात की गयी है। इस प्रकार, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय वस्तुतः एक समाजवादी राज्य को ही निरुपित करते हैं। राज्य के नीति-निदेशक तत्वों (DPSP) के अंतर्गत इन्हें (सामाजिक एवं आर्थिक न्याय) विशिष्ट स्थान दिया गया है, अतः ऐसे में प्रस्तावना में अलग से समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्द राजनीतिक उद्देश्यों की ओर इशारा करते हैं।
- मूल प्रस्तावना में "विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**" की भी बात कही गयी है। हम जानते हैं कि एक धर्मनिरपेक्ष राज्य में ही इन स्वतंत्रताओं की प्राप्ति संभव है। मूल अधिकार (FR) एवं DPSP के विभिन्न उपबंध इसकी रक्षा करते हैं।
- इन शब्दों को हटाये जाने के पीछे यह तर्क भी दिया जाता है कि, "03-01-1977 को 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को प्रस्तावना में समाविष्ट करने से पूर्व क्या भारत एक समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष राज्य नहीं था।"
- 1991 के आर्थिक सुधारों एवं वैश्वीकरण के पश्चात् सैद्धांतिक तौर पर अब समाजवाद शब्द लगभग अप्रासंगिक हो गया है और 1991 के पश्चात् यह व्यवहार में कम ही रहा है।

समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों को हटाने के विपक्ष में तर्क

- समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष जैसे शब्द हमारे संविधान के आदर्श हैं, सम्पूर्ण संविधान इससे ओत-प्रोत है। इन्हें धूमिल करने से राष्ट्रीय एकता एवं बंधुता नकारात्मक रूप से प्रभावित होगी।
- पंथनिरपेक्ष शब्द को हटाने से देश में सांप्रदायिक विभाजन को बढ़ावा मिल सकता है।
- FR, DPSP, आरक्षण, विशेष वर्गों के लिए विशेष प्रावधान, 5वीं एवं 6ठी अनुसूचियां आदि एक लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य की परिकल्पना करती हैं। अतः प्रस्तावना में समाजवादी शब्द इन्हें स्पष्टता प्रदान करता है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी कहा है कि प्रस्तावना संविधान के निर्वचन में सहायक है।
- 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष के अतिरिक्त **"अखंडता"** शब्द को भी इसमें समाविष्ट किया गया था। तो फिर क्या **अखंडता** शब्द को भी हटा दिया जाना चाहिए? इसका जवाब है, नहीं, अपितु हमें इन्हें बनाए रखने पर फोकस करना चाहिए, न कि इनका राजनीतिकरण करना चाहिए।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com (akash.visionias@gmail.com)

Website - https://upscpdf.com

आगे की राह

- प्रस्तावना में उल्लिखित समाजवादी एवं पंथनिरपेक्ष शब्दों पर बहस के बजाए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन, आवास, गरिमापूर्ण जीवन, रोजगार आदि पर बहस होनी चाहिए।
- समाजवादी शब्द को हटाने के बजाए इस पर बहस होनी चाहिए कि "सभी को वास्तविक समता की स्थिति" प्राप्त हो एवं समाज के शोषितों को गरिमापूर्ण जीवन एवं अधिकारविहीन वर्ग को अधिकार प्राप्त हों।
- प्रस्तावना में उल्लिखित न्याय (सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक) शब्द पर बहस होनी चाहिए।
- अंततः यह कहा जा सकता है कि प्रस्तावना में उल्लिखित ये शब्द संकीर्ण न होकर व्यापक अर्थ की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। अतः हमें इनका सम्मान करना चाहिए एवं इन आदर्शों को प्राप्त करने की ओर अग्रसर होना चाहिए।

4. उपसंहार

- प्रस्तावना का लक्ष्य एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है जहां जनता संप्रभु हो, शासन निर्वाचित हो और जनता के प्रति उत्तरदायी हो, शासन की सत्ता जनता के मौलिक अधिकारों से सीमित हो तथा जनता को अपने विकास का समुचित अवसर प्राप्त हो।
- यद्यपि वैधानिक रूप से प्रस्तावना न्यायालयों द्वारा लागू नहीं की जा सकती तथापि यह संविधान के विभिन्न प्रावधानों की व्याख्या करने में उपयोगी सिद्ध हो सकती है तथा किंकर्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में यह पथ प्रदर्शक के रूप में कार्य करती है।

VISION IAS
This document is personalised for akash.visionias@gmail.com (akash.visionias@gmail.com)

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन
3. संघ एवं राज्यक्षेत्र

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. परिचय 3

1.1. परिसंघ बनाम संघ 3

1.2. भारत का राज्यक्षेत्र 3

1.3. अनुच्छेद 2 - नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना 4

1.4. अनुच्छेद 3 - नये राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन 4

1.5. भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण संबंधी प्रावधान 6

1.6. राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों का उद्भव 7

1.7. राज्यों के पुनर्गठन की मांग का इतिहास 7

1.7.1. राज्य पुनर्गठन हेतु गठित विभिन्न आयोग 8

1.7.2. भारत में नए राज्यों का उद्भव: कालानुक्रम 9

1.7.3. भारतीय संघ में सम्मिलित संघ शासित प्रदेश 11

1.8. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित मुद्दें 12

1.9. राज्यों के नाम परिवर्तन से जुड़े मुद्दे 15

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1. परिचय

भारतीय संविधान के **भाग 1** के अंतर्गत **अनुच्छेद 1 से 4** तक संघ एवं राज्यक्षेत्र से संबंधित प्रावधानों की चर्चा की गयी है।

अनुच्छेद - 1 संघ का नाम और राज्यक्षेत्र

- *अनुच्छेद 1(1) - भारत, अर्थात् इंडिया, राज्यों का संघ होगा।*
- *अनुच्छेद 1(2) - राज्य और उनके राज्यक्षेत्र वे होंगे जो पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।*
- *अनुच्छेद 1(3) - भारत के राज्यक्षेत्र में समाविष्ट होंगे:*

  (क) राज्यों के राज्यक्षेत्र

  (ख) पहली अनुसूची में विनिर्दिष्ट संघ राज्यक्षेत्र

  (ग) ऐसे अन्य राज्यक्षेत्र जो अर्जित किये जाएं।

1.1. परिसंघ बनाम संघ

(Federation Vs Union)

- प्रारूप समिति द्वारा 'परिसंघ' शब्द के स्थान पर 'संघ' शब्द को वरीयता देने के पीछे एक विशेष उद्देश्य निहित था। उनका मानना था कि 'संघ' शब्द इस तथ्य को बेहतर तरीके से अभिव्यक्त कर सकता है कि (a) भारतीय संघ, प्रांतों के मध्य समझौते का परिणाम नहीं है (b) कोई भी राज्य या राज्यों का समूह संघ से अलग होने के लिए स्वतंत्र नहीं है । इसके साथ ही कोई भी राज्य स्वेच्छा से, अपने राज्य की सीमा में परिवर्तन भी नहीं कर सकता है।
- इस प्रकार भारत एक संघ है तथा यह विभक्त नहीं हो सकता। हालांकि प्रशासनिक सुविधा के लिए देश को विभिन्न राज्यों में बाँटा जा सकता है, किन्तु देश एक अखंड इकाई है, जहाँ लोग एक ही स्रोत से व्युत्पन्न, एक ही सत्ता के अंतर्गत रह रहे हैं।
- राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के नाम एवं उनके क्षेत्र विस्तार को संविधान की पहली अनुसूची में दर्शाया गया है। वर्तमान में, भारत में 29 राज्य एवं 7 केन्द्रशासित प्रदेश शामिल हैं।

1.2. भारत का राज्यक्षेत्र

(Territory of India)

- उल्लेखनीय है कि भारत का राज्यक्षेत्र (Territory of India), भारत के संघ (Union of India) से अधिक व्यापक अर्थ समेटे है। 'भारत के संघ' में केवल राज्य सम्मिलित हैं, जबकि 'भारत के राज्यक्षेत्र' में न केवल राज्य बल्कि संघशासित प्रदेश एवं वे क्षेत्र, जिन्हें केंद्र सरकार द्वारा भविष्य में कभी भी अधिगृहीत किया जा सकता है, भी सम्मिलित हैं।
- संघीय व्यवस्था में राज्य इसके सदस्य हैं और केंद्र के साथ शक्तियों के विभाजन में हिस्सेदार हैं। दूसरी तरफ, संघ शासित प्रदेश एवं केंद्र द्वारा अधिगृहीत क्षेत्र सीधे केंद्र सरकार द्वारा प्रशासित होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अधिगृहीत क्षेत्र (Acquired Territory)

किसी क्षेत्र को तब **अधिगृहीत क्षेत्र** कहा जाता है जब भारतीय संघ अंतर्राष्ट्रीय कानूनों के तहत उस क्षेत्र पर संप्रभुता प्राप्त कर ले। अर्जन द्वारा, युद्ध में जीत कर, किसी संधि के अनुसरण में, अध्यर्पण (Cession) द्वारा या स्वामीविहीन क्षेत्र पर कब्ज़ा करके ऐसा किया जा सकता है।

यदि किसी सार्वजनिक अधिसूचना, दावे या घोषणा के द्वारा भारत सरकार किसी क्षेत्र को भारत का अभिन्न अंग घोषित करती या मानती है, तो न्यायालय को इस '**अधिग्रहण**' को मान्यता प्रदान करना अनिवार्य हो जाएगा, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र अनुच्छेद 1(3)(C) के तहत संघ के राज्यक्षेत्र का हिस्सा होगा।

1.3. अनुच्छेद 2 - नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना

संसद, विधि द्वारा, ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो वह ठीक समझे, संघ में नए राज्यों का प्रवेश या उनकी स्थापना कर सकेगी।

इस प्रकार अनुच्छेद 2 संसद को दो शक्तियां प्रदान करता है जो निम्न हैं :

i. नये राज्य को भारत के संघ में सम्मिलित करने; और

ii. नये राज्यों की स्थापना करने की शक्ति।

- पहली शक्ति उन राज्यों के प्रवेश से सम्बंधित है जो पहले से अस्तित्व में हैं, जबकि दूसरी शक्ति नये राज्य, जो अस्तित्व में नहीं हैं, की स्थापना से सम्बंधित है, अर्थात् अनुच्छेद 2 उन राज्यों, जो **भारतीय संघ का हिस्सा नहीं** हैं, के प्रवेश और स्थापना से संबंधित है।
- इसके अतिरिक्त, यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि अनुच्छेद 2 संसद को पूर्ण शक्ति देता है कि ऐसे निबंधनों और शर्तों पर, जो **"वह ठीक समझे" (it thinks fit),** संघ में नये राज्यों का प्रवेश या स्थापना करे। परन्तु, ये निबंधन और शर्तें, अनिवार्यत: संविधान के आधारभूत सिद्धांत या मूल ढाँचे के अनुरूप होने चाहिए। संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जो 'एक नए राज्य को' संघ में प्रवेश या स्थापना के पश्चात्, पहले से विद्यमान राज्य के समान दर्जे का अधिकार प्रदान करे।

1.4. अनुच्छेद 3 - नये राज्यों का निर्माण और वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों में परिवर्तन

संसद, विधि, द्वारा -

(a) किसी राज्य में से उसका राज्य क्षेत्र अलग करके अथवा दो या अधिक राज्यों को या राज्यों के भागों को मिलाकर अथवा किसी राज्यक्षेत्र को किसी राज्य के भाग के साथ मिलाकर नये राज्य का निर्माण कर सकेगी;

(b) किसी राज्य के क्षेत्र को बढ़ा सकेगी;

(c) किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी;

(d) किसी राज्य की सीमाओं में परिवर्तन कर सकेगी;

(e) किसी राज्य के नाम में परिवर्तन कर सकेगी।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अनुच्छेद 3 के अंतर्गत प्रस्तुत किसी विधेयक को दो शर्तों का पालन करना अनिवार्य है:

i. विधेयक को राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही, दोनों में से किसी भी सदन में, प्रस्तुत किया जा सकता है।

ii. राष्ट्रपति विधेयक को, प्रभावित राज्य के विधानमंडल के विचार जानने के लिए विनिर्दिष्ट करेगा।

- राष्ट्रपति वह अवधि तय कर सकता है जिसके भीतर राज्य विधानमंडल को अपना विचार व्यक्त करना है। इस विनिर्दिष्ट अवधि या अन्य किसी अवधि (जिसकी राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्रदान की गई हो) के भीतर राज्य विधानमंडल के विचार प्राप्त न होने की स्थिति में भी विधेयक को पुरःस्थापित किया जा सकता है।
- संसद (या राष्ट्रपति), राज्य विधानमंडल के विचार को स्वीकार करने या उनके अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है और इसे स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है, भले ही यह विचार तय समय-सीमा के भीतर प्राप्त हो गया हो। यदि पूर्व में प्रस्तुत विधेयक में संसद द्वारा संशोधन किया जाता है तो प्रत्येक बार राज्य विधानमंडल के लिए नया सन्दर्भ बनाना (अर्थात् राज्य विधानमंडल को इसे पुन: वापस भेजना) आवश्यक नहीं है।
- अनुच्छेद 3, संसद को यह अधिकार प्रदान करता है कि वह नये राज्य बनाने, उनमें परिवर्तन करने, नाम बदलने या सीमा में परिवर्तन के सम्बन्ध में बिना राज्यों की अनुमति से कदम उठा सकती है। दूसरे शब्दों में, संसद अपने अनुसार भारत के राजनीतिक मानचित्र का पुनर्निर्धारण कर सकती है। इस प्रकार संविधान द्वारा क्षेत्रीय अखंडता या राज्य के अविभाज्य अस्तित्व की गारंटी नहीं दी गयी है। अतः भारत को **'विनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' (an indestructible Union of destructible states)** कहना सही है।
- उल्लेखनीय है कि अमेरिका की संघीय प्रणाली स्वतंत्र राज्यों के मध्य समझौते का परिणाम है, संघीय सरकार नए राज्यों का निर्माण या उनकी सीमाओं में परिवर्तन संबंधित राज्यों की अनुमति के बिना नहीं कर सकती। इसलिए अमेरिका को **'अविनाशी राज्यों का अविनाशी संघ' (an indestructible Union of indestructible States)** कहा गया है।
- भारतीय संदर्भ में डी. डी. बसु के अनुसार भारतीय संसद को इस तरह की उदार शक्तियां दिए जाने के पीछे प्रमुख तर्क यह है कि भारत सरकार अधिनियम के अधीन प्रांतों का समूहीकरण ऐतिहासिक और राजनीतिक कारकों के आधार पर था, न कि स्वयं लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी विभाजन के आधार पर। संविधान के निर्माण के समय प्रान्तों के प्राकृतिक संरेखण के अनुसार उनके पुनर्गठन का प्रश्न उत्पन्न हुआ था लेकिन उस समय समस्या की जटिलता को देखते हुए इस विशाल कार्य का उत्तरदायित्व नहीं लिया जा सका।
- ऐसे कई उदाहरण हैं जहां राज्य विधानमंडलों ने नए राज्यों के गठन के लिए प्रस्ताव पारित किए हैं। लेकिन संवैधानिक रूप से कोई राज्य, नए राज्य के निर्माण इत्यादि की प्रक्रिया की शुरुआत नहीं कर सकता है। इसकी शुरूआत केंद्रीय मंत्रिपरिषद की सलाह से राष्ट्रपति की पूर्वानुमति द्वारा ऐसे विधेयक को संसद में पेश करने से होती है। नवंबर, 2011 में उत्तर प्रदेश विधानसभा द्वारा राज्य को चार भागों पूर्वांचल, पश्चिम प्रदेश, अवध प्रदेश और बुंदेलखंड में विभाजित करने का प्रस्ताव पारित किया गया जिसका केवल सांकेतिक मूल्य था जबकि संवैधानिक रूप से इसका कोई महत्व नहीं था।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- पहली और चौथी अनुसूची के संशोधन तथा इस सन्दर्भ में अनुपूरक, आनुषंगिक, और पारिणामिक विषयों का उपबंध करने के लिए अनुच्छेद 2 और अनुच्छेद 3 के अधीन बनायी गयी विधियों को अनुच्छेद 368 के अंतर्गत संविधान संशोधन नहीं माना जाएगा। इसका अर्थ यह है कि ऐसी विधियाँ साधारण बहुमत एवं साधारण विधायी प्रक्रिया के माध्यम से पारित की जा सकती हैं।

1.5. भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण संबंधी प्रावधान

- क्या किसी भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण (किसी भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को देना) के लिए संविधान संशोधन की आवश्यकता है? यह प्रश्न 1960 में, राष्ट्रपति द्वारा एक परामर्श के रूप में उच्चतम न्यायलय के समक्ष प्रस्तुत किया। केंद्र सरकार द्वारा 1958 के नेहरु-नून समझौते के क्रियान्वयन हेतु **बेरुबारी संघ** (पश्चिम बंगाल) पाकिस्तान को हस्तांतरित कर दिया गया जिसने राजनीतिक विद्रोह और विवाद को जन्म दिया। इसी आलोक में राष्ट्रपति को सर्वोच्च न्यायालय से यह परामर्श लेना पड़ा।
- उच्चतम न्यायालय ने कहा कि भारतीय क्षेत्र को किसी अन्य देश को अध्यर्पित करने (सौंपने) की शक्ति संसद के पास **नहीं** है। यह कार्य केवल अनुच्छेद 368 में संशोधन के ज़रिये ही किया जा सकता है। इस प्रकार **किसी अन्य देश को कोई भारतीय क्षेत्र केवल अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन के माध्यम से ही अध्यर्पित किया जा सकता है**। परिणामस्वरूप, उक्त क्षेत्र को पाकिस्तान को हस्तांतरित करने के लिए **9वाँ संविधान संशोधन अधिनियम** पारित किया गया।
- भारत एवं बांग्लादेश के मध्य 1974 के भूमि सीमा समझौते के तहत एन्क्लेवों (विदेशी अंतः क्षेत्रों) के परस्पर विनिमय के लिए एक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किये गए। हालांकि इसकी पुष्टि संसद द्वारा होनी आवश्यक थी। इसी आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए 119वां संविधान संशोधन विधेयक-2013 प्रस्तुत किया गया था। विधेयक को दोनों सदनों एवं राष्ट्रपति द्वारा स्वीकृति मिलने के पश्चात् **100वां संविधान संशोधन** के रूप में उल्लिखित किया गया है।
- दूसरी ओर, 1969 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि भारत और किसी अन्य देश के मध्य **सीमा-विवाद के निपटारे के लिए** संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता नहीं है। यह कार्यपालिका द्वारा कार्रवाई के माध्यम से किया जा सकता है क्योंकि यह मामला अन्य किसी देश के लिए भारतीय क्षेत्र के अध्यर्पण की श्रेणी में नहीं आता।

- कच्चातिवु द्वीप: भारत और श्रीलंका के मध्य 1974 और 1976 में हुई संधियों के माध्यम से भारत ने कच्चातिवु द्वीप श्रीलंका को अध्यर्पित कर दिया। बेरुबारी मामले में दिए गए निर्देश के अनुसार भारतीय भू-भाग का किसी अन्य देश को हस्तान्तरण केवल संवैधानिक संशोधन के माध्यम से किया जा सकता है। हाल ही में, तमिलनाडु सरकार द्वारा श्रीलंका को कच्चातिवु द्वीप के हस्तांतरण को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्थापित प्रक्रिया और निर्देश का उल्लंघन मानते हुए सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गयी थी।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.6. राज्यों एवं संघशासित प्रदेशों का उद्भव

(Evolution of states and union territories)

- स्वतंत्रता के पश्चात्, भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन राष्ट्रीय समेकन और एकीकरण का एक मुख्य पक्ष बन गया। देसी रियासतों के एकीकरण की प्रक्रिया के साथ उन प्रांतों, जिनकी सीमाओं का निर्धारण अंग्रेजों द्वारा अतार्किक रूप से किया गया था, को एकीकृत करने का कार्य अत्यंत श्रमसाध्य था। हालांकि इस प्रक्रिया ने अंततः स्वातंत्रोत्तर भारत की विविधता को बढ़ाया। ब्रिटिश भारत में प्रान्त दो प्रकार के थे:
  - गवर्नर-जनरल के प्रति उत्तरदायी ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा प्रत्यक्षतः शासित प्रांत, एवं
  - स्थानीय वंशानुगत शासकों के अधीन देसी रियासतें, जिनके सन्दर्भ में ब्रिटिश सरकार संप्रभु तो थी किन्तु संधि के आधार पर उन्हें स्वायत्तता प्रदान की गयी थी।
- भारत ने 15 अगस्त, 1947 को जब स्वतंत्रता प्राप्त की तो ब्रिटिश सरकार ने उन 600 से अधिक रियासतों के साथ अपने संधि आधारित संबंधो को समाप्त कर दिया जिनके पास भारत या पाकिस्तान में से किसी एक में विलय का विकल्प था। रियासतों में से अधिकांश भारत में या तो स्वेच्छा से या सशस्त्र हस्तक्षेप के माध्यम से सम्मिलित हुईं।
- 1947-1950 की अवधि के दौरान, इन राज्यों को राजनीतिक रूप से भारतीय संघ में या तो संलग्न प्रांतों के साथ विलय द्वारा या नए प्रांतों के रूप में इनके गठन द्वारा एकीकृत किया गया। 26 जनवरी 1950 को जब नया संविधान अस्तित्व में आया तो उस समय भारतीय संघ की घटक इकाइयों को चार वर्गों में विभाजित किया गया था:
- **श्रेणी-A** के राज्यों में तत्कालीन गवर्नर के अधीन शासित प्रांत सम्मिलित थे। इस श्रेणी में असम, बिहार, मुंबई, मध्य प्रदेश, मद्रास, उड़ीसा, पंजाब, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल सम्मिलित थे।
- **श्रेणी-B** के राज्यों में पूर्व रियासतें या उनका समूह शामिल था जो राजप्रमुख द्वारा शासित थे। यह राजप्रमुख अक्सर निर्वाचित विधायिका से युक्त कोई पूर्व राजकुमार होता था। इन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता था। इस श्रेणी के शामिल राज्य थे - हैदराबाद, जम्मू-कश्मीर, मध्य भारत, मैसूर, पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य संघ (PEPSU), राजस्थान, सौराष्ट्र, त्रावणकोर-कोचीन और विंध्य प्रदेश।
- **श्रेणी-C** के 10 राज्यों में पूर्व मुख्य आयुक्त के शासनाधीन प्रान्त थे और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह को छोड़कर कुछ रियासतें शामिल थीं। इसमें सम्मिलित राज्यों में अजमेर, भोपाल, बिलासपुर, कूच बिहार, कुर्ग, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, कच्छ, मणिपुर और त्रिपुरा थे ।
- **श्रेणी-D** में अंडमान और निकोबार द्वीप समूह शामिल था जिसे लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा प्रशासित किया जाता था।

1.7. राज्यों के पुनर्गठन की मांग का इतिहास

- भारत में अंग्रेजों का विजय अभियान लगभग 100 वर्षों से अधिक समय तक चला जिसके परिणामस्वरूप राज्यों की आतंरिक सीमाएँ अव्यवस्थित एवं अतार्किक ढंग से निर्मित हुईं। इन राज्यों के गठन में भाषाई और सांस्कृतिक एकजुटता का ध्यान नहीं रखा गया जिसके चलते ये बहुभाषिक और बहुसांस्कृतिक चरित्र वाले बने।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- भाषाई आधार पर राज्यों के गठन की मांग बहुत पुरानी है। यह स्वतंत्रता प्राप्ति से बहुत पहले से उठती रही है। लगभग एक सदी के प्रयासों के बाद ब्रिटिश शासन में ही सर्वप्रथम भाषाई आधार पर 1936 में उड़ीसा प्रान्त का गठन हुआ। इसमें मधुसूदन दास की प्रमुख भूमिका थी।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी स्वंतंत्रता पूर्व इस आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग को उचित माना। 1917 में ही कांग्रेस की राज्य इकाइयों को भाषायी आधार पर संरचित करने का निर्णय लिया गया। 1946 के चुनाव में कांग्रेस के चुनावी घोषणापत्र में भी इसे स्थान दिया गया।
- किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत विभाजन के कटु अनुभव के कारण, भाषाई जैसे किसी भी आधार पर राज्यों के गठन को विभाजनकारी तत्वों के इरादों को बढ़ावा देने वाला माना गया और इसे संदेहात्मक दृष्टि से देखा जाने लगा।

1.7.1. राज्य पुनर्गठन हेतु गठित विभिन्न आयोग

- नए राज्यों के गठन हेतु सभी वर्गों की ओर से निरंतर उठने वाली मांगों के चलते, 1948 में भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष द्वारा भारत में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न पर विचार करने के लिए **एस. के. धर** की अध्यक्षता में एक **भाषाई प्रांत आयोग (धर आयोग)** का गठन किया गया। अपनी रिपोर्ट में आयोग ने सिफारिश किया कि राज्यों का पुनर्गठन भाषाई आधार के स्थान पर प्रशासनिक सुविधा के आधार पर ही होना चाहिए। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1949 के अपने जयपुर अधिवेशन में धर आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के लिए एक उच्चस्तरीय भाषायी राज्य समिति का गठन किया, जिसमें **जवाहरलाल नेहरू, वल्लभभाई पटेल तथा पट्टाभि सीतारमैया** शामिल थे। इसे **जेवीपी समिति** कहा गया। इस समिति ने भी अपनी रिपोर्ट में राज्यों के भाषायी पुनर्गठन के प्रस्ताव के साथ आगे बढ़ने में अत्यंत सावधानी बरतने की सलाह दी।
- हालाँकि 1952 तक भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की मांग काफ़ी मज़बूत हो चुकी थी। अक्टूबर 1953 में भारत सरकार को भाषा के आधार पर प्रथम राज्य का गठन करने के लिए मजबूर होना पड़ा और मद्रास से 16 तेलगू भाषी जिलों को पृथक कर तटीय आंध्र एवं रायलसीमा क्षेत्रों को सम्मिलित कर एक नया राज्य आंध्र प्रदेश निर्मित किया गया। इस दौरान 56 दिनों की भूख हड़ताल के बाद कांग्रेस कार्यकर्ता पोट्टी श्रीरामुलू की मृत्यु हो गयी थी। (श्रीरामुलू गाँधीवादी स्वतंत्रता सेनानी थे, जिन्होंने दलित उत्थान के लिए उल्लेखनीय कार्य किया था और नमक सत्याग्रह में भी भाग लिया था)।
- इसके पश्चात, जवाहर लाल नेहरू ने पूरे मामले की जांच करने के लिए, **फजल अली** की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय **राज्य पुनर्गठन आयोग (1953)** की नियुक्ति की। आयोग के अन्य दो सदस्य **के. एम. पणिक्कर और एच. एन. कुंजरू** थे। **1955** में आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। आयोग ने राज्यों के पुनर्गठन हेतु प्रशासनिक तथा आर्थिक कारकों को ध्यान में रखा पर साथ ही भाषाई सिद्धांत के अधिकांश भाग को स्वीकार करते हुए भाषा को एक प्रमुख आधार के रूप में माना।
- राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा किसी राज्य के गठन के लिए किसी क्षेत्र की मांग स्वीकार करने के लिए चार मापदंड निर्धारित किये गए:
  - राज्य, भाषाई और सांस्कृतिक एकता के आधार पर बनाए जायें
  - राज्यों का गठन राष्ट्रीय एकता की रक्षा तथा उसे मजबूत बनाने के लिए हो
  - नए राज्यों का गठन वित्तीय, प्रशासनिक और आर्थिक व्यवहार्यता के द्वारा भी नियंत्रित होना चाहिए
  - यह पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन की प्रक्रिया में सहायता करे।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, नवंबर 1956 में संसद द्वारा पारित किया गया। इसके द्वारा चौदह राज्यों और छह केन्द्र प्रशासित प्रदेशों का निर्माण किया गया। साथ ही **सातवें संवैधानिक संशोधन अधिनियम** द्वारा राज्यों के चार श्रेणियों (A, B, C और D) में हुए वर्गीकरण को समाप्त कर दिया गया।
- 1950 में भारतीय संघ के समेकन के बाद से मौजूदा राज्य की सीमाओं के पुनर्गठन के लिए मोटे तौर पर पुनर्गठन को तीन व्यापक चरणों के अंतर्गत वर्गीकृत किया जा सकता है।
- पहला प्रमुख पुनर्गठन, सुगठित भाषायी प्रांतों के निर्माण के लिए एक राष्ट्रव्यापी आंदोलन के बाद 1956 में हुआ। कश्मीर को पहले से ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के द्वारा, इसे दी गई विशेष स्थिति के आधार पर, संघ में शामिल कर लिया गया था।
- दूसरी बड़ी पहल 1970 के दशक में हुई जब पूर्वोत्तर में नए राज्यों का गठन किया गया। 1963 में नागालैंड की स्थापना के बाद कुछ नए राज्यों का गठन हुआ।
- तीसरे चरण में भारत के उत्तरी प्रांतों में झारखंड, उत्तरांचल और छत्तीसगढ़ की स्थापना की गयी। 2014 में तेलंगाना, आन्ध्र प्रदेश राज्य से अलग होकर बना भारत का नवीनतम राज्य है।

1950 के दशक के दौरान हुए भाषाई पुनर्गठन ने राजनीतिक और प्रशासनिक इकाइयों में सांस्कृतिक पहचान को सम्मिलित करने में प्रमुख योगदान दिया। भारतीय लोकतंत्र द्वारा प्रारंभ से ही जनता के एक बड़े वर्ग की आकांक्षाओं का सम्मान किया गया और भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन करके, राष्ट्रीय नेतृत्व ने एक ऐसी प्रमुख शिकायत का समाधान किया जो विभाजनकारी प्रवृत्तियों को उकसाने में समर्थ थी।

पुनर्गठन का प्रत्येक चरण केंद्र तथा संघीय इकाइयों के मध्य राजनीतिक शक्ति के संतुलन पर आधारित था। पुनर्गठन ने गंभीरता से राष्ट्र की एकता को कमजोर किये बिना भारत के राजनीतिक मानचित्र को युक्तिसंगत बनाया। इसलिए राज्यों के पुनर्गठन को **'सर्वश्रेष्ठ तरीके से प्राप्य राष्ट्रीय एकता'** के लिए आधार तैयार करने वाला कारक माना जाता है।'

1.7.2. भारत में नए राज्यों का उद्भव: कालानुक्रम

आन्ध्र प्रदेश	मद्रास राज्य से कुछ क्षेत्रों को पृथक कर, आंध्र राज्य अधिनियम (1953) द्वारा, इस राज्य का गठन किया गया। इसकी राजधानी कुर्नुल थी और उच्च न्यायालय गुंटूर में स्थापित किया गया था।
केरल	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा केरल राज्य का गठन किया गया। इसमें त्रावणकोर और कोचीन क्षेत्र सम्मिलित किये गए।
कर्नाटक	राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 द्वारा मैसूर रियासत से विभाजित करके बनाया गया। 1973 में मैसूर का नया नाम कर्नाटक रखा गया।

VISION IAS

गुजरात और महाराष्ट्र	मुंबई (पुनर्गठन) अधिनियम 1960 द्वारा मुंबई राज्य को दो राज्यों अर्थात् महाराष्ट्र और गुजरात में विभक्त किया गया।
नागालैंड	इसका गठन नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 द्वारा असम राज्य से पृथक कर किया गया था।
हरियाणा	पंजाब (पुनर्गठन) अधिनियम, 1966 द्वारा पंजाब राज्य से पृथक कर गठन किया गया।
हिमाचल प्रदेश	केंद्र शासित प्रदेश हिमाचल प्रदेश को हिमाचल प्रदेश राज्य अधिनियम, 1970 द्वारा राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।
मेघालय, मणिपुर और त्रिपुरा	इसे सर्वप्रथम 22वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1969 द्वारा असम राज्य के भीतर एक 'उप-राज्य' या 'स्वायत्त राज्य' के रूप में पृथक किया गया। तत्पश्चात् 1971 में, उत्तर पूर्वी क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम 1971 द्वारा मेघालय को एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ। पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम 1971 द्वारा दोनों केंद्र शासित प्रदेशों मणिपुर एवं त्रिपुरा को राज्य का दर्जा मिला। मिज़ोरम और अरुणाचल प्रदेश नामक दो केंद्र शासित प्रदेश (मूलत: जिसे नार्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी-NEFA के नाम से जाना जाता है) भी अस्तित्व में आए।
सिक्किम	पहले सिक्किम को 35 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1974 द्वारा सम्बद्ध राज्य (Associate State) का दर्जा दिया गया था, जब यह 'चोग्याल' शासन के अधीन था। 1975 में 36 वें संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा इसे एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।
मिज़ोरम	मिज़ोरम राज्य अधिनियम, 1986 द्वारा इसे एक पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया।
अरुणाचल प्रदेश	इसे अरुणाचल प्रदेश अधिनियम, 1986 द्वारा एक पूर्ण राज्य का दर्जा प्राप्त हुआ।

VISION IAS

गोवा	यह गोवा, दमन और दीव केंद्र शासित प्रदेश से अलग कर दिया गया और गोवा को पूर्ण राज्य बना दिया गया था। दमन और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 में गोवा को पूर्ण राज्य बना दिया गया परन्तु दमन और दीव को केंद्र शासित प्रदेश ही रखा गया।
छत्तीसगढ़	1 नवंबर, 2000 को मध्य प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
उत्तराखंड	9 नवंबर, 2000 को उत्तर प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
झारखंड	15 नवम्बर, 2000 को बिहार को विभक्त कर इसका गठन किया गया।
तेलंगाना	2 जून, 2014 को आंध्र प्रदेश को विभक्त कर इसका गठन किया गया।

सिक्किम का भारत संघ के साथ एकीकरण

- सिक्किम मूलत: भारत का एक संरक्षित राज्य था। 1974 में इसे संविधान में संशोधन (35वां संशोधन अधिनियम) द्वारा भारतीय संघ के एक 'सम्बद्ध राज्य' (Associate state) का दर्जा दिया गया था। 1975 में सिक्किम विधानसभा में चोग्याल (शाही) शासन को समाप्त करने और सिक्किम को भारत के एक संघटक क्षेत्र के रूप में घोषित करने के प्रस्ताव को स्वीकृत किया गया।

संरक्षित राज्य (Protectorate)

अन्तर्राष्ट्रीय कानून के तहत संरक्षित राज्य वह राजनीतिक इकाई है जो औपचारिक रूप से संधि द्वारा किसी अन्य सुदृढ़ राज्य जिसे संरक्षक राज्य कहा जाता है, से सम्बन्ध स्थापित करता है। यह सुदृढ़ संरक्षक राज्य किसी तीसरे पक्ष के विरुद्ध संरक्षित राज्य की रक्षा (कूटनीतिक या सैन्य) करने के लिए सहमत होता है। इसके बदले में संरक्षित राज्य सामान्यत: निर्दिष्ट दायित्वों को स्वीकार करता है।

एक सामान्य जनमत संग्रह द्वारा इस राज्य के भारतीय संघ के साथ एकीकरण का मार्ग प्रशस्त किया गया। परिणामस्वरूप संसद द्वारा 1975 में 36वां संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया गया और सिक्किम, भारतीय संघ का 22वां राज्य बन गया।

1.7.3. भारतीय संघ में सम्मिलित संघ शासित प्रदेश

- 1987 के बाद से सात केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, दादरा और नगर हवेली, लक्षद्वीप, दमन और दीव, पांडिचेरी और चंडीगढ़ है।
- पांडिचेरी केंद्र शासित प्रदेश के लिए संसद ने अनुच्छेद 239A के तहत एक कानून बनाकर अर्थात् पांडिचेरी (प्रशासन) अधिनियम, 1962 द्वारा विधायिका आदि के लिए प्रावधान किया।
- दिल्ली में विधायिका और मंत्रालय की स्थापना के लिए 1992 में संविधान संशोधन द्वारा दो नए अनुच्छेद अर्थात् अनुच्छेद 239AA एवं 239AB जोड़े गए। अनुच्छेद 239AA द्वारा इसे दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र (NCR) के रूप में नामित किया गया।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- शेष केंद्र शासित प्रदेश, केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र हैं तथा राष्ट्रपति, अपने द्वारा नियुक्त 'प्रशासक' के माध्यम से और इन प्रदेशों में सुशासन के लिए विनियम के आदेश जारी कर प्रशासन करते हैं। **(अनुच्छेद 239-240)।**

पुदुचेरी (पांडिचेरी) का अधिग्रहण एवं भारत संघ में प्रवेश

- यह क्षेत्र पूर्व फ्रांसीसी उपनिवेश था । 1956 में भारत और फ्रांस द्वारा सत्तान्तरण संधि (Treaty of Cession) पर हस्ताक्षर किए गए। 1962 तक, जब फ्रांसीसी संसद ने समझौते की पुष्टि की, तब तक इसे 'अधिगृहीत क्षेत्र' का दर्जा दिया गया था। अंतत: 1962 में भारत और फ्रांस के द्वारा अनुसमर्थन प्रपत्रों का आदान-प्रदान किया गया। इसके तहत फ्रांस ने उसके द्वारा अधिकृत क्षेत्रों की पूर्ण संप्रभुता भारत को सौंप दी। तत्पश्चात् इसे केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा प्रदान किया गया।
- इसके अतिरिक्त 2006 में, संसद ने इस केंद्र शासित प्रदेश के लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप पांडिचेरी केंद्र शासित प्रदेश का नाम परिवर्तित कर पुदुचेरी करने के लिए एक विधेयक पारित किया। पुदुचेरी में चार क्षेत्र अर्थात् पुदुचेरी, कराईकल, माहे और यनम सम्मिलित हैं।

1.8. राज्यों के पुनर्गठन से संबंधित मुद्दें

क्या नए राज्यों की मांगे राष्ट्रीय एकता के लिए चुनौती प्रस्तुत करती हैं ?

- रामचंद्र गुहा का तर्क है कि भाषाई राज्यों के गठन ने भारत की एकता की रक्षा की है। पाकिस्तान विभाजित हो गया और श्रीलंका में दीर्घकालीन गृह-युद्ध हुआ क्योंकि पाकिस्तान के मामले में बंगाली भाषियों और श्रीलंका के मामले में तमिल भाषियों को उस स्वायत्तता और गरिमा से वंचित रखा गया जिसके वे हक़दार थे।
- दूसरी ओर, भारत में नागरिकों को उनकी ही भाषा में शिक्षित होने और खुद को प्रशासित करने की स्वंत्रतता ने उनमें आश्वासन, उत्तरदायित्व और सुरक्षा की भावना पैदा की है तथा **'पहचान के संकट'** (Identity Crisis) को उत्पन्न होने से रोका।
- प्रख्यात विद्वानों और कई अन्य का मानना है कि भाषाई राज्य, भारतीय स्वतंत्रता के प्रारंभिक दौर में आवश्यक थे, लेकिन अब राज्यों के 'एक और पुनर्गठन' का समय आ गया है। हाल ही में तेलंगाना का निर्माण इसका एक उदाहरण है। विदर्भ और गोरखालैंड आदि के समर्थकों के पास भी मजबूत मुद्दे हैं। ये क्षेत्र पर्यावरणीय और सांस्कृतिक अर्थ में बेहतर रूप से परिभाषित हैं और ऐतिहासिक रूप से राज्यों के अधिक शक्तिशाली या समृद्ध हिस्से द्वारा उपेक्षित रहे हैं।
- आजादी के 70 वर्षों बाद, भारत की एकता के बारे में किसी भय की आवश्यकता नहीं रह गई है। भारतवर्ष अखंड रहेगा। आज भारत की वास्तविक समस्या शासन की गुणवत्ता है तथा छोटे राज्य इस समस्या का एक समाधान प्रस्तुत कर सकते हैं।

क्या द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग की आवश्यकता है?

- नए राज्यों की बढ़ती मांग द्वारा भारत की संघीय लोकतांत्रिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के संबंध में कुछ प्रश्न उत्पन्न किये गए है। संघीय पुनर्गठन के मुद्दे का समाधान करने के लिए किसी भी ढांचे को तैयार करते समय चार उपायों पर विचार किया जाना चाहिए।

Website - https://upscpdf.com

- एक स्थायी राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन
- नए राज्य की मांग राज्य विधायिका द्वारा उत्पन्न हो, केंद्र से नहीं, यह सुनिश्चित करने के लिए संविधान में संशोधन
- राजनीतिक विचार के स्थान पर आर्थिक और सामाजिक व्यवहार्यता परीक्षण आधारित मांग
- धर्म, जाति और भाषा को नए राज्य के गठन का वैध आधार बनाने के बजाय विकास और शासन जैसे लोकतांत्रिक मुद्दों को प्रोत्साहित करने के स्पष्ट सुरक्षा उपाय

- भारत के राज्यों के आकार और ढांचे का एक अधिक व्यापक अवलोकन करने के लिए लंबे समय से द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग (SRC) की स्थापना की मांग की जा रही है। यदि एक नये SRC का गठन किया जाये तो उसे प्रश्नों की निम्नलिखित श्रेणियों का समाधान करना होगा:

1. क्या भारत को और राज्यों की आवश्यकता है?

- भारत प्रति राज्य जनसंख्या के अनुसार राज्यों की संख्या के मामले में संघीय देशों की तालिका में सबसे नीचे आता है। इसका प्रति राज्य जनसंख्या का औसत 35 मिलियन है। जोकि तुलनात्मक रूप से ब्राज़ील में 7 मिलियन, अमेरिका में 6 मिलियन, नाइजीरिया में 4 मिलियन है।
- हालांकि भौगोलिक दृष्टि से इसके राज्यों का आकार अधिक बड़ा नहीं है। अमेरिका के लगभग 200,000 वर्ग किलोमीटर और ब्राजील के 300,000 वर्ग किलोमीटर की तुलना में भारत के राज्यों का आकार औसतन 110,000 वर्ग किलोमीटर है। जर्मन राज्यों (Länderare) का औसत क्षेत्रफल लगभग 22,000 वर्ग किलोमीटर, जबकि स्विस केंटन का औसत केवल 1,588 वर्ग किलोमीटर हैं।
- अतः प्रति राज्य जनसंख्या के अनुसार राज्यों की संख्या की दृष्टि से, यह अन्य संघीय देशों से पीछे है, लेकिन भौगोलिक क्षेत्र की दृष्टि से यह उनके लगभग बराबर या कम ही है।

2. क्या छोटे राज्य का अर्थ बेहतर शासन प्रदान करना है?

- दूसरे, नए आयोग को इस पर आवश्यक रूप से विचार करना होगा कि क्या राज्यों का आकर कम करने से प्रशासन में सुधार की संभावना है। नए राज्यों के गठन से राज्यों की संख्या में वृद्धि होगी तथा नए राज्यों को नई राजधानियों, प्रशासनिक संरचना, अदालतों और कर्मियों की आवश्यकता होती है।
- जबकि "ग्रेवी ट्रेन" (पैसे एवं संसाधनों तक सुलभ पहुँच) की अवधारणा के कारण आलोचक कभी-कभी नए राज्यों के गठन के खर्च और अक्षमता के विचार की निंदा करते हैं। उनका तर्क है कि राज्यों की प्रशासन एवं संसाधनों तक पहुँच में वृद्धि कर उनकी क्षमता में सुधार किया जा सकता है।
- भारत की G-20 देशों के मध्य सार्वजनिक क्षेत्र के रोजगार की दर सबसे कम है। सार्वजनिक कर्मचारियों की संख्या में कमी, कराधान, न्याय, सुरक्षा और बुनियादी सुविधाओं जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य में भारतीय राज्यों की क्षमता को कमजोर करती है। फिर भी रिक्त पदों को भरना कौशल सुधार और उच्च शिक्षा पर निर्भर करता है, लेकिन नए राज्यों की इस संबंध में कोई गारंटी नहीं है।

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- राज्यों के आकार को कम करने और शासन में सुधार के मध्य कोई अनिवार्य संबंध नहीं है। राज्य के आकार और शासन के मध्य सम्बन्ध वाले अक्सर इस पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं कि छोटे राज्य भौगोलिक दृष्टि से अधिक सुसंगठित और सामाजिक रूप से अधिक एकजुट होगें और इससे सार्वजनिक खर्च की दक्षता में सुधार करने में मदद मिलेगी।

- यह भी माना जाता है कि छोटे राज्य निर्वाचित प्रतिनिधियों और मतदाताओं के बीच की दूरी को कम करके जवाबदेही में सुधार कर सकते हैं। फिर भी यदि , गरीबी में कमी या आर्थिक विकास के के संदर्भ में बेहतर प्रदर्शन को देखें, तो हमें राज्य के आकार और प्रदर्शन के मध्य कोई स्पष्ट सहसंबंध दृष्टीगोचर नहीं होता है। भारत के नए राज्यों तेलंगाना, छत्तीसगढ़, झारखंड और उत्तराखंड का मिश्रित अनुभव यह दर्शाता है कि राज्य के नयेपन में विकास को बढ़ावा देने की संभावना अंतर्निहित होना आवश्यक नहीं है।

3. नए राज्यों के निर्माण के अतिरिक्त अन्य उपलब्ध विकल्प क्या हैं ?

- नए SRC के समक्ष तीसरा प्रश्न यह है कि अगर नए राज्यों के निर्माण का आधार प्रशासनिक दक्षता है तो क्या नए राज्यों के निर्माण के कोई अन्य विकल्प भी हैं जोकि संबंधित मुद्दों का निवारण कर सकें?

- कुछ मामलों में केंद्रीय संसाधनों का बेहतर वितरण या राज्य स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को सत्ता का बेहतर हस्तांतरण, नया राज्य बनाने से अधिक वांछित परिणाम दे सकता है। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि नगर निगमों, स्वायत्त क्षेत्रीय परिषदों या पंचायती राज संस्थाओं के रूप में उप-राज्य संस्थाओं को अधिकार देने में राज्यों का बहुत हद तक मिश्रित प्रदर्शन रहा है।

4. नए राज्यों को बनाए जाने का निर्धारण कौन करेगा ?

- नई SRC को निश्चित रूप से इस प्रश्न का जवाब देना चाहिए कि यदि नए राज्य बनाए जाने हैं तो इसका निर्धारण कौन करेगा। यह भारत की संवैधानिक व्यवस्था की एक दिलचस्प विशेषता है कि अनुच्छेद 3 (जो प्रभावी रूप से केंद्र सरकार को नये राज्यों के निर्माण की शक्ति देता है) की केंद्रीकृत प्रकृति के बावजूद, राज्य विभाजन पर वास्तविक संघर्ष राज्य स्तर के परिदृश्य में किये जाते हैं। नए SRC को इस पर विचार करना चाहिए कि क्या विभाजन का समर्थन करने के लिए राज्य विधानसभा के संकल्प को अनिवार्य बनाया जाना चाहिए।

5. राज्य के दर्जे की मौजूदा मांग के निर्णय

- अंत में, भविष्य में गठित होने वाले SRC को गोरखालैंड, विदर्भ, बोडोलैंड, बुंदेलखंड, हरित प्रदेश और अन्य जगहों में राज्य के दर्जे की वर्तमान मांगों पर निर्णय करने की आवश्यकता होगी। भविष्य में किसी भी SRC के लिए एक अनुत्तरित प्रश्न, राज्य के 'सही' आकार, का उत्तर खोजना आसान नहीं होगा। किस क्षेत्र को राज्य बनाया जाना चाहिए इसका सार्वभौम या सबके लिए स्वीकार्य उत्तर नहीं है। राज्य केवल क्षेत्रीय, राजनीतिक, संस्कृतियों, समरूपता एवं पहचान की मांग, भौगोलिक और आर्थिक कारकों के बीच समझौते या संतुलन के रूप में उभर सकते हैं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.9. राज्यों के नाम परिवर्तन से जुड़े मुद्दे

अगस्त 2016 में, पश्चिम बंगाल विधानसभा ने एक प्रस्ताव पारित किया, जिसमें पश्चिम बंगाल राज्य का नाम बदलकर बंगाली (भाषा) में "बंग्ला" और अंग्रेजी में "बंगाल" किए जाने के संबंध में प्रावधान है।

राज्यों के नाम परिवर्तन से संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- अनुच्छेद 3 संसद को किसी भी राज्य के नाम में परिवर्तन करने की शक्ति प्रदान करता है।
- अनुच्छेद 3 के अधीन विधि बनाने की जो प्रक्रिया विहित की गयी है, उसका यहाँ पालन किया जाता है। अर्थात्, संसद विधि बनाकर ही यह कार्य करती है।
- अनुच्छेद 3 के अधीन संविधान संशोधन के बिना ऐसा किया जा सकता है। लेकिन, यदि उक्त राज्य की भाषा में परिवर्तन (जैसे: उड़िया के स्थान पर ओडिया; 96वां संविधान संशोधन) के संबंध में प्रावधान हो तथा जो संविधान की आठवीं अनुसूची में परिवर्तन से संबंधित हो तो इस हेतु संविधान संशोधन विधेयक की आवश्यकता होती है।

राज्यों के नाम परिवर्तन की आवश्यकता क्यों ?

- ब्रिटिश शासन के दौरान अंग्रेजों ने अपनी प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से कई भारतीय प्रांतो, क्षेत्रों एवं शहरों का नाम परिवर्तित किया था।
- इनके नामकरण में ब्रिटिश प्रभाव भी झलकता है, जहां उनके ऐतिहासिक नामकरण को अनदेखा किया गया है।
- ऐसे प्रांतों, शहरों आदि की स्थानीय भाषा एवं अंग्रेजी भाषा में उच्चारण एवं ध्वन्यात्मक (Phonetic) समस्या भी इनके नाम में परिवर्तन के कारक रहे हैं। जैसे- यूनाइटेड प्रोविंस, मिडिल प्रोविंस आदि।

अनुच्छेद 3 के अधीन जो अनेक विधान बनाए गए है उनमें से कुछ उदाहरणस्वरूप नीचे दिए गए है :

(i) नए राज्यों का निर्माण :

- आंध्र राज्य अधिनियम, 1953 (आंध्र प्रदेश)।
- राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 (केरल, मध्य प्रदेश आदि)।
- मुंबई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 (महाराष्ट्र और गुजरात)।

(ii) विलय

- हिमाचल प्रदेश और बिलासपुर (नया राज्य) अधिनियम, 1954 (बिलासपुर का हिमाचल प्रदेश में विलय)।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- अर्जित राज्यक्षेत्र (विलय) अधिनियम, 1960 (कुछ राज्यक्षेत्रों का असम, पंजाब और पश्चिमी बंगाल में विलय)।

(iii) विभाजन

- पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 (पंजाब को, पंजाब और हरियाणा में विभाजित किया गया और चंडीगढ़ संघ शासित प्रदेश का निर्माण किया गया)।
- पूर्वोत्तर क्षेत्र (पुनर्गठन) अधिनियम, 1971 (इसके द्वारा मणिपुर, त्रिपुरा, मेघालय, मिजोरम और अरूणाचल प्रदेश का निर्माण हुआ)।

(iv) अध्यर्पण

- भारत और पाकिस्तान के मध्य हुए करार के अनुसरण में 9वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1960 द्वारा कुछ राज्यक्षेत्र पाकिस्तान को अध्यर्पित किए गए।

(v) अर्जन (नए क्षेत्रों का प्रवेश)

- 36वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1975 द्वारा सिक्किम भारत संघ में प्रविष्ट।

(vi) नाम परिवर्तन

- मद्रास राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 1968 (मद्रास का नाम तमिलनाडु किया गया)।
- मैसूर राज्य (नाम परिवर्तन) अधिनियम 1973 मैसूर राज्य का नाम कर्नाटक कर दिया गया।
- उड़ीसा (नाम परिवर्तन) अधिनियम, 2011; **उड़ीसा** का नाम बदलकर **ओडिशा** किया गया।

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

4. मूल अधिकार

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. अधिकार की संकल्पना 4

2. भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की संकल्पना 4

3. मूल अधिकारों का क्रमिक विकास 5

4. मूल अधिकारों की कुछ विशेषताएँ 5

5. मूल अधिकारों का विवरण 6

5.1 अनुच्छेद 12 - राज्य की परिभाषा 6

5.2. अनुच्छेद 13 - मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां: 7

5.2.1. मूल अधिकारों से संबंधित संवैधानिक सिद्धान्त 8

5.2.2. मूल अधिकारों में संशोधन और आधारभूत ढांचे का सिद्धांत 9

5.3. अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समता 10

5.4. अनुच्छेद 15 - भेदभाव के विरुद्ध अधिकार 11

5.4.1. संबंधित न्यायिक वाद 12

5.4.2. अनुच्छेद 15 एवं संवैधानिक संशोधन 12

5.4.3. अनुच्छेद 15 और सामाजिक प्रगति 13

5.5. अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता का अधिकार 14

5.5.1. मंडल आयोग और उसके बाद 15

5.6. अनुच्छेद 17 - अस्पृश्यता का अंत 16

5.6.1. अस्पृश्यता की समाप्ति के लिये विभिन्न अधिनियम 16

5.7. अनुच्छेद 18 - उपाधियों का अंत 18

5.8. अनुच्छेद 19 - स्वतंत्रता का अधिकार 18

5.9. अनुच्छेद 20- अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण 22

5.10. अनुच्छेद 21- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार 23

5.10.1 न्यायिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 के क्षेत्र का विस्तार 24

5.10.2 निजता का अधिकार 25

5.10.3 जीवन का अधिकार और आत्महत्या (IPC की धारा 309) 26

5.10.4 जीवन का अधिकार एवं मृत्युदंड 27

5.11. अनुच्छेद 21-A : शिक्षा का अधिकार 28

5.12. अनुच्छेद 22– कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण 28

5.13. अनुच्छेद 23 – मानव दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का निषेध 30

5.14 अनुच्छेद 24 – कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध 31

5.14.1. बाल श्रम से संबंधित विधेयक 31

5.15. अनुच्छेद 25: अंत:करण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता 32

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.16. अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता 34

5.17. अनुच्छेद 27: किसी भी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता 34

5.18. अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता 35

5.19. अनुच्छेद 29: अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण 35

5.20. अनुच्छेद 30: शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार 36

5.20.1. अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य सम्बन्ध 37

5.21. अनुच्छेद 31: संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण (निरस्त) 37

5.22. अनुच्छेद 32 : संवैधानिक उपचारों का अधिकार 39

5.23. अनुच्छेद 33 - मूल अधिकारों के, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति 42

5.24. अनुच्छेद 34 - क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बन्धन 42

5.25. अनुच्छेद 35: भाग III के उपबंधों को प्रभावी करने के लिये विधान 43

5.26. क्या मूल अधिकार आत्यंतिक हैं? 45

5.27. मूल अधिकारों की आलोचना 45

5.28. मूल अधिकारों का महत्व 46

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1. अधिकार की संकल्पना

- अधिकार, कानून सम्मत दावा, सुविधा या विशेषाधिकार है। विधि द्वारा प्रदत्त सुविधाएँ अधिकारों की रक्षा करती हैं। दोनों का अस्तित्व एक-दूसरे के बिना संभव नहीं है। जहाँ कानून एक ओर अधिकारों को मान्यता देता है, वहीँ दूसरी ओर इन्हें लागू करने या इनकी अवहेलना पर नियंत्रण स्थापित करने की व्यवस्था भी करता है।
- अधिकार, लोकतंत्र का सार हैं। ये व्यक्ति को स्वयं का विकास करने के लिए सक्षम और सशक्त बनाते हैं। अधिकारों की धारणा समय-समय पर तथा एक समाज से दूसरे समाज में परिवर्तित होती रहती है।
- जब कुछ दावे कानून द्वारा मान्यता प्राप्त करते हैं तो वे प्रवर्तनीय हो जाते हैं। तब हम उन्हें लागू करने की मांग कर सकते हैं। उल्लंघन होने की स्थिति में नागरिक अपने अधिकारों की रक्षा के लिए न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इस प्रकार, **अधिकारों को समाज द्वारा मान्यता प्राप्त और राज्य द्वारा स्वीकृत, तर्कसंगत दावों के रूप में** परिभाषित किया जा सकता है। अधिकारों के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं:

प्राकृतिक अधिकार: ये अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को उनके मनुष्य होने के कारण जन्म से उपलब्ध होते हैं। ये अहस्तांतरणीय नैसर्गिक अधिकार हैं। ये कानून द्वारा **प्रदत्त नहीं** हैं बल्कि कानून द्वारा **केवल प्रवर्तनीय** होते हैं, जैसे:- जीवन का अधिकार।

मानवाधिकार: इन अधिकारों को प्राकृतिक अधिकारों का व्यावहारिक संस्करण माना जाता है। ये मानव के रूप में जन्म के साथ ही सभी मनुष्यों के लिए उपलब्ध होते हैं। इस संदर्भ में, ये राष्ट्रीयता, जाति, धर्म, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव किए बिना सार्वभौम प्रकृति के होते हैं। इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1948 में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गयी।

नागरिक अधिकार: ये अधिकार किसी देश के कानून या संविधान द्वारा वहाँ के केवल नागरिकों को प्रदान किये जाते हैं। उदाहरण के लिए, स्वतंत्रता का अधिकार।

विधिक अधिकार: ये वे नागरिक अधिकार होते हैं जो विधायिका द्वारा पारित विधियों के माध्यम से प्रदान किये जाते हैं। उदाहरण के लिए, संपत्ति का अधिकार पहले मूल अधिकार के रूप में शामिल था। परन्तु, अब इसे अनुच्छेद 300(A) के अंतर्गत विधिक अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त हैं।

संवैधानिक अधिकार: ये अधिकार संविधान में उल्लिखित होते हैं। कुछ अधिकारों को विशेष दर्जा प्रदान किया जाता है, जैसे-मूल अधिकार; जबकि अन्य अधिकारों को केवल साधारण दर्जा दिया जाता है।

मूल अधिकार: यह संवैधानिक अधिकारों की एक शाखा हैं तथा इनके महत्व के आधार पर इन अधिकारों को विशेष दर्जा दिया जाता है और ये सीधे उच्चतम एवं उच्च न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय होते हैं।

2. भारतीय संविधान में मूल अधिकारों की संकल्पना

- इन्हें मूल इसलिए कहा जाता है क्योंकि:
  - ये एक व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक होते हैं; तथा
  - उनको किसी देश के मूल कानून अर्थात संविधान के द्वारा गारंटी प्रदान की जाती है।
- मूल अधिकार, भारतीय संविधान में **भाग III** के अंतर्गत अनुच्छेद 12 से 35 तक समाविष्ट किये गए हैं। ये न केवल देश में राजनीतिक स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान करते हैं, बल्कि राज्य की मनमानी कार्रवाई के विरूद्ध नियंत्रक की भूमिका का निर्वहन भी करते हैं। इसके अतिरिक्त, ये **'व्यक्ति के शासन'** के स्थान पर **'विधि का शासन'** स्थापित करने में सहायता करते हैं, जिसका अभिप्राय है कि राज्य मनमाने तरीके से कार्य नहीं कर सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- इसके अतिरिक्त, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के साथ एक स्वतंत्र न्यायपालिका, मूल अधिकारों के संरक्षक की भूमिका निभाने के साथ ही, विधि के शासन की स्थापना हेतु 'अभिभावक' एवं 'गारंटर' के रूप में कार्य करती है।

3. मूल अधिकारों का क्रमिक विकास

संविधान में मूल अधिकारों को सम्मिलित करने की प्रेरणा, स्वतंत्रता के लिए एक लंबे संघर्ष और विश्व के प्रमुख लोकतंत्रों के अनुभवों से प्राप्त हुई।

- 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में निर्मित **नेहरू रिपोर्ट** के अंतर्गत भारत में संसदीय लोकतंत्र की स्थापना और अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने का आह्वान किया गया था।
- 1931 के कराची अधिवेशन के प्रस्ताव में व्यक्तिगत अधिकारों और स्वतंत्रताओं के मुद्दों के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त की गयी। इसमें मूल नागरिक अधिकार तथा न्यूनतम मजदूरी सुनिश्चित करने और अस्पृश्यता एवं दासता के उन्मूलन जैसे सामाजिक-आर्थिक अधिकार भी सम्मिलित थे।
- नेहरू रिपोर्ट के बाद से, राष्ट्रवादी मत, बिल ऑफ़ राइट्स के पक्ष में था जिसका कारण ब्रिटिश शासन से प्राप्त अनुभव था कि एक पराधीन विधानमंडल, व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अतिक्रमण करने में कार्यपालिका के अधीनस्थ के रूप में कार्य कर सकता है।
- ब्रिटिश मत पर ध्यान दिए बिना, संविधान निर्माताओं ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संरक्षण तथा समुदाय के प्रत्येक सदस्य हेतु सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय (निदेशक सिद्धांतों के साथ) सुनिश्चित करने के लिए मूल अधिकारों को अपनाया। संविधान सभा, संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन के बिल ऑफ़ राइट्स के साथ ही फ्रांस के मानवाधिकार की घोषणा से भी प्रेरित थी।

4. मूल अधिकारों की कुछ विशेषताएँ

मूल अधिकारों की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नांकित हैं:

- मूल अधिकारों के दो वर्ग हैं। कुछ अधिकार केवल नागरिकों को प्राप्त हैं, जबकि कुछ अधिकार नागरिकों तथा विदेशी व्यक्तियों, दोनों को समान रूप से प्राप्त हैं। अनुच्छेद 15, 16, 19, 29 और 30 द्वारा प्रदत्त अधिकार केवल भारतीय नागरिकों के लिए ही उपलब्ध हैं। जबकि शेष सभी, विदेशी नागरिकों (शत्रु राष्ट्र के नागरिकों के अतिरिक्त) के लिए भी उपलब्ध हैं।
- ये अधिकार असीमित नहीं होते, बल्कि इन पर कुछ युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित होते हैं। "युक्तियुक्तता" का अर्थ न्यायपालिका द्वारा 'समाज के समग्र कल्याण एवं व्यक्ति के अधिकारों के मध्य संतुलन की उचित अवस्था' के रूप में निर्धारित किया गया है।
- संसद को विधि द्वारा यह निर्धारित करने का अधिकार है कि सैन्य बलों तथा खुफ़िया विभागों में ये अधिकार किस सीमा तक प्राप्त होंगे।
- ये स्थायी नहीं हैं। संसद, संवैधानिक संशोधन के माध्यम से इनमें कटौती या कमी कर सकती है। किंतु ये संशोधन, संविधान के मूल ढांचे को बिना प्रतिकूल रूप से प्रभावित किये हुए होने चाहिए।
- इन अधिकारों के विषय-क्षेत्र अनुच्छेद 31A, 31B, 31C, 33, 34, और 35 द्वारा सीमित होते हैं।
- अनुच्छेद 20 एवं 21 के अतिरिक्त, ये सभी अधिकार राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान निलंबित किए जा सकते हैं। अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त 6 स्वतंत्रताओं को केवल तभी निलंबित किया जा सकता है जब आपातकाल युद्ध और बाह्य आक्रमण के आधार पर घोषित किया गया हो, न कि सशस्त्र विद्रोह के आधार पर।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- मूल अधिकारों के अंतर्गत, कुछ अधिकार राज्य को यह निर्देश देते हैं कि वह कुछ विशिष्ट कार्य न करे। इनका स्वरुप नकारात्मक होता है। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 14, 15(1), 16(2), 18(1), 20, 21, 22(1), 27 तथा 28(1)।
- कुछ अनुच्छेद अभिव्यक्त रूप से, एक या अधिक अधिकारों का सृजन करते हैं तथा उन्हें प्रदान करते हैं। इनका स्वरुप सकारात्मक होता है। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 19(1), 21क, 29, 30 तथा 32।

मूल अधिकारों का वर्गीकरण

संविधान के **भाग III** में उल्लिखित मूल अधिकार निम्नलिखित छह श्रेणियों में वर्गीकृत किए जाते हैं:

i. समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14-18)
ii. स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 19-22)
iii. शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23-24)
iv. धार्मिक स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 25-28)
v. संस्कृति एवं शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29-30)
vi. संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)

5. मूल अधिकारों का विवरण

5.1. अनुच्छेद 12 - राज्य की परिभाषा

मूलपाठ

इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" के अंतर्गत भारत की संसद और सरकार तथा राज्यों में से प्रत्येक राज्य की सरकार और विधान-मंडल तथा भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर या भारत सरकार के नियंत्रण के अधीन सभी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी सम्मिलित हैं।

विवरण

अनुच्छेद 12, संविधान के भाग III के प्रयोजन के लिए "राज्य" को परिभाषित करने का प्रयास करता है। कोई नागरिक, राज्य की परिभाषा में सम्मिलित किसी भी निकाय द्वारा मूल अधिकारों के उल्लंघन किये जाने पर सीधे उच्चतम एवं उच्च न्यायालय में अपील कर सकता है। न्यायिक घोषणाओं में "अन्य प्राधिकारियों" को विस्तृत रूप से वर्णित किया गया है। राज्य की यह परिभाषा नि:शेषकारी नहीं है, यह समावेशक है तथा इसका समय-समय पर विस्तार किया जाता रहा है। इसके अंतर्गत संसद, केन्द्र सरकार, राज्य विधायिका, राज्य कार्यपालिका, स्थानीय अधिकारी आदि सम्मिलित हैं।

"अन्य प्राधिकारियों" के अंतर्गत निम्नलिखित निकायों को सम्मिलित किया गया है:

- विधि के तहत गठित वैधानिक शक्तियों का प्रयोग करने वाले निकाय;
- सरकार द्वारा पर्याप्त वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाले निकाय;
- सरकारी कार्यों का निष्पादन करने वाले निकाय;
- सरकार के नियंत्रण के अधीन निकाय।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

निम्नलिखित को न्यायालय के निर्णयों द्वारा राज्य अभिनिर्धारित किया गया है:

1. राज्य अधिनियम के अधीन रजिस्टर्ड सोसाइटी द्वारा स्थापित प्रादेशिक इंजीनियरिंग महाविद्यालय,
2. भारतीय सांख्यिकी संस्थान,
3. भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद,
4. भारतीय इस्पात प्राधिकरण,
5. राजस्थान विद्युत बोर्ड,
6. अंतर्राष्ट्रीय विमानपत्तन प्राधिकरण,
7. तेल और प्राकृतिक गैस आयोग,
8. सभी राष्ट्रीयकृत बैंक....आदि।

किंतु, भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (BCCI) एवं राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (NCERT) राज्य की परिभाषा में सम्मिलित नहीं है।

5.2. अनुच्छेद 13 - मूल अधिकारों से असंगत या उनका अल्पीकरण करने वाली विधियां:

मूल पाठ

1. *इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले, भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां उस मात्रा तक शून्य होंगी, जहाँ तक वे इस भाग के उपबंधों से असंगत हैं।*
2. *राज्य ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का हनन करती है या न्यून करती है तथा इस खंड के उल्लंघन में बनायी गयी प्रत्येक विधि, उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।*
3. *इस अनुच्छेद में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,*
   (a) "विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में विधि का बल रखने वाला कोई अध्यादेश, आदेश, उपविधि, नियम, विनियम, अधिसूचना, रूढ़ि या प्रथा सम्मिलित है;
   (b) "प्रवृत्त विधि" के अंतर्गत भारत के राज्यक्षेत्र में किसी विधानमंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा इस संविधान के प्रारंभ से पहले पारित या बनाई गई विधि है जो पहले ही निरसित नहीं कर दी गयी है, चाहे ऐसी कोई विधि या उसका कोई भाग उस समय पूर्णतया या विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवर्तन में नहीं है।
4. *इस अनुच्छेद की कोई बात अनुच्छेद 368 के अधीन किए गए संविधान संशोधन पर लागू नहीं होगी।*

विवरण

अनुच्छेद 13, न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति से संबंधित है। यह देश में न्यायपालिका को मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में स्थापित करता है। इसका उद्देश्य मूल अधिकारों के विषय में संविधान की सर्वोपरि स्थिति को सुरक्षित करना है। न्यायिक पुनर्विलोकन किसी भी ऐसी विधि को शक्ति बाह्य (विधायिका द्वारा क्षेत्राधिकार से परे विधि का निर्माण करना) या शून्य घोषित करने की न्यायपालिका की शक्ति है जो मूल अधिकारों से असंगत हो या उल्लंघन करती हो।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.2.1. मूल अधिकारों से संबंधित संवैधानिक सिद्धान्त

संविधान के अनुच्छेद 13 में मूल अधिकारों से संबंधित निम्नलिखित सिद्धान्तों को सम्मिलित किया गया है। ये निम्नानुसार हैं:

i. न्यायिक पुनर्विलोकन (Judicial Review)

- न्यायिक पुनर्विलोकन का तात्पर्य न्यायपालिका की उस शक्ति से है जिसके अंतर्गत वह विधायिका द्वारा बनाए गए किसी भी कानून या कार्यपालिका द्वारा जारी किए गए किसी भी आदेश को संविधान के प्रावधानों के प्रतिकूल होने पर निरस्त कर सकता है तथा साथ ही, पूर्व में सुनाए गए अपने निर्णयों की भी समीक्षा कर सकता है। यह सिद्धांत संयुक्त राज्य अमेरिका की न्यायिक व्यवस्था की देन है, जहाँ मार्बरी बनाम मेडिसन वाद (1803) में न्यायपालिका की अन्तर्निहित शक्ति के रूप में न्यायिक पुनर्विलोकन की स्थापना की गयी।
- भारतीय संविधान में न्यायपालिका को प्रत्यक्षतः पुनर्विलोकन की शक्ति नहीं दी गई है। पुनर्विलोकन शब्द का प्रयोग केवल अनुच्छेद 137 के अंतर्गत किया गया है, जिसमें उच्चतम न्यायालय को अपने द्वारा सुनाए गए निर्णयों या आदेशों की न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति दी गयी है। लेकिन, संविधान के अंतर्गत कुछ विशेष प्रावधान है जिससे न्यायालय को पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त होती है।
- अनुच्छेद 13, 32, 131-136, 143, 226, 245, 246, 251, 254 एवं 372 के अंतर्गत न्यायपालिका को कुछ ऐसी शक्तियाँ एवं उत्तरदायित्व दिया गया है, जिससे न्यायालय को पुनर्विलोकन की शक्ति प्राप्त होती है।

ii. पृथक्करण का सिद्धांत (Doctrine of Separability)

- यदि विधायिका द्वारा ऐसी विधि पारित की जाती है जो मूल अधिकारों के किसी प्रावधान का उल्लंघन करती है तो वह विधि न्यायालय द्वारा **असंगतता की सीमा तक** शून्य घोषित कर दी जाती है। सम्पूर्ण विधि को अमान्य घोषित करने के स्थान पर विधि के केवल उस भाग को हटाया जा सकता है, जो मूल अधिकारों से असंगत है। यह पृथक्करण का सिद्धांत है।

iii. आच्छादन का सिद्धान्त (Doctrine of Eclipse)

- अनुच्छेद 13 (1) के अनुसार संविधान के लागू होने से पूर्व प्रवृत्त विधियां उस सीमा तक शून्य होगी, जिस सीमा तक वे किसी मूल अधिकार का उल्लंघन करती हैं या मूल अधिकारों से असंगत हैं अर्थात् मूल अधिकारों से असंगत विधियां मूल अधिकारों द्वारा आच्छादित हो जाती हैं।

iv. अधित्यजन का सिद्धांत (Doctrine of Waiver)

- यह संयुक्त राज्य अमेरिका में लागू है। परन्तु, भारतीय परिस्थितियों पर विचार करते हुए भारतीय संदर्भ में इसे निरस्त कर दिया गया। इसके अनुसार कोई व्यक्ति अपने अधिकारों का स्वेच्छा से त्याग नहीं कर सकता। यह राज्य को उसके अधिकारों का उल्लंघन करने की अनुमति नहीं दे सकता है।

v. भावी प्रवर्तन का सिद्धांत (Doctrine of Prospective Overruling)

- मूल अधिकार का प्रभाव भूतलक्षी (Retrospective) नहीं है बल्कि इसका भावी प्रभाव है। भारतीय संविधान के प्रवर्तन के पूर्व प्रवृत्त विधियों पर मौलिक अधिकारों का प्रभाव उस तिथि से होगा, जिस तिथि से इन्हें लागू किया गया है। संविधान के लागू होने के पूर्व किये गये कार्यों के सम्बन्ध में संविधान पूर्व विधियाँ लागू होंगी। इसलिए, संविधान पूर्व प्रवृत्त विधियों के अधीन संविधान के प्रवर्तन के पूर्व उत्पन्न अधिकार एवं दायित्व का प्रवर्तन मूल अधिकारों के उल्लंघन के बावजूद भी कराया जा सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.2.2. मूल अधिकारों में संशोधन और आधारभूत ढांचे का सिद्धांत

- अनुच्छेद 13 (2) में कहा गया है कि राज्य, ऐसी कोई भी विधि अधिनियमित नहीं करेगा, जो मूल अधिकारों में कटौती या कमी करती है। संविधान के लागू होने के बाद से ही यह प्रश्न सामने आया कि "क्या अनुच्छेद-368 के तहत संसद की संविधान संशोधन की शक्ति मूल अधिकारों में भी परिवर्तन कर सकती है?"
- संविधान के **भाग IV** में उल्लिखित नीति-निदेशक तत्व जिनका उद्देश्य देश में सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना करना है। इनको राज्य की नीतियों द्वारा लागू करने के लिए संसद ने प्रारंभ से ही संपत्ति के अधिकार को सीमित करने के लिए संविधान संशोधन की नीति अपनाई, जिसे मूल अधिकार में हस्तक्षेप के आधार पर चुनौती दी गयी। संसद द्वारा मूल अधिकारों में संशोधन और उस पर दिए गये न्यायिक निर्णयों में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :
- **शंकरी प्रसाद वाद (1951)**: इसमें उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान संशोधन अधिनियम, सामान्य विधि नहीं है। अत: अनुच्छेद 13 को अनुच्छेद 368 के अधीन स्वीकार करते हुए न्यायालय ने संसद का मूल अधिकारों में संशोधन करने के अधिकार को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार मूल अधिकार, संसद की संशोधन करने की शक्ति के अधीन है।
- **गोलकनाथ वाद (1967)**: उच्चतम न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती विनिश्चयों को उलट दिया और निर्णय दिया कि संविधान में मूल अधिकारों को एक सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गयी है। अत: वे संशोधित नहीं किये जा सकते हैं।
- **24वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1971:** इस अधिनियम द्वारा अनुच्छेद 13 में एक नया खण्ड जोड़कर यह स्पष्ट कर दिया गया कि अनुच्छेद 13 के अर्थांतर्गत अनुच्छेद 368 के अधीन पारित संवैधानिक संशोधन, सामान्य विधि नहीं है। इस प्रकार अनु. 13, संविधान का संशोधन करने वाले अधिनियमों पर लागू नहीं होगा। इस प्रकार, राज्य के पास एक बार फिर मूल अधिकार में संशोधन करने की शक्ति निहित हो गयी।
- **केशवानंद भारती वाद (1973)**: न्यायपालिका ने संविधान के मूल ढांचे की अवधारणा दी, जिसके अनुसार संविधान की कुछ ऐसी मूल विशेषताएँ हैं, जिनका संशोधन नहीं किया जा सकता है। मूल अधिकारों का संशोधन केवल उस सीमा तक किया जा सकता है जिस सीमा तक वे मूल ढांचे का हिस्सा नहीं हैं।
- **42वां संविधान संशोधन अधिनियम (1976)**: इस अधिनियम द्वारा मूल ढांचे के सिद्धान्त को शून्य घोषित करने हेतु अनुच्छेद 368(4) और 368(5) जोड़े गये। इस अधिनियम ने संसद को संविधान में संशोधन करने की असीमित शक्तियां प्रदान की, जिन्हें न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती थी।
- **मिनर्वा मिल्स वाद (1980)**: इस निर्णय में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 368(4) एवं 368(5) को निरस्त कर दिया, क्योंकि इनके द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन सम्बन्धी शक्तियों में कटौती की गई थी, जो संविधान का मूल ढांचा है। अत: वर्तमान में मूल अधिकारों में उस सीमा तक संशोधन किया जा सकता है, जहाँ तक कि वह संशोधन के मूल ढांचे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित नही करता हैं।
- **आई. आर. कोहिलो वाद (2007)**: यह 9वीं अनुसूची में सम्मिलित अधिनियमों की वैधता से सम्बंधित है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि नौवीं अनुसूची में उल्लिखित विषयों सहित कोई भी ऐसा कानून जो संविधान के मूल ढांचे को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है, की न्यायिक पुनर्विलोकन का उच्चतम न्यायालय को अनन्य प्राधिकार है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.3. अनुच्छेद 14 - विधि के समक्ष समता

मूलपाठ

राज्य, भारत के राज्यक्षेत्र में किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा।

विवरण

विधि का शासन (Rule of Law)

विधि के समक्ष समता का विचार ए.वी.डायसी द्वारा प्रदत्त **विधि का शासन** सिद्धांत का मूल तत्व है। इसमें निम्नलिखित तीन तत्व सम्मिलित हैं:

- निरंकुश शक्ति की अनुपस्थिति, अर्थात किसी भी व्यक्ति को विधि के उल्लंघन के अतिरिक्त दण्डित नहीं किया जा सकता है।
- विधि के समक्ष समता, अर्थात सभी नागरिक समान रूप से विधि के अधीन हैं।
- संविधान स्रोत नहीं बल्कि व्यक्ति के अधिकारों का परिणाम है, क्योंकि संविधान के उद्भव के पूर्व भी व्यक्तिगत अधिकार अस्तित्व में थे।

भारत में इसके प्रथम एवं द्वितीय तत्व ही लागू होते है। चूँकि भारतीय प्रणाली में, संविधान व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत है, अत: तृतीय तत्व लागू नहीं होता है।

उच्चतम न्यायालय ने अपने विभिन्न निर्णयों में अनुच्छेद 14 के अंतर्गत विधि के शासन को संविधान के मूल ढांचे का एक अंग माना है।

विधि के समक्ष समता

- इसका अर्थ यह है कि सभी नागरिकों को विधि के समक्ष समानता का दर्जा प्राप्त है। यह **ब्रिटिश परंपरा** से ग्रहण किया गया है। इसकी प्रवृत्ति **नकारात्मक** है क्योंकि इसके तहत किसी भी विशेषाधिकार को स्वीकार नहीं किया गया है।

विधियों का समान संरक्षण

- इसे **संयुक्त राज्य अमेरिका** के संविधान से ग्रहण किया गया है। इसका अर्थ है कि राज्य को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि समान के साथ समान और असमान के साथ असमान व्यवहार किया जाये। समान संरक्षण का सिद्धांत असमान व्यक्तियों को विशेष सुविधाएं एवं अवसर प्रदान करके राज्य द्वारा सकारात्मक कार्य किये जाने की अपेक्षा करता है। अतः यह एक **सकारात्मक** अवधारणा है।
- **पश्चिम बंगाल राज्य बनाम अनवर अली सरकार वाद (1951)** में उच्चतम न्यायालय ने यह बताया की **'विधि के समक्ष समता' तथा 'विधियों का समान संरक्षण' दोनों वाक्यांशों का अर्थ एक ही है।** सैद्धान्तिक रूप से इसमें अंतर हो सकता है किन्तु, व्यावहारिक स्तर पर दोनों में कोई विभेद नहीं है।

विधि के समक्ष समता के अपवाद

भारतीय संविधान में निहित विधि के समक्ष समता का सिद्धांत पूर्णतया निरपेक्ष नहीं हैं। इसके कुछ अपवाद निम्नलिखित हैं:

- राष्ट्रपति और राज्यपाल को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 361 और 361A के अंतर्गत अभियोजन के विरुद्ध उन्मुक्ति प्रदान की गयी है।
- सांसदों और विधायकों को विधायिका में विशेषाधिकार (अनुच्छेद 105 और 194) प्रदान किये गए हैं।
- विदेशी राजनयिकों को भी अभियोजन के विरुद्ध उन्मुक्ति प्रदान की गयी है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

प्रयोजनीयता

- अनुच्छेद 14, चाहे वह भारतीय नागरिक, विदेशी या यहां तक कि कंपनी जैसी कोई विधिक इकाई ही क्यों न हो, सभी को समानता का अधिकार प्रदान करता है। साथ ही, यह केवल राज्य की कार्यवाई के विरुद्ध ही उपलब्ध है।

5.4. अनुच्छेद 15 - भेदभाव के विरुद्ध अधिकार

मूलपाठ

धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग या जन्म स्थान के आधार पर भेदभाव का निषेध।

1. *राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर किसी भी नागरिक के विरुद्ध भेदभाव नहीं करेगा।*
2. *कोई नागरिक, केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर –*
   (क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश; या
   (ख) पूर्णतः या अंशतः राज्य-निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तालाबों, स्नान घाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के सम्बन्ध में; किसी भी निर्योग्यता, दायित्व, निर्बन्धन या शर्त के अधीन नहीं होगा।
3. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को स्त्रियों एवं बच्चो के लिए विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*
4. *इस अनुच्छेद की या अनुच्छेद 29 के खंड (2) की कोई बात राज्य को सामाजिक व शैक्षिक दृष्टि से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्ही वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*
5. *इस अनुच्छेद या अनुच्छेद 19 के खंड (1) के उपखंड (g) की कोई बात राज्य को, सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए नागरिकों के किन्हीं वर्गों की उन्नति के लिए या अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों के लिए, विधि द्वारा, कोई विशेष उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी, जहाँ तक ऐसे विशेष उपबंध, अनुच्छेद 30 के खंड (1) में निर्दिष्ट अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थाओं से भिन्न, शिक्षा संस्थाओं में, जिनके अंतर्गत प्राइवेट शिक्षा संस्थाएँ भी हैं, चाहे वे राज्य से सहायता प्राप्त हों या नहीं, प्रवेश से सम्बंधित हैं।*

विवरण

- अनुच्छेद 15(1) **केवल धर्म, मूलवंश, लिंग, जाति और जन्म स्थान** के आधार पर राज्य द्वारा भेदभाव पर प्रतिबंध लगाता है। यह प्रतिषेध राज्य के विरुद्ध है, ग़ैर सरकारी (Private) व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं। भेदभाव **केवल** उपरोक्त आधारों पर निषिद्ध है।
- **इस संदर्भ में 'केवल' का अर्थ** - इसका अर्थ है कि केवल उपर्युक्त आधार पर भेदभाव की अनुमति नहीं दी गयी है। राज्य उपर्युक्त में से किसी भी आधार के साथ संयोजित कुछ अन्य आधारों पर भेदभाव कर सकता है।
- उदाहरणार्थ, केवल जाति के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता। लेकिन, जाति और पिछड़ेपन के आधार पर **सकारात्मक भेदभाव या सकारात्मक कार्रवाई** की अनुमति दी गयी है।
- जहाँ अनुच्छेद 15(1) राज्य के भेदभाव के कार्यों पर प्रतिबंध आरोपित करता है, वहीं अनुच्छेद 15(2) 'राज्य' एवं 'गैर-सरकारी व्यक्तियों' दोनों को भेदभाव नहीं करने का आदेश देता है। इनमें से कोई भी सार्वजनिक स्थानों यथा - कुओं, तालाबों,आदि के उपयोग में भेदभाव की नीति नहीं अपनाएगा।

VISION IAS

- अनुच्छेद 15(3) महिलाओं एवं बच्चों के लिए सकारात्मक करवाई का प्रावधान करता है। यह राज्य को सामाजिक समानता की स्थापना के लिए सकारात्मक एवं तर्कपूर्ण भेदभाव करने की अनुमति प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, स्थानीय निकायों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था एवं बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था।

5.4.1. संबंधित न्यायिक वाद

- पिछड़े जातियों के लिए आरक्षण के मुद्दे पर कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के मध्य टकराव की स्थिति उत्पन्न हो गयी। उच्चतम न्यायालय ने **चम्पकम दोराईराजन बनाम मद्रास राज्य वाद (1951)** में राज्य सरकार के उस फैसले को रद्द कर दिया जिसके द्वारा मेडिकल एवं इंजीनियरिंग कालेजों में गैर ब्राह्मण छात्रों के लिए सीटें आरक्षित की गई थी। यह अनुच्छेद 15(1) के तहत धर्म, जाति या लिंग के आधार पर भेदभाव का निषेध के आधार पर किया गया था।
- लेकिन, इस फैसले को बाद में संसद के द्वारा एक संविधान संशोधन के माध्यम से निरस्त कर दिया गया एवं एक नये प्रावधान अनुच्छेद 15(4) को जोड़ा गया जिसने कार्यपालिका को यह शक्ति प्रदान की, कि सामाजिक एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों के लिए सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action) के प्रावधान करने में सरकार सक्षम है।
- लेकिन, संशोधित प्रावधानों के अंतर्गत राज्य द्वारा उठाए गए कदमों को भी चुनौती प्रदान की गई एवं पुन: उच्चतम न्यायालय ने **एम. आर. बालाजी बनाम मैसूर राज्य वाद** (1963) में यह निर्णय दिया कि एक विशेष वर्ग पिछड़ा है या नहीं इसका पता लगाने के लिए लोगों का एक समूह या उसकी जाति एकमात्र या प्रमुख कारण नहीं हो सकता है। साथ ही, उच्चतम न्यायालय ने आरक्षण के मामले मे एक दूसरा निर्देश यह दिया कि आरक्षण एक उचित सीमा से अधिक नहीं हो सकता हैं।
- उच्चतम न्यायालय ने **मण्डल न्यायिक निर्णय (1993)** में जाति आधारित आरक्षण को वैध माना और क्रीमी लेयर की अवधारणा प्रदान की। इसके अनुसार, पिछड़े वर्गों में संपन्न लोगों को समाज के अगड़े/अग्रणी समुदायों के समकक्ष मानकर किसी भी प्रकार का आरक्षण नहीं दिया जाता है।

5.4.2. अनुच्छेद 15 एवं संवैधानिक संशोधन

- अनुच्छेद 15(4) को **प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम** द्वारा जोड़ा गया था। यह सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों के लिए **सकारात्मक कार्रवाई (आरक्षण)** का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 15(5) शिक्षण संस्थानों में, चाहे वो सहायता प्राप्त हों या गैर-सहायता प्राप्त, में समाज के सामाजिक और शैक्षणिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए सकारात्मक कार्रवाई (आरक्षण) का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 15(4) जहाँ प्रकृति में सामान्य है, वहीं अनुच्छेद 15(5) विशिष्ट रूप से शिक्षा से संबंधित है। अनुच्छेद 15(5) को **93वें संविधान संशोधन अधिनियम (2005)** द्वारा जोड़ा गया है। अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान, इस प्रावधान का अपवाद हैं। इस संशोधन के द्वारा SC,ST एवं OBC वर्ग के छात्रों के लिये शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की सुविधा प्रदान की गयी है।

निजी शिक्षण संस्थानों में आरक्षण से संबंधित विवाद

- **TMA पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य (2002) और इनामदार बनाम महाराष्ट्र राज्य (2005) वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि सरकार निजी गैर-सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में कोटा (आरक्षण) प्रणाली लागू नहीं कर सकती, क्योंकि यह अनुच्छेद 19(1)(g) के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन है। इसके माध्यम से कोई भी वृत्ति (पेशा) चुनने की स्वतंत्रता प्रदान की गयी है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- 93वाँ संविधान संशोधन, इसी निर्णय को प्रतिस्थापित करने के लिए अधिनियमित किया गया था।
- उच्चतम न्यायालय ने उपर्युक्त संवैधानिक संशोधन की वैधता को बनाए रखा। तदुपरांत, केंद्र सरकार द्वारा संविधान के उपबंधों को प्रभावी बनाने के लिए केंद्रीय शैक्षिक संस्थान अधिनियम, 2006 पारित किया गया जिससे IIT, IIM एवं अन्य शैक्षणिक संस्थानों में इन कमजोर वर्गों (OBC) के लिए 27 % सीटें आरक्षित की गई।
- **ए. के. ठाकुर बनाम भारतीय संघ (2008) वाद** में न्यायालय ने यहाँ तक निर्णय दे दिया कि राज्य एवं निजी शिक्षण संस्थाओं में अनुच्छेद 15(5) के तहत आरक्षण मान्य हैं।
- **राजस्थान के गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूलों की सोसाइटी बनाम भारत संघ वाद, 2013:** निजी गैर-सहायता प्राप्त संस्थानों में भी शिक्षा के अधिकार अधिनियम, 2009 के तहत 25 % सीटों पर आरक्षण आरम्भ करने की वैधता को उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाये रखा गया। इस निर्णय में उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नलिखित तर्क दिये गए:
  - शिक्षा को विशुद्ध रूप से व्यावसायिक उद्यम के रूप में नहीं माना जा सकता।
  - अनुच्छेद 21A राज्य पर एक दायित्व है।
  - शिक्षा का अधिकार, संस्था केन्द्रित अधिनियम के अपेक्षा एक बाल केंद्रित अधिनियम है।

5.4.3. अनुच्छेद 15 और सामाजिक प्रगति

- अनुच्छेद 14 विधि के समक्ष समता को स्थापित करता है, किन्तु असमानता के ऐतिहासिक तथ्य वंचित समूहों के लिए विशेष उपचार की आवश्यकता पर बल देते हैं। अतः अनुच्छेद 15 में समाज में हाशिये पर रहने वाले वर्गों के पक्ष में प्रावधान पहले से ही मौजूद हैं।
- शैक्षिक और अन्य सुविधाओं के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग के उम्मीदवारों के पक्ष में अधिमानी (Preferantial) व्यवहार, अनुच्छेद 15 पर आधारित सामाजिक सुधार का ही एक रूप है। दूसरी ओर, उच्चतम न्यायालय ने सामान्य **सामाजिक कल्याण** को ध्यान में रखते हुए, मंडल वाद में, आरक्षण को 50% तक सीमित करते हुए संतुलन स्थापित किया है। इसके अतिरिक्त, सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों से संबंधित वाद में, उच्चतम न्यायालय ने क्रीमी लेयर का प्रावधान प्रस्तुत किया है।
- अनुच्छेद 15 के आधार पर महिलाओं और उनकी सामाजिक प्रगति के सन्दर्भ में, निम्नलिखित आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए:
  - न्यायालय ने आपराधिक कानून (Criminal Law) और प्रक्रियात्मक कानून (Procedural Law) में महिलाओं के पक्ष में किये गए प्रावधानों को उनकी सामाजिक निर्बलता को देखते हुए स्वीकार कर लिया है।
  - **विशाखा बनाम राजस्थान राज्य वाद** (1997) में उच्चतम न्यायालय ने कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न को समाप्त करने के लिए उपाय सुझाए क्योंकि ऐसा उत्पीड़न अनुच्छेद 14, 15, और 21 का उल्लंघन करता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

5.5. अनुच्छेद 16 - लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता का अधिकार

मूल पाठ

लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता-

1. *राज्य के अधीन किसी पद पर नियोजन या नियुक्ति से सम्बंधित विषयों में सभी नागरिकों के लिए अवसर की समता होगी।*
2. *राज्य के अधीन किसी नियोजन या पद के सम्बन्ध में केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान, निवास या इनमें से किसी के आधार पर न तो कोई नागरिक अपात्र होगा और न ही उससे विभेद किया जाएगा।*
3. *इस अनुच्छेद की कोई बात संसद को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी, जो किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र की सरकार के या उसमें के किसी स्थानीय या अन्य प्राधिकारी के अधीन वाले, किसी वर्ग या वर्गों के पद पर नियोजन या नियुक्ति के सम्बन्ध में, ऐसे नियोजन या नियुक्ति से पहले, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के भीतर निवास विषयक कोई अपेक्षा विहित करती है।*
4. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को पिछड़े हुए नागरिकों के किसी वर्ग के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, नियुक्तियों या पदों के आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*

   (4-A) *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को अनुसूचित जातियों और जनजातियों के पक्ष में, जिनका प्रतिनिधित्व राज्य की राय में राज्य के अधीन सेवाओं में पर्याप्त नहीं है, राज्य के अधीन सेवाओं में, किसी वर्ग के अनुवर्ती वरिष्ठता के साथ प्रोन्नति के मामलों में, आरक्षण के लिए उपबंध करने से निवारित नहीं करेगी।*

   (4-B) *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को किसी वर्ष में किन्हीं न भरी गयी ऐसी रिक्तियों को, जो खंड 4 या खंड 4(A) के अधीन किये गए आरक्षण के लिए किसी उपबंध के अनुसार उस वर्ष में भरी जाने के लिए आरक्षित हैं, किसी उत्तरवर्ती वर्ष या वर्षों में भरे जाने के लिए पृथक वर्ग की रिक्तियों के रूप में विचार करने से निवारित नहीं करेगी और ऐसे वर्ग की रिक्तियों पर उस वर्ष की रिक्तियों के साथ, जिसमें वे भरी जा रही हैं, उस वर्ष की रिक्तियों की कुल संख्या के सम्बन्ध में पचास प्रतिशत आरक्षण की अधिकतम सीमा का अवधारण करने के लिए विचार नहीं किया जायेगा।*
5. *इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी जो यह उपबंध करती है कि किसी धार्मिक या साम्प्रदायिक संस्था के कार्यकलाप से सम्बंधित कोई पदधारी या उसके शासी निकाय का कोई सदस्य किसी विशिष्ट धर्म का मानने वाला या विशिष्ट सम्प्रदाय का ही हो।*

विवरण

- अनुच्छेद 16(2) में उल्लिखित है कि राज्य धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, उद्भव, जन्मस्थान और निवास स्थान के आधार पर लोक नियोजन के विषय में भेदभाव नहीं कर सकता है। किन्तु, राज्य अन्य आधारों पर भेदभाव करने के लिए स्वतंत्र है। ध्यान देने योग्य है कि यह उपखण्ड, अनुच्छेद 15 में निर्दिष्ट आधारों में दो और आधारों को जोड़ता है- उद्भव और निवास।

VISION IAS

- निवास आरक्षण का आधार नहीं हो सकता है। हालांकि, अनुच्छेद 16(3) एक अपवाद है। राज्य या केन्द्र शासित प्रदेश केवल अपने निवासियों के लिए कुछ पदों को आरक्षित कर सकते है, हालांकि केवल संसद इस सम्बन्ध में कानून बनाने में सक्षम है।
- अनुच्छेद 16(4) राज्य को किन्हीं पिछड़े वर्गों के पक्ष में लोक नियोजन में आरक्षण प्रदान करने के लिए सक्षम बनाता है। पिछड़ा वर्ग में अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों और सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग या ऐसा कोई भी वर्ग शामिल किया जा सकता है, जिसे राज्य पिछड़ा हुआ मानता हो। इस प्रकार, सकारात्मक कार्रवाई की संभावना अनुच्छेद 15 की अपेक्षा अनुच्छेद 16 में व्यापक है।
- अनुच्छेद 16(5) किसी धार्मिक व्यवस्था के कुछ पदों के सम्बन्ध में धर्म के आधार पर भेदभाव का प्रावधान करता है।

5.5.1. मंडल आयोग और उसके बाद

मंडल आयोग को 1979 में जनसंख्या के सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों की जांच करने और उनकी उन्नति के लिए उपाय सुझाने हेतु अनुच्छेद 340 के तहत गठित किया गया था। आयोग ने जनसंख्या के लगभग 52% भाग को पिछड़ा हुआ माना। 1990 में वी.पी. सिंह सरकार ने 'अन्य पिछड़े वर्गों (OBC)' के लिए सरकारी नौकरियों में 27% आरक्षण प्रदान किया।

इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ वाद (1992) में उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण देने की सरकार की नीति को सही ठहराया गया। यह मंडल वाद के रूप में प्रसिद्ध है। इस निर्णय के तहत:

- न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनु. 16(4), अनु. 16(1) का विरोधी नहीं है। दोनों एक ही क्षेत्र में कार्यरत है। इसी आधार पर न्यायालय ने 27 प्रतिशत आरक्षण को वैध माना।
- आरक्षण केवल प्रवेश के स्तर पर दिया जायेगा, पदोन्नति पर नहीं।
- एक वर्ष में आरक्षण 50% से अधिक नहीं होगा।
- इसमें क्रीमीलेयर से सम्बंधित लोगो को आरक्षण से बाहर रखने का सिद्धांत दिया गया।
- इसने आरक्षण में किसी जाति को शामिल करने या उसे बाहर करने के मापदंडों के विषय में निर्णय लेने के लिए सरकार को एक सांविधिक निकाय (राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग) के गठन का निर्देश दिया।

प्रोन्नति में आरक्षण का मुद्दा

- 77वां संविधान संशोधन के द्वारा अनु. 16 में एक नया खण्ड 4(a) अंतःस्थापित किया गया। इसके द्वारा पदोन्नति में आरक्षण को वैध बनाया गया
- **वीरपाल सिंह बनाम भारत संघ वाद (1995)** में न्यायालय ने कहा था कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति को प्रोन्नति में आरक्षण नहीं दिया जाएगा।
- 85वां संविधान संशोधन द्वारा न्यायालय के इस निर्णय को निष्प्रभावी बनाया गया।
- **नागराज वाद** में, 85वें संविधान संशोधन की वैधता पर प्रश्न किया गया। उच्चतम न्यायालय द्वारा कहा गया कि संशोधन ने संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन नहीं किया। उच्चतम न्यायालय ने तीन और दिशा निर्देश दिए:

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- यह ध्यान रखना होगा कि जिस वर्ग के लिए पदोन्नति में आरक्षण की मांग की है, उस वर्ग का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं हो।
- सरकार द्वारा सत्यापनीय आंकड़े प्रदान किए जाने चाहिए।
- अनुच्छेद 335 के अंतर्गत, इससे प्रशासन की दक्षता प्रभावित नहीं होनी चाहिए।

- **अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान फैकल्टी एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2013) वाद** में उच्चतम न्यायालय के पांच न्यायाधीशों की पीठ ने फैसला सुनाया कि कुछ ऐसे कार्य हैं जिसके लिए केवल योग्यता एकमात्र मापदंड (सुपर स्पेशलिटी पदों हेतु) होनी चाहिए। केंद्र सरकार ने इस निर्णय के विरुद्ध याचिका दायर की और समीक्षा याचिका की सुनवाई के दौरान एक पांच सदस्यीय पीठ ने यह निर्णय दिया कि सरकार, संकाय के सुपर स्पेशलिटी पदों में आरक्षण हेतु संविधान में संशोधन के लिए स्वतंत्र है। इस सन्दर्भ में न्यायालय का पूर्व निर्णय, ऐसे पदों पर आरक्षण के लिए सरकार के निर्णय लेने की स्वतंत्रता पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाता।
- न्यायमूर्ति टीएस ठाकुर एवं न्यायमूर्ति आर भानुमति की खंडपीठ ने **एस. पन्नीरसेल्वम एवं अन्य बनाम तमिलनाडु (सिविल अपील)** तथा अन्य याचिकाओं को स्वीकार करते हुए एससी/एसटी को प्रोन्नति में आरक्षण और परिणामी वरिष्ठता के मामले में मद्रास हाईकोर्ट का आदेश निरस्त कर दिया। खंडपीठ ने कहा कि नियमों में परिणामी वरिष्ठता का कोई प्रावधान न होने के कारण 'कैच अप रूल्स' लागू होगा।

प्रयोजनीयता

- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समानता का अधिकार **केवल** भारतीय नागरिकों के लिए उपलब्ध है।

5.6. अनुच्छेद 17 - *अस्पृश्यता का अंत*

मूल पाठ

अस्पृश्यता का अंत *.- "अस्पृश्यता" का अंत किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण निषिद्ध किया जाता है। "अस्पृश्यता" से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।*

विवरण

अस्पृश्यता हमारे देश में सभी रूपो में निषिद्ध है। उल्लेखनीय है कि संविधान ने 'अस्पृश्यता' शब्द को परिभाषित **नहीं** किया है। अनुच्छेद 35 के तहत, संसद द्वारा इस उपबंध को लागू करने के लिए निम्न अधिनियम बनाये गए हैं:

5.6.1. अस्पृश्यता की समाप्ति के लिये विभिन्न अधिनियम

नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955

अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955 को 1976 में संशोधित करते हुए इसे नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम का नाम दिया गया। यह अस्पृश्यता विरोधी प्रावधानों को और सशक्त करता है। अस्पृश्यता एक संज्ञेय (अर्थात पुलिस अधिकारी, मजिस्ट्रेट वारंट के बिना आरोपी को गिरफ्तार कर सकते हैं) तथा गैर-अप्रशम्य/समाधेय (non-compoundable) (अर्थात ऐसे वाद जिन्हें वापस नहीं लिया जा सकता भले ही दोनों पक्षों में समझौता हो चुका हो; इन मामलों में राज्य एक पक्ष बन जाता है) अपराध है। यह क़ानून त्वरित सुनवाई के लिए एक विशेष अदालत का प्रावधान करता है।

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति समुदाय को न्याय प्रदान करने एवं उत्पीड़न के शिकार लोगों को राहत, पुनर्वास उपलब्ध कराने के साथ ही, उनको गरिमा के साथ जीने का अधिकार प्रदान करने के लिये **अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989** पारित किया गया।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 का उद्देश्य अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के खिलाफ अत्याचार की रोकथाम तथा इसके लिए और अधिक कठोर प्रावधानों को सुनिश्चित करना है। यह अधिनियम प्रधान अधिनियम में एक संशोधन है और अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम,1989 के साथ संशोधन प्रभावों के साथ लागू किया गया है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित प्रावधान किये गए है:

1. **अपराधों की विस्तृत सीमा:** अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विरुद्ध किए जाने वाले नए अपराधों में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के सिर और मूंछ की बालों का मुंडन कराने और इसी तरह अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के सम्मान के विरुद्ध किए गए कृत हैं। अत्याचारों में समुदाय के लोगों को जूते की माला पहनाना, उन्हें सिंचाई सुविधाओं तक जाने से रोकना या वन अधिकारों से वंचित करके रखना, मानव और पशु कंकाल को निपटाने और लाने-ले जाने के लिए बाध्य करना, कब्र खोदने के लिए बाध्य करना, सिर पर मैला ढोने की प्रथा का उपयोग और अनुमति देना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं को देवदासी के रूप में समर्पित करना, जाति सूचक गाली देना, जादू-टोना अत्याचार को बढ़ावा देना, सामाजिक और आर्थिक बहिष्कार करना, चुनाव लड़ने में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के उम्मीदवारों को नामांकन दाखिल करने से रोकना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों की महिलाओं का वस्त्र हरण कर आहत करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के किसी सदस्य को घर, गांव और आवास छोड़ने के लिए बाध्य करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पूज्नीय वस्तुओं को विरुपित करना, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य के विरुद्ध यौन दुर्व्यवहार करना, यौन दुर्व्यवहार भाव से उन्हें छूना और भाषा का उपयोग करना है।
2. **आहत करना और धमकाना:** अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्य को आहत करने, उन्हें दुखद रूप से आहत करने, धमकाने और उपहरण करने जैसे अपराधों को, जिनमें 10 वर्ष के कम की सजा का प्रावधान है, उन्हें अत्याचार निवारण अधिनियम में अपराध के रूप में शामिल करना। अभी अत्याचार निवारण अधिनियम के तहत अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों पर किए गए अत्याचार मामलों में 10 वर्ष और उससे अधिक की सजा वाले अपराधों को ही अपराध माना जाता है ।
3. **मामलों का तेजी से निपटान:** मामलों को तेजी से निपटाने के लिए अत्याचार निवारण अधिनियम के अंतर्गत आने वाले अपराधों में विशेष रूप से मुकदमा चलाने के लिए विशेष अदालतें बनाना और विशेष लोक अभियोजक को निर्दिष्ट करना।
4. **प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्ति:** विशेष अदालतों को अपराध का प्रत्यक्ष संज्ञान लेने की शक्ति प्रदान करना और जहां तक संभव हो, आरोप पत्र दाखिल करने की तिथि से दो महीने के अंदर सुनवाई पूरी करना।
5. **अतिरिक्त अध्याय:** पीड़ितों तथा गवाहों के अधिकारों पर अतिरिक्त अध्याय शामिल करना आदि।
6. **जानबूझकर कर की गई ढिलाई की स्पष्ट परिभाषा:** शिकायत दर्ज होने से लेकर एवं अधिनियम के अंतर्गत कार्य की उपेक्षा के आयामों को लेते हुए हर स्तर के सरकारी कर्मचारियों के लिए 'जानबूझकर कर की गई ढिलाई' पद की स्पष्ट परिभाषा तय करना।
7. **अपराध की अन्य प्रकल्पनाएं:** अपराधों में प्रकल्पनाओं का शामिल किया जाना—यदि अभियुक्त पीड़ित या उसके परिवार से परिचित है, तो जब तक इसके विपरीत सिद्ध न किया जाए अदालतें यह मानेंगी कि अभियुक्त पीड़ित की जाति अथवा जनजातीय पहचान के बारे में जानता था।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.7. अनुच्छेद 18 - *उपाधियों का अंत*

मूल पाठ

1. *राज्य सेना या विद्या सम्बन्धी सम्मान के सिवाय और कोई उपाधि प्रदान नहीं करेगा।*
2. *भारत का कोई नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।*
3. *कोई व्यक्ति जो भारत का नागरिक नहीं है, राज्य के अधीन लाभ या विश्वास के किसी पद को धारण करते हुए किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।*
4. *राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति किसी विदेशी राज्य से या उसके अधीन किसी रूप में कोई भेंट, उपलब्धि या पद राष्ट्रपति की सहमति के बिना स्वीकार नहीं करेगा।*

विवरण

- यह राज्य, नागरिकों और गैर-नागरिकों के अधिकारों पर एक प्रतिबन्ध आरोपित करता है। राज्य सैन्य या शैक्षणिक उपाधि को छोड़कर कोई अन्य उपाधि प्रदान नहीं करेगा। भारत के किसी नागरिक को किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार करने की अनुमति नहीं है। भारतीय राज्य के अधीन लाभ या विश्वास का पद धारण करने वाले विदेशी नागरिक को राष्ट्रपति की अनुमति के बिना किसी विदेशी राज्य से किसी भी प्रकार की उपाधि, भेंट, उपलब्धि या पद स्वीकार करने की अनुमति नहीं है।

भारत रत्न और पद्म पुरस्कारों से सम्बंधित वाद

- **बालाजी राघवन वाद** में, उच्चतम न्यायालय ने राज्य को भारत रत्न और पद्म पुरस्कार देने की अनुमति प्रदान की है, किन्तु साथ ही यह स्पष्ट किया है कि इन्हें नाम के प्रत्यय या उपसर्ग के तौर पर इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

5.8. अनुच्छेद 19 - स्वतंत्रता का अधिकार

मूल पाठ

वाक् -स्वातंत्र्य आदि विषयक कुछ अधिकारों का संरक्षण-

1. *सभी नागरिकों को--*

(a) *वाक् एवं अभिव्यक्ति स्वतंत्रता का,*

(b) *शांतिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का,*

(c) *संगठन या संघ बनाने का,*

(d) *भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का,*

(e) *भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का,*

(f) **44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 की धारा 2 द्वारा लोप किया गया द्वारा*

(g) *कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का.....अधिकार होगा।*

2. *खंड (1) के उपखंड (a) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमान, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बंधन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।*

Website - https://upscpdf.com

3. उक्त खंड के उपखंड (b) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर, भारत की प्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

4. उक्त खंड के उपखंड (c) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर भारत की प्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था या सदाचार के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन, जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है, वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

5.उक्त खंड के उपखंड (d) और (e) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिए गए अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में या किसी अनुसूचित जनजाति के हितों के संरक्षण के लिए युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

6. उक्त खंड के उपखंड (g) की कोई बात उक्त उपखंड द्वारा दिए गए अधिकार के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों में युक्तियुक्त निर्बन्धन जहाँ तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बन्धन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी और विशिष्टतया उक्त उपखंड की कोई बात--

(i) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने के लिए आवश्यक वृत्तिक या तकनीकी अर्हताओं से, या

(ii) राज्य द्वारा या राज्य के स्वामित्व या नियंत्रण में किसी निगम द्वारा कोई व्यापार, कारोबार, उद्योग या सेवा, नागरिकों का पूर्णतः या भागतः अपवर्जन करके या अन्यथा, चलाए जाने से,

जहाँ तक कोई विद्यमान विधि संबंध रखती है वहाँ तक उसके प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या इस प्रकार संबंध रखने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी।

विवरण

- संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत अधिकारों की प्रकृति सकारात्मक हैं तथा यह केवल भारत के नागरिक को प्राप्त हैं। प्रारंभ में इस अनुच्छेद के अंतर्गत नागरिकों को सात स्वतंत्रताएँ प्राप्त थीं। लेकिन, 44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा अनुच्छेद 19(1)(f) (सम्पत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार) समाप्त कर दिया गया है। वर्तमान में यह अनुच्छेद नागरिकों को छः प्रकार की स्वतंत्रताएं प्रदान करता हैं।
- अनुच्छेद 19 को भारतीय लोकतांत्रिक शासन की नींव कहा जाता है। हालांकि, कोई भी स्वतंत्रता संपूर्ण (आत्यंतिक) नहीं है और इन पर 'युक्तियुक्त' प्रतिबंध लगाकर कटौती की जा सकती है।
- युक्तियुक्त प्रतिबंध केवल कानून के प्राधिकार द्वारा लगाया जा सकता है, न कि कार्यपालिका की कार्रवाई से (युक्तियुक्तता के निर्णय का अधिकार शासन को नहीं, वरन न्यायपालिका का होना चाहिए)। यह न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन है। प्रतिबंध केवल संविधान में उल्लिखित आधारों पर लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 19(1) के द्वारा निम्नलिखित स्वतंत्रताएं प्रदान की गयी गयी हैं:

अनुच्छेद 19(1)(a) - वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

- वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ है प्रत्येक नागरिक अपने विचारों और विश्वासों को निर्बाध रूप से मौखिक, लिखित अथवा मुद्रण और चित्रण के द्वारा अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक मामले की सुनवाई के दौरान 'मौन' (Silence) को भी अभिव्यक्ति का रूप माना है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता	
प्रतिबंध के आधार	**व्युत्पन्न महत्वपूर्ण अधिकार**
• भारत की संप्रभुता और अखंडता • राज्य की सुरक्षा, • विदेशी राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, • लोक व्यवस्था, • शिष्टाचार या सदाचार • न्यायालय की अवमानना, • मानहानि; तथा • अपराध-उद्दीपन।	• सूचना का अधिकार • प्रेस की स्वतंत्रता • एकान्तता का अधिकार • राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार • प्रदर्शन एवं विरोध का अधिकार, लेकिन हड़ताल का अधिकार नहीं • मौन रहने का अधिकार

प्रेस की स्वतंत्रता की स्थिति

- संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे कई देशों के विपरीत, जहां प्रेस की स्वतंत्रता की गारंटी का अलग से कोई प्रावधान नहीं है,
- भारत में साकल पेपर मिल्स बनाम भारत संघ वाद (1962) में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि प्रेस की स्वतंत्रता, अनुच्छेद 19(1)(a) के तहत 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' में सम्मिलित है।किंतु इस स्वतंत्रता पर भी अनुच्छेद 19(2) के तहत युक्तियुक्त निर्बंधन लगाए जा सकते हैं।
- **बृज भूषण वाद** में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि मीडिया पर कोई पूर्व सेंसरशिप नहीं है, अर्थात्, किसी पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं है।
- **44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976** द्वारा अनुच्छेद 361A को जोड़ा गया है; जो एक व्यक्ति को संसद और राज्य विधानमंडलों की कार्यवाहियों को प्रकाशित करने के संबंध में संरक्षण प्रदान करता है।
- **इंडियन एक्सप्रेस वाद (1985)** में, यह स्पष्ट किया गया कि प्रेस की स्वतंत्रता में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
  - सूचना का अधिकार
  - प्रकाशित करने का अधिकार
  - प्रसारित करने का अधिकार

संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग (NCRWC) ने सिफारिश की है कि प्रेस की स्वतंत्रता को स्पष्ट स्वरूप प्रदान किया जाना चाहिए तथा इसे अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में निहित मानकर, इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

अनुच्छेद: 19(1)(b) शांतिपूर्ण सम्मेलन की स्वतंत्रता

- अनुच्छेद 19(1)(b) के अंतर्गत नागरिकों को शांतिपूर्ण और निरायुध (without arms) सम्मेलन करने का अधिकार प्रदत है। इस अधिकार के कारण नागरिकों को सार्वजनिक सभा करने, प्रदर्शन करने एवं जुलूस निकालने से प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है।
- इस पर भारत की प्रभुता और अखंडता या लोक व्यवस्था के हित में युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किये जा सकते है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अनुच्छेद: 19(1)(c) संघ या संगठन बनाने का अधिकार

- इसके तहत भारत के सभी नागरिकों को संगम या संघ बनाने का अधिकार दिया गया है। यह संघ सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं शैक्षणिक हो सकता है। इस अधिकार के तहत राजनीतिक दल, कंपनियाँ, सहकारी संघ, मजदूर संघ, क्लब आदि बनाने की शक्ति प्राप्त होती है।
- सशस्त्र सेनाओं, पुलिस, आदि को भी संघ बनाने का अधिकार है, हालाँकि इन्हे केवल सांस्कृतिक संघ बनाने की अनुमति है न की राजनीतिक संघ बनाने की।
- **सरकारी अधिकारियों के वाद में हड़ताल का अधिकार:** औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत ट्रेड यूनियनों को कुछ निश्चित परिस्थितियों में, हड़ताल करने का अधिकार प्राप्त है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने सरकारी अधिकारियों के लिए कहा है कि, जब संचार के अन्य सभी चैनल असफल हो जाएं, केवल तभी हड़ताल का अधिकार एक अंतिम उपाय के रूप में उपलब्ध है। हालांकि, इसे मूल अधिकारों के अंतर्गत सम्मिलित नहीं समझा जा सकता है। अत: सरकार ऐसी परिस्थितियों में आवश्यक सेवा रखरखाव अधिनियम या एस्मा (Essential Services Maintenance Act) लागू कर हड़ताल वापस लेने के लिए मजबूर कर सकती है।
- उच्चतम न्यायालय ने **टी.के. रंगराजन बनाम तमिलनाडु राज्य वाद (2003)** में कहा है कि सरकारी अधिकारियों को हड़ताल का मूल अधिकार प्राप्त नहीं है।

अनुच्छेद 19(1)(d) भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार

अनुच्छेद 19(1)(d) के द्वारा भारत के नागरिक को भारत के राज्यक्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण (Free movement) का अधिकार प्राप्त है। हालाँकि, जन-साधारण के हित में या अनुसूचित जनजाति के हित में अबाध भ्रमण (संचरण) पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किये जा सकते हैं। यह प्रतिबंध अनुसूचित जनजाति की संस्कृति, भाषा, रीति-रिवाज आदि को सुरक्षित रखने के उद्देश्य से लगाया गया है।

अनुच्छेद: 19(1)(e) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार

- यह भारतीय नागरिकों को भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार प्रदान करता है। विशिष्ट परिस्थितियों में, जन-साधारण या अनुसूचित जाति के हित मे, इस पर युक्तियुक्त प्रतिबंध आरोपित किये जा सकते हैं। यह देश के आंतरिक अवरोधों को समाप्त कर राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करता है।
- जम्मू-कश्मीर राज्य में भारत के दूसरे प्रांत के लोगों को अचल संपत्ति खरीदने अथवा स्थायी रूप से बसने की छूट नहीं है।

19(1)(d) और 19(1)(e) पर आरोपित प्रतिबन्ध

- 19(1)(d) भारतीय नागरिकों को देश के राज्यक्षेत्र में अबाध संचरण का और 19(1)(e) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बसने का अधिकार प्रदान करता है। इन अधिकारों के प्रदान करने का आधार भारत का 'एकल क्षेत्र' होने की संकल्पना पर आधारित है।
- दोनों अनुच्छेद परस्पर संबद्ध हैं तथा वास्तव में एक-दूसरे का अनुसरण करते हैं। निम्नलिखित कुछ प्रतिबन्ध हैं, जो इन पर आरोपित हैं:

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **लोक व्यवस्था बनाए रखने के लिए:** यदि अधिकारियों को संदेह है कि किसी व्यक्ति के संचरण से एक क्षेत्र में लोक व्यवस्था में खतरा उत्पन्न होने की संभावना है, तो उसके इस अधिकार पर प्रतिबंध लगाया जा सकता है। हालांकि, यह प्रतिबंध दमनकारी या मनमाना नहीं हो सकता।
- **सुरक्षा कारणों के लिए:** दो पहिया वाहन सवारों के लिए हेलमेट निर्धारित किया जा सकता है।
- किसी राज्यक्षेत्र से नागरिक के विरुद्ध निष्कासन का आदेश, यदि उसे एक असामाजिक तत्व माना जाता है। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति को राज्य से निष्कासित किया जा सकता है यदि वह किसी वाद में गवाह को डरा-धमका/भयभीत कर रहा हो।
- अनुसूचित जनजातियों के हितों के संरक्षण हेतु।

अनुच्छेद 19(1)(f) के तहत भारत के नागरिक को संपत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार प्राप्त था। सामाजिक और आर्थिक समानता लाने के उद्देश्य से इस अनुच्छेद को 44वाँ संविधान अधिनियम, 1978 द्वारा मूल अधिकार से हटा दिया गया है। इसे अनुच्छेद 300A में सामान्य कानूनी अधिकार के तहत रखा गया है।

अनुच्छेद: 19(1)(g) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार

- अनुच्छेद 19(1)(g) भारत के सभी नागरिकों को कोई भी वृत्ति (Profession), उपजीविका (Occupation), व्यापार या कारोबार (Business) करने का अधिकार प्रदत करता है। हालाँकि राज्य जनहित में इस अधिकार पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगा सकती है, जैसे- नशीली दवाओं या शराब जैसे अहितकर, जोखिमभरी और खतरनाक चीजों का व्यापार करने पर कुछ प्रतिबंध है।
- राज्य किसी वृत्ति या कारोबार के लिए आवश्यक वृत्तिक (Professional) या तकनीकी अर्हता (Technical qualifications) निर्धारित कर सकता है।

राष्ट्रीय आपातकाल का अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकारों पर प्रभाव

- यदि आपातकाल की घोषणा बाह्य आक्रमण के आधार पर की गई हो तो अनुच्छेद 19 स्वतः निलंबित हो जाता है और आपातकाल जारी रहने तक निलंबित रहता है। हालांकि, 44वें संविधान संशोधन के पश्चात्, यदि आपातकाल सशस्त्र विद्रोह के आधार पर घोषित किया गया है, तो इसे निलंबित नहीं किया जा सकता है।

नोट: अनुच्छेद 19 के तहत प्रदत्त अधिकार केवल भारतीय नागरिकों को उपलब्ध हैं।

5.9. अनुच्छेद 20- अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में संरक्षण

मूल पाठ

1. *कोई व्यक्ति किसी अपराध के लिए तब तक दोषसिद्ध नहीं ठहराया जाएगा, जब तक कि उसने ऐसा कोई कार्य करने के समय, जो अपराध के रूप में आरोपित है, किसी प्रवृत्त विधि का अतिक्रमण नहीं किया है या उससे अधिक शास्ति का भागी नहीं होगा जो उस अपराध के किए जाने के समय प्रवृत्त विधि के अधीन अधिरोपित की जा सकती थी।*
2. *किसी व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा।*
3. *किसी अपराध के लिए अभियुक्त किसी व्यक्ति को स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा।*

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विवरण

- **अनुच्छेद 20(1)** यह प्रावधान करता है कि कोई भी आपराधिक विधि **भूतलक्षी प्रभाव से** अधिनियमित नहीं की जा सकती। किसी अपराधी को केवल अपराध किए जाने के समय में अधिरोपित कानून द्वारा ही दंडित किया जा सकता है। **केदारनाथ बनाम पश्चिम बंगाल वाद (1954)** में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि जब विधानमंडल किसी कार्य को अपराध घोषित करता है या किसी अपराध के दण्ड का उपबंध करता है तो वह विधि को भूतलक्षी बनाकर उन व्यक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल सकता जिन्होंने उस विधि के अधिनियमित होने के पूर्व अपराध किये थे। हालांकि, इस तरह के संरक्षण केवल आपराधिक कानूनों के सन्दर्भ में दिए गए हैं, नागरिक कानूनों के सन्दर्भ में नहीं।
- **अनुच्छेद 20(2) दोहरे जोखिम** से सुरक्षा प्रदान करता है। इसके अनुसार एक व्यक्ति को एक ही अपराध के लिए एक बार से अधिक अभियोजित और दंडित नहीं किया जाएगा। हालांकि, यह सिद्धांत केवल तब लागू होता है जब कार्यवाहियाँ न्यायालय अथवा न्यायिक अधिकरण के समक्ष हों। विभागीय जाँच अथवा अनुशासनात्मक कार्यवाहियाँ इस सिद्धांत का उल्लंघन नहीं मानी जाती। उल्लेखनीय है कि संविधान केवल एक ही अपराध के लिए दोहरा दंड वर्जित करता है। एक अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराए जाने के बाद भी किसी अन्य अपराध के सम्बन्ध में दंड दिया जा सकता है। यदि एक ही अधिनियम की विभिन्न धाराओं के तहत विभिन्न अपराध किये गए हों तो संविधान उनके लिए पृथक विचारण पर रोक नहीं लगाता।
- **अनुच्छेद 20(3),** किसी अपराध के सम्बन्ध में अभियुक्त को स्वयं अपने विरुद्ध गवाही देने के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं का बचाव करने का अधिकार है। यह अधिकार प्राकृतिक व्यक्तियों को भी है और निगमों को भी। यह संरक्षण किसी न्यायालय या न्यायिक प्राधिकरण के समक्ष दांडिक कार्यवाहियों तक सीमित है तथा सिविल कार्यवाहियों एवं ऐसी कार्यवाहियों पर लागू नहीं होता जो दांडिक प्रकृति की नहीं है। **सेल्वी बनाम कर्नाटक राज्य वाद में** उच्चतम न्यायालय ने नार्को एनालिसिस और ब्रेन मैपिंग पर प्रतिबंध लगा दिया। हालांकि, डीएनए परीक्षण और अन्य सैंपल एकत्र किये जा सकते हैं।
  - यह अनुच्छेद सभी व्यक्तियों पर लागू होता है चाहे वह भारतीय नागरिक हो या विदेशी।

5.10. अनुच्छेद 21- प्राण और दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार

मूल पाठ

किसी व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।

विवरण:

- इसके अंतर्गत प्रत्येक भारतीय को न सिर्फ जीवन बल्कि गरिमापूर्वक जीवन का अधिकार प्रदान किया गया है। अतः जीवन के अधिकार में वे सभी आयाम सम्मिलित हैं जिनसे मनुष्य का जीवन सार्थक, सम्पूर्ण और जीने योग्य बनता है।
- अनुच्छेद 21 के अंतर्गत व्यक्ति को उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जायेगा अन्यथा नहीं अर्थात यह अनुच्छेद राज्य की मनमानी शक्तियों पर एक प्रतिबंध आरोपित करता है। राज्य एक सुनिश्चित प्रक्रिया के अनुसार ही किसी व्यक्ति को उसके जीवन की स्वतंत्रता से वंचित कर सकता है।
- विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया (Procedure established by law) ब्रिटिश परंपरा से ली गई है। इसके अंतर्गत यह जाँच किया जाता है कि क्या कानून प्रक्रियागत रूप से सही है। हालांकि, न्यायपालिका को इस कानून के उद्देश्यों को चुनौती देने की अनुमति नहीं है। वहीं दूसरी ओर विधि की सम्यक प्रक्रिया (Due process of law) अमेरिकी न्यायपालिका की एक अभिव्यक्ति है। जिसके अंतर्गत न्यायपालिका कानून को न केवल प्रक्रियात्मक आधार पर बल्कि इसके औचित्य के आधार पर भी चुनौती दे सकती है।

Website - https://upscpdf.com

ए.के. गोपालन वाद (1950) एवं मेनका गांधी वाद (1978)

- गोपालन वाद में उच्चतम न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के प्रावधान को अपनाकर हमारे संविधान के अनुच्छेद 21 ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ब्रिटिश संकल्पना को अपनाया है तथा अमेरिका की सम्यक प्रक्रिया की संकल्पना को नहीं अपनाया गया है।
- उच्चतम न्यायालय ने संविधान में विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया की, गोपालन वाद (1950) में सूक्ष्म व्याख्या की तथा घोषित किया कि इस अधिकार के तहत सिर्फ मनमानी कार्यकारी प्रक्रिया के विरुद्ध सुरक्षा प्राप्त है, न कि विधानमंडलीय प्रक्रिया के विरुद्ध। इसका अर्थ यह है कि राज्य प्राण एवं दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को कानूनी आधार पर रोक सकता है।
- मेनका गांधी वाद (1978) में उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया है कि, विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया विधि की सम्यक प्रक्रिया में ही निहित है। उच्चतम न्यायालय ने इस वाद में पहली बार अमेरिका की विधि की सम्यक प्रक्रिया की संकल्पना को लागू किया। यह निम्नलिखित तर्कों को लागू करता है:-
  - अनुच्छेद 19 और 21 को अकाट्य अंश नहीं समझा जा सकता और युक्तियुक्तता का समान मापदंड अनुच्छेद 21 के लिए भी लागू किया जाना चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 21 को अनुच्छेद 19 के साथ जोड़कर व्याख्या की तथा पहली बार प्रक्रिया की युक्तियुक्तता (अर्थात् प्रक्रिया मनमानीपूर्ण या अनौचित्यपूर्ण न हो) पर बल देते हुए नैसर्गिक न्याय के सिद्धांत को अपनाया। साथ ही, यह भी स्पष्ट किया कि अनुच्छेद 19 और 21 परस्पर अपवर्जनकारी नहीं हैं, बल्कि वे एक-दूसरे को बल प्रदान करते हैं।
  - केवल विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का पालन करना ही पर्याप्त नहीं है। न्यायालय को समीक्षा करने और कानून की युक्तियुक्तता पर सवाल उठाने का अधिकार भी प्राप्त होता है।
    - प्रतिबंध उचित, न्यायसंगत और निष्पक्ष होने चाहिए, मनमाने ढंग का नहीं।
- भारत में परंपरागत रूप से ब्रिटेन में प्रचलित विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के सिद्धांत का अनुपालन किया जाता रहा है। हालांकि 1978 के बाद से, भारत में हम दोनों का अनुपालन करते हैं।

5.10.1. न्यायिक व्याख्या द्वारा अनुच्छेद 21 के क्षेत्र का विस्तार

- मेनका गांधी वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि अनुच्छेद 21 के तहत प्राण का अर्थ केवल 'पशुवत अस्तित्व' या जीवित रहना मात्र नहीं है। इसके अंतर्गत मानवीय गरिमा के साथ जीने का अधिकार भी सम्मिलित है।
- इसमें जीवन के वे सभी आयाम सम्मिलित हैं जिनसे मनुष्य का जीवन सार्थक, संपूर्ण और जीने योग्य बनता है। मेनका गांधी वाद के पश्चात् भी कई न्यायिक व्याख्याओं ने अनुच्छेद 21 की परिधि को बढ़ाते हुए इसके अंतर्गत कई अधिकारों को समाहित किया है।
- **उन्नीकृष्णन बनाम आँध्रप्रदेश राज्य वाद (1993)** में निर्धारित किया गया कि जीवन के अधिकार में शिक्षा का अधिकार सम्मिलित है। अनुच्छेद 21 का विस्तृत क्षेत्राधिकार उच्चतम न्यायालय द्वारा वर्णित किया गया है और उच्चतम न्यायालय ने स्वयं ही पूर्वन्यायनिर्णयों के आधार पर अनुच्छेद 21 के तहत आने वाले अधिकारों की सूची उपलब्ध करायी है। इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:
  - विदेश यात्रा का अधिकार;
  - निजता का अधिकार;
  - आश्रय का अधिकार;
  - सामाजिक न्याय और आर्थिक सशक्तिकरण का अधिकार;
  - एकांत कारावास के विरुद्ध अधिकार;
  - हथकड़ी लगाने के विरुद्ध अधिकार;
  - मृत्युदंड में देरी के विरुद्ध अधिकार;

- बंदीगृह में मृत्यु के विरुद्ध अधिकार;
- सार्वजनिक रूप से फांसी के विरुद्ध अधिकार;
- चिकित्सकीय सहायता का अधिकार;
- सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा का अधिकार;
- प्रत्येक शिशु के पूर्ण विकास का अधिकार;
- प्रदूषणमुक्त वायु एवं जल का अधिकार आदि।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रारंभ में अनुच्छेद 21 के प्रावधानों की संकीर्ण व्याख्या की गई परन्तु धीरे-धीरे दैहिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के संदर्भ में कानून का विस्तार हुआ और इसकी उदार व्याख्या की गई। अनुच्छेद 21 के क्षेत्राधिकार में समय के साथ नये आयाम जोड़े गये। इसने किसी व्यक्ति को प्राण तथा दैहिक स्वतंत्रता से वंचित किये जाने की प्रक्रिया पर यह कहते हुए सीमाएँ आरोपित की, कि प्रक्रिया को न्यायोचित तथा विवेकपूर्ण होना चाहिए तथा कानून को मनमाना, सनकपूर्ण अथवा काल्पनिक नहीं होना चाहिए।

{नोट: हुसैन आरा खातून वाद (1979) जिसे भारत में जनहित याचिका (PIL) के उद्भव के रूप में देखा जाता है; में निर्धारित किया गया कि त्वरित सुनवाई का अधिकार न्याय प्राप्ति का सार है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने पहली बार वंचितों को मुफ्त कानूनी सहायता की आवश्यकता पर बल दिया ताकि उनके अधिकारों को सार्थक संरक्षण प्रदान करने वाली न्याय प्रणाली को स्थापित किया जा सके। साथ ही इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 में प्रदत्त विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया में संतुलित, उचित एवं न्याय पर आधारित प्रयोजनों को लागू करने पर जोर दिया।)**}**

5.10.2. निजता का अधिकार

(Right to Privacy)

हाल ही में, उच्चतम न्यायालय की नौ सदस्यीय संवैधानिक खंडपीठ ने **के. एस. पुट्टास्वामी बनाम भारत संघ वाद** में सर्वसम्मति से निर्णय देते हुए 'निजता के अधिकार' को अनुच्छेद-21 के जीवन और स्वतंत्रता के अधिकार के तहत मूल अधिकार का अभिन्न हिस्सा माना है। यह निर्णय विभिन्न जन-कल्याण कार्यक्रमों का लाभ उठाने के लिए केंद्र सरकार द्वारा आधार कार्ड को अनिवार्य करने को चुनौती देने वाली याचिकाओं से संबंधित है।

- **मेनका गांधी बनाम भारत संघ (1978) वाद** में न्यायालय ने यह माना कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता और निजता के अधिकार में अल्पीकरण या दखल देने वाला कोई भी कानून अनियंत्रित या मनमाना नहीं होना चाहिए।
- निजता संबंधी कानूनों का अध्ययन करने के लिए न्यायमूर्ति ए.पी.शाह की अध्यक्षता में विशेषज्ञों की एक समिति गठित की गई थी। इस समिति को निजता पर प्रस्तावित मसौदा विधेयक, 2011 से संबंधित सुझाव देना था। इसके द्वारा केंद्र और राज्यों में निजता आयुक्तों (privacy commissioners) की नियुक्ति, डेटा संग्रहकर्ताओं द्वारा पालन किए जाने वाले निजता सम्बन्धी नौ सिद्धांत तथा उद्योगों द्वारा स्व-विनियामक संगठन की स्थापना, आदि अनुशंसाएँ की गईं।

डेटा (गोपनीयता और संरक्षण) विधेयक, 2017

- हाल ही में, डेटा (गोपनीयता और संरक्षण) विधेयक, 2017 को लोकसभा में पेश किया गया।
- इसमें डेटा के संकलन, प्रसंस्करण, भंडारण और हटाने के लिए व्यक्तिगत सहमति तथा इस प्रक्रिया में मामलों की विशिष्टता के आधार पर बहुत सीमित अपवादों की स्वीकृति को अनिवार्य बनाने का प्रावधान है।
- इसके साथ ही इसमें डेटा गोपनीयता और संरक्षण प्राधिकरण को अपील के प्रावधान के साथ अंतिम उपयोगकर्ताओं के शिकायत निवारण हेतु डेटा संरक्षण अधिकारी के पद का सृजन करना, जैसे प्रावधान किये गए हैं।

निजता के अधिकार से संबंधित अंतर्राष्ट्रीय कानून

- 1981 में यूरोपीय कॉउन्सिल द्वारा हस्ताक्षरित कन्वेंशन फॉर दि इंडिविजुअल विद रिगार्ड टू ऑटोमेटिक प्रोसेसिंग ऑफ़ पर्सनल डेटा (कन्वेंशन 108) निजता के अधिकार का संरक्षण प्रदान करने वाली प्रथम कानूनी रूप से बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय संधि है।
- मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा, 1948 का अनुच्छेद 12 और इंटरनेशनल कोवेनेंट ऑन सिविल एंड पोलिटिकल राइट (ICCPR) 1966 का अनुच्छेद 17, व्यक्तियों की निजता, परिवार, घर, पत्राचार, सम्मान और प्रतिष्ठा के साथ "मनमाने ढंग से हस्तक्षेप" के खिलाफ कानूनी संरक्षण प्रदान करता है।

निजता के अधिकार का महत्व

- इस निर्णय के परिणामस्वरूप व्यक्ति के मूल अधिकारों का विस्तार तथा उनकी गरिमा सुनिश्चित होगी। इसके अनुसार, राष्ट्रीय डेटा संग्रह में निहित किसी भी व्यक्तिगत आंकड़ों के दुरुपयोग की स्थिति में राज्य को क्षतिपूर्ति प्रदान करनी होगी। अब नागरिक उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालयों में अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपनी निजता के अधिकार के उल्लंघन के लिए सीधे अपील दायर कर सकते हैं। इस प्रकार यह सुनिश्चित किया गया है कि अधिकार सार्वजनिक स्वास्थ्य, नैतिकता और व्यवस्था के उचित प्रतिबंधों के अधीन है। ध्यातव्य है कि निजता को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक सुदृढ़ कानूनी ढाँचे का समर्थन प्राप्त है। 1979 में भारत ने ICCPR पर हस्ताक्षर तथा अभिपुष्टि भी की है।
- परन्तु इस निर्णय से कई चिंताएँ भी उत्पन्न हुई हैं। यथा सरकार की कल्याणकारी योजनाओं और अन्य मामलों जैसे कि आधार, धारा 377, व्हाट्सएप प्राइवेसी पालिसी, खानपान की आदतों पर प्रतिबंध आदि पर प्रभाव पड़ेगा। निजता की रूपरेखा को परिभाषित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह अन्य सभी मूल अधिकारों में भी समाहित है। यह निगरानी, खोज और जब्ती, कॉल टैपिंग, ट्रांसजेंडर के अधिकार आदि सहित विभिन्न अधिकारों का एक क्लस्टर (समूह) है।
- इस अधिकार के सफल कार्यान्वयन के लिए आवश्यक है कि भारत में निजता के संरक्षण की भावना को बढ़ावा दिया जाय। यह पश्चिमी देशों की तुलना में भारत में कम है। इस हेतु एक राष्ट्रीय डेटा संरक्षण प्रारूप का विकास किया जाना चाहिए जो व्यक्तियों के लिए केवल डेटा संरक्षण से परे एक व्यापक संदर्भ में व्यक्तिगत निजता की रूपरेखा को परिभाषित करे। एक विधिक ढांचे के निर्माण के माध्यम से डेटा माइनिंग और बिग डेटा के लाभों के साथ किसी व्यक्ति के निजता के अधिकार को संतुलित करना चाहिए।

5.10.3. जीवन का अधिकार और आत्महत्या (IPC की धारा 309)

- **भारत में आत्महत्या संबंधी कानून:** मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विधेयक - 2016 के पारित होने से पहले आत्महत्या, या आत्महत्या का प्रयास करना भारतीय दंड संहिता की धारा 309 के अंतर्गत अपराध था। इस नये कानून के अंतर्गत भारतीय दंड संहिता की धारा 309 का निरपराधीकरण कर दिया गया है तथा मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति के आत्महत्या के प्रयासों को दण्डनीय नहीं माना गया है।
- **पी. रत्नम वाद** में उच्चतम न्यायालय ने वर्ष 1994 में धारा 309 को यह कह कर असंवैधानिक करार दिया था कि 'न जीने का अधिकार' संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रदत्त 'जीने के अधिकार' में ही निहित है।
- साथ ही इस वाद में कहा गया कि सभी मूल अधिकारों के सकारात्मक के साथ नकारात्मक निहितार्थ भी हैं। जैसे कि भाषण एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार में 'नहीं बोलने के अधिकार' भी समाविष्ट है। इस व्याख्या से धारा 309 का अस्तित्व समाप्त हो गया था और वर्ष 1996 तक यही स्थिति रही।

VISION IAS

- हालाँकि, उच्चतम न्यायालय ने **ज्ञान कौर वाद** (1996) में 1994 के निर्णय को उलट दिया जिसके कारण धारा 309 पुनः अस्तित्व में आ गयी और 'न जीने का अधिकार' असंवैधानिक बन गया।
- 2008 में विधि आयोग ने अपनी दो सौ दसवीं रिपोर्ट में आत्महत्या के प्रयास को अपराध की श्रेणी से बाहर निकालने की सिफारिश की।
- मार्च 2017 में लोकसभा द्वारा सर्वसम्मति से मानसिक स्वास्थ्य देखभाल विधेयक को पारित किया गया जिसके अनुसार आत्महत्या का प्रयास मानसिक तनाव की स्थिति को दर्शाता है तथा इसे अपराध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। आत्महत्या का प्रयास करने वाले व्यक्ति को दंड की नहीं वरन देखभाल और उपचार की आवश्यकता है।

5.10.4. जीवन का अधिकार एवं मृत्युदंड

- वर्तमान में वैश्विक रुख मृत्युदंड को समाप्त करने के पक्ष में है, भारत ने अपने को ऐसे देशों की श्रेणी में बनाए रखा है जहां मृत्युदंड को पूर्णतया समाप्त नहीं किया गया है, जैसे- चीन, ईरान, पाकिस्तान, अमेरिका।
- मृत्युदंड के समर्थकों ने इसको निवारक क्षमता के लिए अपनाया है। इसके अलावा, कुछ अपराध इतने जघन्य होते हैं जिनकी सजा अगर मृत्युदंड से कम हो तो वे न्याय के लक्ष्य को पूरा नहीं कर पाती हैं। आतंकवाद जैसे मामलों में, यदि आतंकवादियों को मौत की सजा नहीं दी जाए तो वे राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा बने रह सकते हैं।

हालांकि मृत्युदंड को समाप्त करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं: -

- निवारक तर्क (deterrent logic) का समर्थन करने के लिए कोई पर्याप्त आंकड़े नहीं हैं।
- संयुक्त राज्य अमेरिका में किए गए एक अध्ययन से पता चलता है कि जिन राज्यों ने मौत की सजा को समाप्त कर दिया है वहाँ पर हत्या की घटना में गिरावट देखने को मिली।
- किसी भी सभ्य समाज में **प्रतिशोध का सिद्धांत (The principle of revenge)** (जैसे-आंख के बदले आंख) न्याय का आधार नहीं हो सकता।

सजा का उद्देश्य दंड के बजाय सुधार होना चाहिए। मृत्युदंड की सजा सिर्फ **अन्यान्यतम (रेयरेस्ट ऑफ दि रेयर)** मामलों में दी जाती है।

बच्चन सिंह वाद (1980) में उच्चतम न्यायालय ने आजीवन कारावास को नियम और मृत्युदंड का अपवाद मानते हुए मृत्युदंड की गुंजाइश को बरकरार रखा और इसे न्यायसंगत बनाने के लिए अनन्यतम (रेयरेस्ट ऑफ दि रेयर) का सिद्धांत निष्पादित किया।

मच्छी सिंह बनाम पंजाब सरकार (1983) वाद में उच्चतम न्यायालय के तीन सदस्यीय खंडपीठ ने मृत्युदंड देने के लिए निम्नलिखित मापदंडों को रखा।

- अत्यन्त क्रूर, कठोर और भयानक तरीके से हत्या के मामले में;
- हत्या का उद्देश्य धन होने पर;
- अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों की हत्या करने पर;
- किसी निर्दोष बच्चे, असहाय महिला या गणमान्य व्यक्ति की हत्या करने पर।

प्रयोजनीयता

अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त अधिकारों को कभी भी निलंबित नहीं किया जा सकता और ये दोनों अधिकार सभी व्यक्तियों, चाहे वह भारतीय नागरिक हो या विदेशी सभी को उपलब्ध हैं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.11. अनुच्छेद 21-A : *शिक्षा का अधिकार*

मूल पाठ

राज्य छह से चौदह वर्ष की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा इस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार से राज्य विधि के अधीन निर्धारित करे।

विवरण एवं ऐतिहासिक विकास

- 1992 में **मोहिनी जैन वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार का हिस्सा है और इसलिए यह संविधान के भाग III के तहत एक मूल अधिकार है।
- **उन्नीकृष्णन वाद** (1993) में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने इसको और सुदृढ़ किया जिसमें यह पुष्टि की गयी कि शिक्षा का अधिकार अनुच्छेद 21 के तहत प्रत्याभूत जीवन के अधिकार से संबंधित है।
- उल्लेखनीय है कि उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यह एक निरपेक्ष एवं अनन्य अधिकार नहीं है। यह अधिकार किस तरह लागू किया जाय इसका निर्धारण राज्य पर निर्भर करेगा।
- 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा संविधान के भाग III में अनुच्छेद 21(A) को जोड़कर 6-14 वर्ष तक की उम्र के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारम्भिक/प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक गारंटी दी गयी है। 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा संविधान में निम्नलिखित परिवर्तन किये गए:
- राज्य की नीति के निर्देशक तत्व के रूप में संविधान के अनुच्छेद 45 में कहा गया है कि, राज्य सभी बच्चों को (0-6) वर्ष की आयु पूरी हो जाने तक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए उपबंध करने का प्रयास करेगा।
- अनुच्छेद 51(A) के तहत एक नया मूल कर्तव्य जोड़ा गया जिसके अनुसार - यह प्रत्येक भारतीय नागरिक का कर्तव्य होगा कि वह अपने बच्चे को चाहे वह उसके माता-पिता हो या अभिभावक 6 से 14 वर्ष की उम्र तक शिक्षा की सुविधा उपलब्ध कराएं।
- यह उपर्युक्त आयु समूह के सभी बच्चों के लिए लागू होता है चाहे वह भारतीय नागरिक हों या नहीं।

5.12. अनुच्छेद 22– कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण

मूल पाठ

कुछ दशाओं में गिरफ्तारी और निरोध से संरक्षण।

1. *किसी व्यक्ति को जो गिरफ्तार किया गया है, ऐसी गिरफ़्तारी के कारणों से यथा शीघ्र अवगत कराये बिना अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा या अपनी रूचि के विधि व्यवसायी से परामर्श करने और प्रतिरक्षा कराने के अधिकार से उसे वंचित नहीं रखा जाएगा।*
2. *प्रत्येक व्यक्ति को, जो गिरफ्तार किया गया है और अभिरक्षा में निरुद्ध रखा गया है, गिरफ्तारी के स्थान से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक यात्रा के लिए आवश्यक समय को छोड़कर ऐसी गिरफ्तारी से चौबीस घंटे की अवधि में निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जायेगा और ऐसे किसी व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना उक्त अवधि से अधिक अवधि के लिए अभिरक्षा में निरुद्ध नहीं रखा जाएगा।*
3. *खण्ड (1) और खण्ड (2) की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को लागू नहीं होगी जो-*

   (क) *तत्समय शत्रु अन्यदेशीय है; या*

   (ख) *निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन गिरफ्तार या निरुद्ध किया गया है।*

Website - https://upscpdf.com

4. *निवारक निरोध का उपबंध करने वाली कोई विधि किसी व्यक्ति को तीन मास से अधिक अवधि के लिए तब तक निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जब तक कि-*

   (क) *ऐसे व्यक्तियों से, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या न्यायाधीश रहे हैं या न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं, मिलकर बने सलाहकार बोर्ड ने तीन मास की उक्त अवधि की समाप्ति से पहले यह प्रतिवेदन नहीं दिया है कि उसकी राय में ऐसे निरोध के लिए पर्याप्त कारण है: परन्तु इस उपबंध की कोई भी बात किसी व्यक्ति का उस अधिकतम अवधि से अधिक अवधि के लिए निरुद्ध किया जाना प्राधिकृत नहीं करेगी जो खण्ड (7) के उपखण्ड (ख) के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा विहित की गई है; या*

   (ख) *ऐसे व्यक्ति को खण्ड (7) उपखण्ड (क) और उपखण्ड (ख) के अधीन संसद द्वारा बनाई गई विधि के उपबंधों के अनुसार निरुद्ध नहीं किया जाता है।*

5. *निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन किये गए आदेश के अनुसरण में जब किसी व्यक्ति को निरुद्ध किया जाता है तब आदेश करने वाला प्राधिकारी यथाशीघ्र उस व्यक्ति को यह संसूचित करेगा कि वह आदेश किन आधारों पर किया गया है और उस आदेश के विरुद्ध अभ्यावेदन करने के लिए उसे शीघ्रातिशीघ्र अवसर देगा।*

6. *खण्ड (5) की किसी बात से ऐसा आदेश, जो उस खण्ड में निर्दिष्ट है, करने वाले प्राधिकारी के लिए ऐसे तथ्यों को प्रकट करना आवश्यक नहीं होगा जिन्हें प्रकट करना ऐसा प्राधिकारी लोकहित के विरुद्ध समझता है।*

7. *संसद विधि द्वारा यह विहित कर सकेगी कि-*

   (क) *किन परिस्थितियों के अधीन और किस वर्ग या वर्गों के वाद में किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन तीन मास से अधिक अवधि के लिए खण्ड (4) के उपबंध (क) के उपबंधों के अनुसार सलाहकार बोर्ड की राय प्राप्त किए बिना निरुद्ध किया जा सकेगा;*

   (ख) *किसी वर्ग या वर्गों के वाद में कितनी अधिकतम अवधि के लिए किसी व्यक्ति को निवारक निरोध का उपबंध करने वाली किसी विधि के अधीन निरुद्ध किया जा सकेगा; और*

   (ग) *खण्ड (4) के उपखण्ड (क) के अधीन की जाने वाली जांच में सलाहकार बोर्ड द्वारा अनुसरण की जाने वाली प्रक्रिया क्या होगी।*

विवरण

अनुच्छेद 22 में दो प्रकार की गिरफ्तारी या निरोध का विवरण है:

- दंडात्मक निरोध (Punitive detention); तथा
- निवारक निरोध (Preventive detention)

दंडात्मक गिरफ्तारी से सुरक्षा नागरिकों और गैर-नागरिकों के लिए उपलब्ध है, परन्तु शत्रु देश के निवासियों के लिए नहीं। एक व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में अवश्य सूचित किया जाना चाहिए ताकि वह अपने बचाव की तैयारी कर सके। व्यक्ति को अपनी पसंद के विधिवेत्ता से परामर्श करने और उसके द्वारा बचाव करने का भी अधिकार है। इस तरह के किसी व्यक्ति को 24 घंटे के भीतर किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष अवश्य प्रस्तुत किया जाना चाहिए ताकि कार्यपालिका की किसी भी गलत कार्रवाई को सुधारा जा सके।

निवारक निरोध का उद्देश्य किसी व्यक्ति को अपराध करने से रोकना है। ऐसे व्यक्ति के लिए भी कुछ अधिकार उपलब्ध हैं। उसे, उसकी गिरफ्तारी के आधार के बारे में सूचित किया जाना चाहिए। पुलिस किसी व्यक्ति को तीन माह से ज्यादा समय के लिए निरुद्ध नहीं कर सकती जब तक कि पुलिस के पास सलाहकार बोर्ड की अनुमति न हो। इस तरह के सलाहकार बोर्ड में तीन न्यायाधीश शामिल होंगे (इस तरह का सलाहकार बोर्ड ऐसे तीन व्यक्तियों से मिलकर बनेगा, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश हैं या न्यायाधीश रहे हैं या न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्हित हैं)। संसद, 3 माह से अधिक निरोध हेतु कानून बना सकती है।

VISION IAS

44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा निरोध की अवधि को बिना सलाहकार बोर्ड की राय के तीन से दो माह कर दिया गया। हालांकि यह व्यवस्था अब तक प्रयोग में नहीं आई, जबकि निरोध की मूल अवधि तीन माह की अब भी जारी है।

निवारक निरोध की आलोचना

भारत में, इस तरह के कानूनों का दुरुपयोग किया गया है और इसीलिए यह मानवाधिकारों से सम्बंधित चिंता का विषय बन गया है। यह राज्य की पुलिस शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। किसी अन्य लोकतांत्रिक देश ने अपने संविधान में निवारक निरोध का उल्लेख नहीं किया है और वहाँ इस तरह के कानून केवल आपात स्थिति के तहत प्रभाव में आते हैं।

निवारक निरोध के पक्ष में दिए गए तर्क

रक्षा, विदेश और देश की सुरक्षा से सम्बंधित संघ सूची की प्रविष्टि 9, और सार्वजनिक व्यवस्था बनाए रखने, राज्य की सुरक्षा और आवश्यक आपूर्ति और सेवायें बनाए रखने से संबंधित समवर्ती सूची की प्रविष्टि 3 में ऐसे विषय संविधान में पहले से ही दर्ज हैं जिन पर निवारक कानून बनाया जा सकता है। इस प्रकार, यह राज्य द्वारा मनमाने ढंग से की गई कार्रवाई को रोकता है।

विधायन/कानून

निम्नलिखित कानूनों में किसी व्यक्ति को तीन महीने से अधिक समय तक निरोध किए जाने के संबंध में प्रावधान हैं:

- राष्ट्रीय सुरक्षा कानून (National Security Act),
- विदेशी मुद्रा क्रियाएँ और तस्करी की रोकथाम के संरक्षण अधिनियम,1974 तथा
- आतंकवाद निरोधक कानून (Prevention of Terrorism Act: POTA)

इसी प्रकार, कई राज्यों ने भी इसी तरह के कानून बनाए हैं। केंद्रीय और राज्य स्तर के कानूनों को मिला दें तो निवारक निरोध से संबंधित ऐसे लगभग चालीस कानून अस्तित्व मे हैं।

5.13. अनुच्छेद 23 – मानव दुर्व्यापार एवं बलात् श्रम का निषेध

मूल पाठ

मानव दुर्व्यापार और बलात् श्रम का निषेध।

1. *मानव का दुर्व्यापार और बेगार तथा इसी प्रकार का अन्य बलात् श्रम प्रतिषिद्ध किया जाता है और इस उपबंध का कोई भी उल्लंघन अपराध होगा जो विधि के अनुसार दंडनीय होगा।*
2. *इस अनुच्छेद की कोई बात राज्य को सार्वजनिक प्रयोजनों के लिए अनिवार्य सेवा अधिरोपित करने से निवारित नहीं करेगी। ऐसी सेवा अधिरोपित करने में राज्य केवल धर्म, मूलवंश, जाति या वर्ग या इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।*

विवरण

- अनुच्छेद 23 (1) मानव के दुर्व्यापार, बेगार और सभी प्रकार के बलात् श्रम को प्रतिषिद्ध करता है। इसका अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और महिलाओं के लिए विशेष महत्व है। "बेगार" ऐसी श्रम या सेवा के रूप में वर्णित है, जिसमे एक व्यक्ति को इसके लिए कोई पारिश्रमिक दिए बिना इसे करने को मजबूर किया जाता है।
- अनुच्छेद 23 (2) में कहा गया है कि राज्य अनिवार्य सेवा लागू कर सकता है, अगर इसकी जरूरत है। विशेषतः, देवदासी प्रथा को उपर्युक्त अनुच्छेद के निषेध के कारण समाप्त कर दिया गया है।

Website - https://upscpdf.com

विधान

मानव दुर्व्यापार को रोकने के लिए पारित किये गए कुछ अधिनियम निम्नलिखित है:

- अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम, 1956 (Immoral Traffic Prevention Act: ITPA, 1956)
- बंधुआ मजदूरी व्यवस्था (निरसन) अधिनियम, 1976 {Bonded Labor System (Abolition) Act, 1976}
- किशोर न्याय (देखभाल और संरक्षण) अधिनियम, 2000 {Juvenile Justice (Care and Protection) Act, 2000} को निरस्त करके किशोर न्याय (देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम, 2015 पारित किया गया है, इसके कुछ प्रमुख प्रावधान निम्न हैं:
  - अधिनियम में 'किशोर' शब्द से जुड़े कई नकारात्मक संकेतार्थ को खत्म करने के लिए 'किशोर' शब्द से 'बच्चे' शब्द की नामावली में परिवर्तन। अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों की नई परिभाषाओं को सम्मिलित किया गया है।
  - बच्चों के छोटे, गंभीर और जघन्य अपराध, किशोर न्याय बोर्ड (JJB) व बाल कल्याण समिति (CWC) के अधिकारों, कार्यों और जिम्मेदारियों में स्पष्टीकरण, किशोर न्याय बोर्ड द्वारा जांच में स्पष्ट अवधि, 16 वर्ष से ऊपर के बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराध की स्थिति में विशेष प्रावधान, अनाथ, परित्यक्त और आत्मसमर्पित बच्चों को गोद लेने संबंधी नियमों पर अलग नया अध्याय, बच्चों के विरुद्ध किए गए नए अपराधों को शामिल किया गया, बाल कल्याण व देखभाल संस्थानों के पंजीकरण को अनिवार्य बनाया गया है।
  - धारा 15 के अंतर्गत 16-18 वर्ष की उम्र के बाल अपराधियों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों को लेकर विशेष प्रावधान किए गए हैं। किशोर न्याय बोर्ड के पास बच्चों द्वारा किए गए जघन्य अपराधों के मामलों को प्रारंभिक आकलन के बाद उन्हें बाल न्यायालय (कोर्ट ऑफ सेशन) को स्थानांतरित करने का विकल्प होगा।
- यह नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों के लिए उपलब्ध है।

5.14. अनुच्छेद 24 – कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध

मूल पाठ

कारखानों आदि में बालकों के नियोजन का प्रतिषेध - चौदह वर्ष से कम आयु के किसी बालक को किसी कारखाने या खान में काम करने के लिए नियोजित नहीं किया जाएगा या किसी अन्य परिसंकटमय नियोजन में नहीं लगाया जाएगा।

विवरण

- अनुच्छेद 24 खतरनाक व्यवसायों में बच्चों के नियोजन का प्रतिषेध करता है। हालांकि, यह हानिरहित कार्यों में उनके नियोजन का प्रतिषेध नहीं करता है।

नोट: अनुच्छेद 23 और 24 अनुच्छेद 39 (a) और 39 (f) द्वारा पूरित होते हैं।

5.14.1. बाल श्रम से संबंधित विधेयक

- बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 1986 बाल श्रम को रोकने के लिए विधान है। इसको बाल श्रम (निषेध एवं विनियमन) संशोधन विधेयक, 2016 के द्वारा संशोधित किया गया है। इसमें किये गए प्रमुख संशोधन निम्नलिखित है:
  - विधेयक में 14 वर्ष से कम उम्र के बालकों के रोजगार में नियोजन पर लगे हुए प्रतिबंध का सभी क्षेत्रों में विस्तार किया गया है।
  - 14-18 वर्ष के किशोरों के खतरनाक व्यवसायों में नियोजन पर प्रतिबंध लगाया गया है और

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- इन प्रावधानों के उल्लंघन पर अधिक कठोर सजा; छह महीने से दो वर्ष तक की कैद और 50,000 रुपए तक जुर्माने का प्रावधान।
- विधेयक पहले निर्धारित किये गए 83 खतरनाक व्यवसायों की सूची को सिर्फ तीन तक सीमित करता है। इनके तहत खनन, ज्वलनशील पदार्थ तथा कारखाना अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित खतरनाक प्रक्रियाएँ शामिल होंगी जिन्हें केंद्र द्वारा चिन्हित किया जायेगा।
- विधेयक में बच्चों के पुनर्वास के लिए पुनर्वास कोष निर्मित किए जाने का प्रस्ताव है, जिसे पहले ही स्थापित किया जा चुका है।

- यह भी नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों के लिए उपलब्ध है।

5.15. अनुच्छेद 25: अंतःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने की स्वतंत्रता

मूलपाठ

1. *लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा।*
2. *इस अनुच्छेद की कोई बात किसी ऐसी विद्यमान विधि के प्रवर्तन पर प्रभाव नहीं डालेगी या राज्य को कोई ऐसी विधि बनाने से निवारित नहीं करेगी जो-*
   (a) *धार्मिक आचरण से सम्बद्ध किसी आर्थिक, वित्तीय, राजनैतिक या अन्य लौकिक क्रियाकलाप का विनियमन या निर्बन्धन करती है;*
   (b) *सामाजिक कल्याण और सुधार के लिए या सार्वजनिक प्रकार की हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों और अनुभागों के लिए खोलने का उपबंध करती है।*

स्पष्टीकरण 1 – *कृपाण धारण करना और लेकर चलना सिख धर्म के अनुकरण का अंग समझा जाएगा।*

स्पष्टीकरण 2- *खंड(2) के उपखंड (b) में हिन्दुओं के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि उसके अंतर्गत सिख, जैन या बौद्ध धर्म के मानने वाले व्यक्तियों के प्रति निर्देश है और हिन्दुओं की धार्मिक संस्थाओं के प्रति निर्देश का अर्थ तदनुसार लगाया जायेगा।*

विवरण

अनुच्छेद 25 के अनुसार लोगों को,

- अंतःकरण की;
- धर्म को मानने (अपने धार्मिक विश्वासों को खुले तौर पर घोषित करने) की;
- धर्म के आचरण (धार्मिक पूजा का प्रदर्शन) की; और
- धर्म के प्रसार (अपनी धार्मिक मान्यताओं के प्रचार-प्रसार) की स्वतंत्रता है।

यह अनुच्छेद भारत में **पंथनिरपेक्षता** का आधार है।

- अंतःकरण की स्वतंत्रता से आशय किसी व्यक्ति के अपने धार्मिक विश्वास और आस्था को आकार देने की आतंरिक स्वतंत्रता से है। राज्य व्यक्ति की इस आंतरिक स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सार्वजनिक अभिव्यक्ति में यह आतंरिक स्वतंत्रता; धार्मिक पूजा, परंपरा एवं धार्मिक प्रदर्शन की स्वतंत्रता का रूप धारण कर लेती है। धर्म को मानने के अधिकार से आशय किसी व्यक्ति के उसके धार्मिक विश्वास और आस्था को खुले तौर पर व्यक्त करने के अधिकार से है। उदाहरण के लिए, सिक्खों के कृपाण रखने के अधिकार को उनके धर्म को अबाध रूप से मानने के अधिकार के अंतर्गत माना गया है।
- आचरण करने के अधिकार का अर्थ धार्मिक पूजा, परम्परा, समारोह आयोजित करने और अपनी आस्था और विचारों के प्रदर्शन की स्वतंत्रता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- 'प्रसार' से तात्पर्य, अपने धार्मिक विश्वास का अन्य लोगो के जीवन को उचित दिशा प्रदान करने के दृष्टिकोण से, धर्म के परिष्कृत रूप का प्रसार करना है जिसकी तार्किक परिणति किसी अन्य को अपने धर्म में धर्मान्तरित करने में होती है।
- अत: प्रसार का अर्थ अनुनय और बिना किसी धोखाधड़ी, ज़बरदस्ती अथवा धर्मान्तरण के लिए प्रलोभन के बिना विचारों का प्रसार। ध्यातव्य है कि, किसी व्यक्ति को अपने धर्म में धर्मान्तरित करने का अधिकार, उसके अपनी पसंद के मत में धर्मान्तरित होने के व्यक्तिगत अधिकार से भिन्न है।
- जहाँ स्वेच्छा से, अपने अंत:करण के अनुसार किसी भी मत या संप्रदाय में धर्मान्तरित होना, निश्चित रूप से संविधान प्रदत्त धार्मिक तथा अंत:करण की स्वतंत्रता के अधिकार के अनुरूप है, वहीं अपने द्वारा प्रसारित धर्म में किसी व्यक्ति को धर्मान्तरित करना राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में विवाद का केंद्र बन रहा है|
- इस प्रकार, अनुच्छेद 25 केवल धार्मिक विश्वास को ही नहीं, अपितु धार्मिक आचरण को भी समाहित करता है।
- हालाँकि भारतीय संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार निरपेक्ष अधिकार नही है। इसे सदाचार, स्वास्थ्य और लोक व्यवस्था बनाये रखने के लिए प्रतिबंधित किया जा सकता है। धार्मिक मुद्दे से जुड़े लौकिक विषयों के प्रबंध में भी राज्य का हस्तक्षेप हो सकता है, जैसे मंदिरों एवं मस्जिदों को सभी लोगों के लिए खोलने के लिए विधि का निर्माण किया जा सकता है। यह धार्मिक स्वतंत्रता के अंतर्गत सम्मिलित नही होगा। अत: भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ओर अन्त:करण और धर्म की स्वतंत्रता का पूर्ण समर्थन किया, तो दूसरी ओर सामाजिक सुधार और लोक व्यवस्था पर भी पर्याप्त बल दिया है।

महत्त्वपूर्ण वाद

रतिलाल पानाचंद गाँधी बनाम बॉम्बे राज्य, 1954

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने घोषित किया कि, "अन्त:करण की स्वतंत्रता (अपने धर्म में विश्वास की स्वतंत्रता) किसी एक धर्म के अनुयायियों के लिए नहीं है वरन् सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध होती है"।

स्टैनिस्लास बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1977

- उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने निर्णय दिया कि, अनुच्छेद 25 (1) धर्मांतरण का अधिकार नहीं देता है बल्कि, केवल अपने धर्म के सिद्धांतों के प्रसार का अधिकार देता है।
- इस प्रकार, भारत में केवल स्वैच्छिक धर्मांतरण ही मान्य है। कुछ राज्यों ने बलात् धर्मांतरण पर रोक लगाने के लिए धर्मांतरण विरोधी कानून भी पारित किये हैं।

जगदीश्वरानन्द वाद, 1984

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में यह कहा गया कि आनंदमार्गियों द्वारा कपाल लेकर नृत्य करते हुए जुलूस निकालना धर्म का मूलभूत तत्व नहीं है तथा इसे यथोचित रूप से प्रतिबंधित किया जा सकता है।
- इसी तरह, बकरीद के अवसर पर गोहत्या इस्लाम के लिए आवश्यक तत्व नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार, राज्य यह विनियमित कर सकता है कि आवश्यक धार्मिक प्रथायें क्या हैं और क्या नहीं तथा जो नहीं हैं उन्हें, असामाजिक होने की स्थिति में गैरकानूनी घोषित कर सकता है।

व्यवहार्यता

- यह अधिकार नागरिकों और गैर-नागरिकों दोनों को प्रदान किया गया है।
- धर्मनिरपेक्षता के अर्थ से सम्बंधित विविध व्याख्याओं और इससे सम्बंधित विरोधाभाषों को दूर करने के लिए उच्चतम न्यायालय के नौ जजों की बेंच ने **एस.आर.बोम्मई वाद (1994)** में अपने एक निर्णय में इससे सम्बंधित शंकाओं के निराकरण का प्रयास किया। न्यायालय के अनुसार पंथनिरपेक्षता से सम्बंधित निम्नलिखित तथ्य हैं, जो भारतीय सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं:

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- धर्मनिरपेक्षता का यह अर्थ नही है कि राज्य का धर्म के प्रति शत्रुभाव है। इसका अर्थ यह है कि राज्य को विभिन्न धर्मों के बीच तटस्थ रहना चाहिए।
- प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म मानने और उस पर आचरण करने की स्वतंत्रता है। यह तर्क मान्य नही है कि यदि कोई व्यक्ति निष्ठावान हिन्दू या निष्ठावान मुस्लिम है तो वह धर्मनिरपेक्ष नही रह जाता।
- यदि धर्म का उपयोग राजनीतिक प्रयोजनों के लिए किया जाता है और राजनीतिक दल अपने राजनीतिक प्रयोजनों के लिए उसका आश्रय लेते हैं तो इससे राज्य की तटस्थता का उल्लंघन होगा। धर्म के आधार पर निर्वाचकों से अपील करना धर्मनिरपेक्षीय लोकतंत्र के विरुद्ध है। राजनीति और धर्म को मिलाया नही जाना चाहिए। यदि कोई राज्य सरकार ऐसा करती है तो उसके विरुद्ध संविधान के अनुच्छेद 356 के अधीन कार्रवाई उचित होगी। अतः इस अर्थ में धर्मनिरपेक्षता संविधान की मूलभूत लक्षण होगी।

5.16. अनुच्छेद 26: धार्मिक कार्यों के प्रबंध की स्वतंत्रता

मूलपाठ

लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को

(a) धार्मिक और धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और पोषण का;

(b) अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का;

(c) जंगम और स्थावर संपत्ति के अर्जन और स्वामित्व का; और

(d) ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा।

विवरण

अनुच्छेद 26 के अनुसार प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय को अधिकार है:

- धार्मिक एवं धर्मार्थ प्रयोजनों के लिए संस्थाओं की स्थापना और निर्वाह करने का,
- अपने स्वयं के मामलों का प्रबंधन और
- इसके लिए संपत्ति का अधिग्रहण।

नोट: यद्यपि अब एक व्यक्ति के लिए संपत्ति का अधिकार मूल अधिकार नहीं है, तथापि धार्मिक संप्रदाय के सम्बन्ध में यह उनका मूल अधिकार है।

- राज्य ऐसी संपत्ति के प्रशासन को विनियमित करने के लिए कानून बना सकता है, लेकिन प्रशासित करने के अधिकार को समग्र रूप से समाप्त नहीं कर सकता है।

हालांकि, यह स्वतंत्रता सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिकता और स्वास्थ्य के अधीन है।

अनुच्छेद 25 के साथ संबंध

- अनुच्छेद 25, जहाँ किसी व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, वहीं अनुच्छेद 26 एक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग से सम्बंधित है।

अनुच्छेद 26 के अंतर्गत, प्रदत्त अधिकार नागरिकों एवं विदेशी व्यक्तियों दोनों को उपलब्ध हैं।

5.17. अनुच्छेद 27: किसी भी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता

मूल पाठ

किसी भी विशिष्ट धर्म की अभिवृद्धि के लिए करों के संदाय के बारे में स्वतंत्रता - किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जायेगा जिनके आगम किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विनियोजित किये जाते हैं।

विवरण

- अनुच्छेद 27, राज्य द्वारा करों के माध्यम से एकत्र सार्वजनिक धन को किसी भी धर्म की अभिवृद्धि के लिए खर्च करने पर प्रतिबंध लगाता है। यह पंथनिरपेक्षता की मूल अवधारणा के अनुरूप है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

राज्य किसी भी विशेष धर्म या धार्मिक संप्रदाय का संरक्षण नहीं कर सकता है। दूसरे शब्दों में, कर के माध्यम से एकत्र जनता के धन को राज्य द्वारा किसी विशेष धर्म के रखरखाव या प्रसार पर खर्च नहीं किया जाना चाहिए। यह प्रावधान, राज्य द्वारा अन्य धर्मों की तुलना में किसी एक धर्म के पक्ष में संरक्षण और समर्थन किये जाने पर प्रतिबंध लगाता है। इसका अर्थ यह है कि करों का उपयोग सभी धर्मों के समान अनुरक्षण या प्रसार के लिए किया जा सकता है, किसी धर्म विशेष के लिए नहीं।

- यह प्रावधान केवल कर वसूलने पर प्रतिबन्ध लगाता है; शुल्क वसूलने पर नहीं। इसका कारण यह है कि शुल्क का उद्देश्य धार्मिक संस्थाओं के प्रशासन का पंथनिरपेक्ष स्वरूप को बनाए रखना है, न कि धर्म का अनुरक्षण या प्रसार करना। इस प्रकार, कुछ विशेष सेवा या सुरक्षा उपाय प्रदान करने के लिए तीर्थयात्रियों से शुल्क वसूला जा सकता है तथा विनियमन व्यय को पूरा करने के लिए धार्मिक निधि पर शुल्क लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 26 के अंतर्गत, प्रदत्त अधिकार नागरिकों एवं विदेशी व्यक्तियों दोनों को उपलब्ध हैं।

5.18. अनुच्छेद 28: कुछ शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा या धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के बारे में स्वतंत्रता

मूल पाठ

1. *राज्य-निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।*

2. *खंड (1) की कोई बात ऐसी शिक्षा संस्था को लागू नहीं होगी जिसका प्रशासन राज्य करता है किन्तु जो किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन स्थापित हुई है जिसके अनुसार उस संस्था में धार्मिक शिक्षा देना आवश्यक है।*

3. *राज्य से मान्यता प्राप्त या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने, या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने, इसके लिए अपनी सहमति नहीं दे दी है।*

विवरण

अनुच्छेद 28 के अनुसार,

- राज्य निधि से पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा संस्था में कोई धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।
- हालांकि, यह प्रावधान किसी धर्मस्थ संस्था या ट्रस्ट द्वारा स्थापित एवं राज्य द्वारा प्रशासित संस्थानों पर लागू नहीं होगा।
- इसके अतिरिक्त, राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त या आर्थिक सहायता प्राप्त शिक्षण संस्था में किसी व्यक्ति को किसी धर्म विशेष की शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। हालाँकि, किसी व्यक्ति को उसकी सहमति पर धार्मिक निर्देश प्रदान किया जा सकता है। ध्यातव्य है कि व्यक्ति के अल्पवयस्क होने की स्थिति में उसके अभिभावक की सहमति आवश्यक है।

5.19. अनुच्छेद 29: अल्पसंख्यक वर्गों के हितों का संरक्षण

मूल पाठ

(1) भारत के राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग को, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।

(2) राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विवरण

- अनुच्छेद 29(1) किसी नागरिक को उसकी भाषा, लिपि एवं संस्कृति के संरक्षण का अधिकार प्रदान करता है। अनुच्छेद 29(2) राज्य द्वारा शैक्षणिक संस्थाओं में प्रवेश की अनुमति देने में किये जाने वाले विभेद का प्रतिषेध करता है।
- विशेष: अनुच्छेद 15 भाषा को विभेद के आधार के रूप में उल्लिखित नहीं करता है, जबकि अनुच्छेद 29 में भाषा को शामिल किया गया है।
- अनुच्छेद 29 भाषायी तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों, दोनों को संरक्षण प्रदान करता है। परंतु, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि इस अनुच्छेद का कार्यक्षेत्र सिर्फ अल्पसंख्यकों तक सीमित नहीं है। अपितु, यह जनसंख्या के "सभी वर्गों" को सम्मिलित करता है जिसमें बहुसंख्यक भी शामिल हैं।
- चम्पकम दोराईराजन के वाद (1951) में पिछड़े वर्गों को प्रदान किये गए आरक्षण को इस आधार पर चुनौती दी गयी थी कि यह अनुच्छेद 29(2) का उल्लंघन करता है। इसकी प्रतिक्रिया में संविधान का प्रथम संशोधन अधिनियम पारित किया गया, जिसके तहत आरक्षण के प्रावधान सुनिश्चित करने के लिए अनुच्छेद 15 (4) को प्रविष्ट किया गया।
- अनुच्छेद 29 और 30 दोनों केवल भारतीय नागरिकों पर लागू होते हैं।

5.20. अनुच्छेद 30: शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन करने का अल्पसंख्यक वर्गों का अधिकार

मूलपाठ

1. *धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक-वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।*

(क) *खंड (1) में निर्दिष्ट किसी अल्पसंख्यक-वर्ग द्वारा स्थापित और प्रशासित शिक्षा संस्था की संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के लिए उपबंध करने वाली विधि बनाते समय, राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि ऐसी संपत्ति के अर्जन के लिए ऐसी विधि द्वारा नियत या उसके अधीन अवधारित रकम इतनी हो कि उस खंड के अधीन प्रत्याभूत अधिकार निर्बन्धित या निराकृत न हो जाए।*

2. *शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबंध में है।*

विवरण

- अनुच्छेद 30 के अंतर्गत अल्पसंख्यकों (भाषायी या धार्मिक) को अपनी रूचि के शैक्षिक संस्थानों की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार प्रदान किया गया है। राज्य शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्टता को बढ़ावा देने वाले नियमों के निर्माण के अतिरिक्त, अल्पसंख्यकों के इस अधिकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता।
- किसी अल्पसंख्यक संस्था की संपत्ति का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिए जाने की स्थिति में यह उसके लिए पर्याप्त क्षतिपूर्ति का प्रावधान करता है।
- इस तरह के संस्थानों को सहायता उपलब्ध कराने में राज्य कोई भेदभाव नहीं करेगा।
- हालाँकि, संविधान में 'अल्पसंख्यक' शब्द का अर्थ व्याख्यायित नहीं किया गया है। वस्तुतः इसका आशय 'गैर-प्रभावी' समूह (non-dominant group) से है।
- केरल शिक्षा विधेयक तथा तत्पश्चात गुरु नानक देव विश्वविद्यालय के वाद में राष्ट्रपति को दी गयी अपनी सलाह में न्यायालय ने अल्पसंख्यकों की स्थिति के निर्धारण हेतु कुछ मानक तय किये हैं। केंद्रीय स्तर पर, इसका आशय उन समूहों से है जिनकी जनसंख्या, अखिल भारतीय स्तर पर 50 प्रतिशत से कम है। इसी प्रकार, राज्य स्तर पर भी राज्य की जनसंख्या के 50 प्रतिशत से कम जनसंख्या वाले समूह अल्पसंख्यक समूह माने जाते हैं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.20.1. अनुच्छेद 29 तथा 30 के मध्य सम्बन्ध

अनुच्छेद 29 जनसंख्या के सभी वर्गों के लिए उपलब्ध एक सामान्य संरक्षण प्रावधान है। जबकि, अनुच्छेद 30 के तहत केवल भाषाई या धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए संरक्षण उपलब्ध है।

अनुच्छेद 29 और 30 दोनों, केवल भारतीय नागरिकों के लिए उपलब्ध हैं।

महत्त्वपूर्ण वाद

सेंट स्टीफेंस बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय, 1992

- इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि अल्पसंख्यक संस्थानों को अपनी वार्षिक प्रवेश प्रक्रिया के दौरान कम से कम 50 प्रतिशत स्थान अन्य वर्गों के लिए उपलब्ध कराने चाहिए तथा अन्य वर्गों के प्रवेश के लिए सिर्फ योग्यता को ही आधार माना जाना चाहिए।

TMA पाई फाउंडेशन और अन्य बनाम कर्नाटक राज्य, 2002

इस ऐतिहासिक निर्णय की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं:

- सभी नागरिकों को शैक्षिक संस्थान स्थापित करने और उनके प्रशासन का अधिकार है।
- अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों के प्रशासन का अधिकार आत्यंतिक नहीं है।
- राज्य द्वारा गैर-सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों की शैक्षिक उत्कृष्टता सुनिश्चित करने के लिए नियम बनाया जा सकता है।
- वित्तपोषित अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों में प्रवेश हेतु अर्ह गैर-अल्पसंख्यक छात्रों का प्रतिशत राज्य अथवा विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित किया जाएगा।
- गैर सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों के शुल्क को विनियमित नहीं किया जाएगा, परंतु कोई भी संस्थान कैपिटेशन फीस नहीं वसूल सकता।

इस्लामिक एकेडमी ऑफ़ एजुकेशन बनाम कर्नाटक राज्य, 2003

- इस वाद में, उच्चतम न्यायालय ने TMA पाई वाद में दिए गए अपने निर्णय को और अधिक स्पष्ट किया। निर्णय के अनुसार, अनुच्छेद 30 भाषायी एवं धार्मिक अल्पसंख्यकों को शैक्षिक संस्थानों की स्थापना के लिए सम्पूर्ण अधिकार प्रदान करता है, परंतु सरकार उच्च मानकों को सुनिश्चित करने के लिए नियम बना सकती है तथा उन्हें नियंत्रित कर सकती है।

5.21. अनुच्छेद 31: संपत्ति का अनिवार्य अधिग्रहण (निरस्त)

- इस अनुच्छेद के तहत संपत्ति का अधिकार प्रदान किया गया था। परंतु, 1978 में 44वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा इसे हटा दिया गया तथा अब यह एक मूल अधिकार नहीं वरन् अनुच्छेद 300A के तहत एक साधारण विधिक अधिकार है।
- 19(1)(f) के द्वारा प्रदत्त इस मूल अधिकार को अनुच्छेद 31 द्वारा पूर्णता प्रदान की गयी थी। 1978 में 44वें संविधान संशोधन के माध्यम से इन दोनों प्रावधानों को निरसित कर संविधान में अनुच्छेद 300A प्रविष्ट किया गया। इसके अनुसार "किसी भी व्यक्ति को बिना उचित विधिक प्राधिकरण के उसकी निजी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।" इसका अर्थ है-
- इस प्रकार, संपत्ति का अधिकार अब मूल अधिकार नहीं है अपितु यह एक संवैधानिक एवं विधिक अधिकार है। इसके उल्लंघन के लिए कोई सीधे उच्च या उच्चतम न्यायालय नहीं जा सकता।
- इसके अतिरिक्त, यह व्यक्ति को सिर्फ एकपक्षीय कार्यपालिकीय कार्यवाही से सुरक्षा प्रदान करता है, एकपक्षीय विधायी प्रक्रियाओं से नहीं।
- अधिग्रहण की स्थिति में राज्य अनिवार्य रूप से क्षतिपूर्ति देने के लिए बाध्य नहीं है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अनुच्छेद 31A: संपदाओं आदि के अर्जन के लिये उपबंध करने वाली विधियों की व्यावृति

- अनुच्छेद 31A को मूलत: संपत्ति का अधिकार (अनुच्छेद 31), अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19(1)(f) के अपवाद के रूप में अधिनियमित किया गया था, संपत्ति के अधिकार के उत्सादन के पश्चात् भी इस अनुच्छेद को बनाये रखा गया है।
- यह कानूनों की 5 श्रेणियों को अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दिए जाने और अवैध ठहराए जाने से सुरक्षित करता है। ये श्रेणियाँ कृषि, भूमि सुधार, उद्योग और वाणिज्य आदि से संबंधित हैं।
- यह अनुच्छेद प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया था। यह राज्य को व्यक्तिगत संपत्तियों के अर्जन की अनुमति प्रदान करता है। संसद और राज्य विधानमंडल दोनों इस आशय के कानूनों का निर्माण कर सकते हैं। हालाँकि यह अनुच्छेद राज्य द्वारा निर्मित किसी कानून को तब तक उन्मुक्ति नहीं प्रदान करता, जब तक कि उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित न कर लिया जाये और राष्ट्रपति द्वारा इस आशय की सहमति प्राप्त न हो जाए।
- यदि राज्य किसी ऐसे व्यक्ति की भूमि का अधिग्रहण करे, जो उसकी अपनी जोत में है तथा यह भूमि कानूनी रूप से लागू अधिकतम सीमा के भीतर है तो यह अनुच्छेद उसे इसके बदले बाजार कीमतों पर मुआवजे का प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 31B: कुछ अधिनियमों और विनियमों का विधिमान्यीकरण

अनुच्छेद 31B, नवीं अनुसूची में सम्मिलित कानूनों को अनुच्छेद 14 और 19 के उल्लंघन के आधार पर अवैध ठहराए जाने से सुरक्षा प्रदान करता है।

नवीं अनुसूची से संबंधित विवाद

- भूमि सुधारों को बढ़ावा देने के लिए संविधान संशोधन के माध्यम से 1951 में संविधान में नवीं अनुसूची शामिल की गयी। इस अनुसूची का मूलभूत उद्देश्य जमींदारी प्रथा को समाप्त करना था। हालाँकि बाद में, इसका दुरूपयोग भी किया जाने लगा और वर्तमान में नवीं अनुसूची में भूमि सुधार नियमों के अलावा अन्य बहुत से विवादित नियम भी सम्मिलित कर लिए गए हैं यथा: तमिलनाडु का 69 प्रतिशत आरक्षण का नियम जो आरक्षण हेतु उच्चतम न्यायालय द्वारा तय 50 प्रतिशत की उच्चतम सीमा का उल्लंघन करता है।
- नवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी विषयों को पूर्ण सुरक्षा प्रदान करने वाला अनुच्छेद 31B, भूतलक्षी प्रभाव भी रखता है। अतः यदि किसी विधान को किसी न्यायालय द्वारा असंवैधानिक भी घोषित कर दिया गया हो तो इस अनुसूची में शामिल होने की स्थिति में इसे लागू होने की तिथि से संवैधानिक मान लिया जाएगा।
- हालाँकि **2007 के आई.आर.कोहिलो** वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि 24 अप्रैल 1973 (केशवानंद भारती वाद के निर्णय की तिथि) के बाद नवीं अनुसूची में शामिल किसी भी कानून को अनुच्छेद 14, 19, 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर चुनौती दी जा सकती है। उच्चतम न्यायालय ने यह भी कहा है कि यदि नवीं अनुसूची में सम्मिलित कोई कानून संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों को इस प्रकार संक्षिप्त या निषेधित करते हैं कि संविधान के मूल ढांचे को नुकसान पहुँचता है तो ऐसे कानून न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे में आयेंगे तथा शून्य माने जायेंगे।

Website - https://upscpdf.com

अनुच्छेद 31C: नीति निदेशक तत्वों को प्रभावी करने वाले कानूनों का संरक्षण

- अनुच्छेद 31C को 25वें संविधान संशोधन द्वारा 1971 में शामिल किया गया था। यह अनुच्छेद 39(b) और 39(c) में निहित नीति निदेशक तत्वों के क्रियान्वयन हेतु निर्मित किसी कानून को अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 के उल्लंघन के आधार पर अवैध ठहराए जाने से सुरक्षा प्रदान करता है।
- मूलतः अनुच्छेद 31C के दो भाग थे। प्रथम भाग अनुच्छेद 39(b) और 39(c) में उल्लिखित सिद्धांतों पर निर्मित राज्य की किसी नीति को अनुच्छेद 14, 19 तथा 31 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के उल्लंघन के आधार पर शून्य घोषित न किये जाने का प्रावधान करता है।
- जबकि, इसका दूसरा भाग अनुच्छेद 39(b) और 39(c) को प्रभावी बनाने के उद्देश्य से बनायी गयी विधियों को न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर करता है और यह प्रावधान करता है कि ऐसी विधि न्यायालय में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसने अनुच्छेद 39(b) और 39(c) को प्रभावी बनाया है या नहीं।
- हालाँकि केशवानंद भारती वाद में उच्चतम न्यायालय ने इसके दूसरे भाग को असंवैधानिक एवं शून्य घोषित कर दिया क्योंकि यह न्यायालय द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति को सीमित करता था, जो कि संविधान के मूल ढांचे का हिस्सा है।
- बाद में, 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से इस अनुच्छेद का कार्यक्षेत्र और बढ़ा कर सभी नीति निदेशक तत्वों को किसी भी मूल अधिकार के ऊपर प्राथमिकता प्रदान कर दी गयी। इसके अनुसार कोई भी ऐसा कानून जो किसी भी नीति निदेशक तत्व {न कि सिर्फ अनुच्छेद 39(b) और 39(c)} को प्रभावी बनाता है, उसे अनुच्छेद 14 तथा 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य घोषित नहीं किया जा सकता।
- हालाँकि, 1980 में मिनर्वा मिल वाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा उपरोक्त प्रावधान को रद्द कर दिया गया एवं मूल अधिकारों एवं नीति निदेशक तत्वों के **मध्य संतुलन पुनर्स्थापित** कर दिया गया।

5.22. अनुच्छेद 32 : संवैधानिक उपचारों का अधिकार

मूल पाठ

भाग III द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए उपचार -

- इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रवर्तित कराने के लिए समुचित कार्यवाहियों द्वारा उच्चतम न्यायालय में समावेदन करने का अधिकार प्रत्याभूत किया जाता है।
- इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से किसी को प्रवर्तित कराने के लिए उच्चतम न्यायालय को ऐसे निदेश या आदेश या रिट, जिनके अंतर्गत बंदी प्रत्यक्षीकरण, परमादेश, प्रतिषेध, अधिकार-पृच्छा और उत्प्रेषण रिट हैं, जो भी समुचित हो, निकालने की शक्ति होगी।
- उच्चतम न्यायालय को खंड (1) और खंड (2) द्वारा प्रदत्त शक्तियों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, संसद, उच्चतम न्यायालय द्वारा खंड (2) के अधीन प्रयोक्तव्य किन्हीं या सभी शक्तियों का किसी अन्य न्यायालय को अपनी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रयोग करने के लिए विधि द्वारा सशक्त कर सकेगी अर्थात् संसद को यह शक्ति प्राप्त है कि वह किसी अन्य न्यायलय को सभी प्रकार के निर्देश, आदेश और रिट जारी करने की शक्ति प्रदान करे।
- इस संविधान द्वारा अन्यथा उपबंधित के सिवाय, इस अनुच्छेद द्वारा प्रत्याभूत अधिकार निलंबित नहीं किया जाएगा।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विवरण

- अनुच्छेद 32 (1) मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए उच्चतम न्यायालय में समावेदन एवं उपचार का अधिकार प्रदान करता है। हालांकि, इसमें समुचित कार्यवाही के माध्यम से ही उच्चतम न्यायालय जाने का उल्लेख है। यह उच्चतम न्यायालय का कर्त्तव्य और व्यक्तियों का अधिकार है।
- उच्चतम न्यायलय समुचित कार्यवाही को निर्धारित कर सकता है। परंपरागत दृष्टिकोण यह है कि न्यायालय में समावेदन करने वाले व्यक्ति द्वारा वाद उचित प्रक्रिया द्वारा दायर (locus standi) किया जाना चाहिए। हालांकि, उच्चतम न्यायालय ने इस दृष्टिकोण को **जनहित याचिका, स्वतः संज्ञान (Suo Moto), पत्र व्यवहार** आदि प्रक्रियाओं के द्वारा उदार बनाया है।

अनुच्छेद 32 का महत्व

- सभी मूल अधिकारों की श्रृंखला में संवैधानिक उपचारों का अधिकार अत्यंत महत्वपूर्ण अधिकार है। साथ ही, मूल अधिकारों के प्रवर्तन के लिए एक प्रभावी तंत्र का विद्यमान होना अनिवार्य हैं एवं उपचारों के बिना अधिकारों की घोषणा मूल्यहीन है।
- **अनुच्छेद 32 की अनुपस्थिति में** अन्य मूल अधिकारों की उपादेयता संदिग्ध हो जाती है, क्योंकि यह मूल अधिकार ही नागरिकों को किसी अन्य मूल अधिकारों की उल्लंघन की दशा में न्यायालय जाने का अधिकार प्रदान करता है और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा किसी भी मूल अधिकारों के उल्लंघन करने वाली विधि को शून्य घोषित करता है अर्थात यह उच्चतम न्यायालय की न्यायिक पुनर्विलोकन शक्तियों को भी दर्शाता है। उच्चतम न्यायालय ने आई.आर.कोहेलो बनाम तमिलनाडु राज्य (2007) वाद में कहा है कि अनुच्छेद 32 संविधान के मूल ढाँचे का अभिन्न अंग है। इस अनुच्छेद ने ही मूल अधिकारों के संरक्षक के रूप में उच्चतम न्यायालय की स्थापना की है। मूल अधिकार के महत्व को देखते हुए ही शायद भीमराव अम्बेडकर ने इसे भारतीय संविधान की आत्मा कहकर संबोधित किया था।
- इस अनुच्छेद के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय को संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के लागू करने के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश, लेख या रिट जारी करने का अधिकार प्राप्त है। यह अनुच्छेद विशेष रूप से निम्न लिखित लेखों का उल्लेख करता है :

i. **बंदी प्रत्यक्षीकरण (Habeas Corpus):** बंदी प्रत्यक्षीकरण रिट उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा उस व्यक्ति के संबंध में जारी एक आदेश है, जिसे हिरासत में लिया गया है या निरुद्ध किया गया हो (इसका अर्थ उसके स्वतंत्रता के मूल अधिकार का उल्लंघन है)। इसके तहत न्यायलय, हिरासत में लिए गए व्यक्ति को सशरीर अदालत के सामने प्रस्तुत करने का आदेश जारी करता है। तत्पश्चात, अदालत उसकी हिरासत में लिए जाने के कारण की जाँच करती है और अगर उसकी हिरासत का कोई कानूनी औचित्य नहीं है, तो उसे मुक्त किया जा सकता है।

ii. **परमादेश (Mandamus):** मैंडमस का अर्थ है 'हम आदेश देते हैं'। उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय किसी व्यक्ति, कॉर्पोरेशन, निचली अदालत, सार्वजनिक प्राधिकरण या राज्य प्राधिकरण को, जब वह अपने विधिक कर्तव्यों का निर्वहन न कर रहा हो एवं उससे किसी व्यक्ति का मूल अधिकार प्रभावित हो रहा हो तो उसको अपना कर्तव्य निभाने के लिए आदेश देता है।

iii. **उत्प्रेषण (Certiorari):** शाब्दिक रूप से certiorari का अर्थ है: प्रमाणित होना। उत्प्रेषण रिट पहले से ही एक अवर न्यायालय, अधिकरण या अर्ध-न्यायिक प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को निरस्त करने के लिए उच्चतम न्यायालय या किसी उच्च न्यायालय द्वारा जारी की जा सकती हैं। उत्प्रेषण की रिट जारी करने के लिए कई परिस्थितियों का होना आवश्यक है। जब भी कोई विधिक निकाय जिसे जनता के अधिकार को प्रभावित करने वाले किसी प्रश्न को अवधारित करने का विधिक प्राधिकार है और जिसका कर्त्तव्य है कि वह न्यायिक रीति से कार्य करे, अपने विधिक प्राधिकार से बाहर जाकर कार्य करता है तो उस विनिश्चय को विखंडित करने के लिए जो उसकी अधिकारिता से बाहर है, उत्प्रेषण की रिट जारी की जाती है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

iv. **प्रतिषेध (Prohibition):** प्रतिषेध रिट का अर्थ रोकना या मना करना होता है और यह स्थगन आदेश (स्टे आर्डर) के रूप में लोकप्रिय है। यह रिट तब जारी की जाती है जब कोई निचली अदालत या निकाय अपने प्राधिकार के अतिक्रमण का प्रयास करता है। प्रतिषेध की रिट किसी निचली अदालत या अर्ध-न्यायिक निकाय को किसी विशेष वाद में, जहाँ इन निकायों को कार्रवाई का अधिकार न हो, कार्यवाही करने से रोकने के लिए उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा जारी की जाती है। इस रिट के जारी किये जाने के बाद निचली अदालत में होने वाली कार्यवाही रुक जाती है।

प्रतिषेध और उत्प्रेषण में अंतर :

- जहां प्रतिषेध रिट प्रक्रिया या कार्यवाही के निलंबन के दौरान उपलब्ध होती हैं, वही उत्प्रेषण रिट केवल आदेश या निर्णय की उद्घोषणा के बाद ही जारी की जा सकती है। दोनों ही रिट विधिक निकायों के विरुद्ध जारी की जा सकती हैं।

v. **अधिकार पृच्छा (Quo warranto)**

अधिकार पृच्छा का अर्थ है "किस वारंट द्वारा?" या "आपका प्राधिकार क्या है?" यह किसी व्यक्ति को किसी ऐसे सार्वजनिक पद को धारण करने से रोकने की दृष्टि से जारी किया गया रिट है जिसे धारण करने के वह योग्य नहीं है। रिट जारी करने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि सम्बद्ध व्यक्ति अदालत के समक्ष इस बात की व्याख्या करे कि वह किस प्राधिकार से उक्त पद धारण करता है।

अधिकार पृच्छा जारी करने के लिए शर्तें:

- कार्यालय सार्वजनिक होना चाहिए और यह किसी विधि या स्वयं संविधान द्वारा स्थापित होना आवश्यक है।
- इसके लिए एक मूल कार्यालय का होना आवश्यक है और इसके प्रकार्य केवल अधीनस्थ के रूप में किसी और के प्रसाद पर्यंत नहीं होने चाहिए।
- ऐसे किसी व्यक्ति की उस पद पर नियुक्ति में संविधान या विधि अथवा वैधानिक उपकरण का उल्लंघन न हुआ हो।

अनुच्छेद 32 (3)

संसद मूल अधिकारों को लागू करने के लिए किसी भी अन्य अदालत को अधिकृत कर सकती है।

शर्तें:

- ऐसा करने के उपरांत उच्चतम न्यायालय की शक्तियां नकारात्मक रूप से प्रभावित न हों।
- अन्य अदालत जिसे रिट जारी करने के लिए प्राधिकृत किया गया है; उसकी शक्तियां उसके अधिकार क्षेत्र की स्थानीय सीमाओं के भीतर सीमित हों।

अनुच्छेद 32 (4)

यह अनुच्छेद 359 के तहत निर्धारित विशेष तरीके से अनुच्छेद 32 के निलंबन का प्रावधान करता है।

अनुच्छेद 359- राष्ट्रीय आपातकाल की घोषणा के दौरान मौलिक अधिकारों का निलंबन

- अनुच्छेद 19, जो बाह्य आक्रमण या युद्ध के आधार पर स्वतः निलंबित हो जाता है; को छोड़कर अन्य अधिकारों का निलंबन स्वतः नहीं होता।
- अनुच्छेद 20 और 21 के तहत प्रदत्त अधिकार कभी निलंबित नहीं किये जाते। शेष अधिकारों को तभी निलंबित किया जा सकता है, जब राष्ट्रपति किसी अधिकार को निलंबित करने के लिए आदेश जारी करे। अपने आदेश में राष्ट्रपति को निलंबित किये जाने वाले अधिकार, उसकी निलंबन की अवधि तथा उसकी भौगोलिक सीमा का स्पष्ट विवरण देना होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.23. अनुच्छेद 33 - मूल अधिकारों के, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति

मूल पाठ

इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों का, सुरक्षा बलों आदि पर लागू होने में, उपांतरण करने की संसद की शक्ति- संसद, विधि द्वारा अवधारण कर सकेगी कि इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों में से कोई-

(क) सशस्त्र बलों के सदस्यों को, या

(ख) लोक व्यवस्था बनाए रखने का भारसाधन करने वाले बलों के सदस्यों को, या

(ग) आसूचना या प्रति आसूचना के प्रयोजनों के लिए राज्य द्वारा स्थापित किसी ब्यूरो या अन्य संगठन में नियोजित व्यक्तियों को, या

(घ) खंड (क) से खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी बल, ब्यूरो या संगठन के प्रयोजनों के लिए स्थापित दूरसंचार प्रणाली में या उसके संबंध में नियोजित व्यक्तियों को,

लागू होने में, किस विस्तार तक निर्बन्धित या निराकृत किया जाए जिससे उनके कर्तव्यों का उचित पालन और उनमें अनुशासन बना रहना सुनिश्चित रहे।

विवरण

- अनुच्छेद 33 संसद को यह अधिकार देता है कि वह सशस्त्र बलों, अर्द्धसैनिक बलों, पुलिस बलों इत्यादि के मूल अधिकारों को सीमित या कुछ स्तर तक युक्तियुक्त रूप से प्रतिबंधित कर सके। परंतु, इसका अर्थ यह नहीं कि यह अनुच्छेद स्वयं किसी अधिकार का प्रतिषेध करेगा।
- इस अनुच्छेद का कार्य संसदीय विधानों की प्रकृति पर निर्भर करेगा, भले ही वे इस अनुच्छेद को संदर्भित न करें। संसद द्वारा निर्मित इस प्रकार का विधान समानता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संघ निर्माण की स्वतंत्रता, व्यक्तिगत स्वतंत्रता आदि के रूप में किसी भी मूल अधिकार के संचालन को प्रतिबंधित कर सकता है। पुलिस बल (विशेषाधिकार के प्रतिबंध) अधिनियम, 1966 संसद द्वारा पारित एक ऐसा ही अधिनियम है। इसे उच्चतम न्यायालय में चुनौती भी दी गयी थी, परंतु इसे वैध घोषित किया गया।

5.24. अनुच्छेद 34 - क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बन्धन

मूल पाठ

जब किसी क्षेत्र में सेना विधि प्रवृत्त है तब इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों पर निर्बन्धन-

इस भाग के पूर्वगामी उपबंधों में किसी बात के होते हुए भी, संसद विधि द्वारा संघ या किसी राज्य की सेवा में किसी व्यक्ति की या किसी अन्य व्यक्ति की किसी ऐसे कार्य के संबध में क्षतिपूर्ति कर सकेगी जो उसने भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर किसी ऐसे क्षेत्र में, जहाँ सेना विधि प्रवृत्त थी, व्यवस्था के बनाए रखने या पुनःस्थापन के संबंध में किया है या ऐसे क्षेत्र में सेना विधि के अधीन पारित दंडादेश, दिए गए दंड, आदिष्ट समपहरण या किए गए अन्य कार्य को विधिमान्य कर सकेगी।

विवरण

- यह अनुच्छेद 'मार्शल लॉ' के लागू होने की स्थिति में मूल अधिकारों को सीमित या प्रतिबंधित करने से संबंधित है।
- मार्शल लॉ की परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है। किंतु, इसका सामान्य अर्थ ऐसे सैन्य कानूनों से है जो किसी अशांत क्षेत्र में सामान्य प्रशासन के संचालन हेतु साधारण कानून को निलंबित करके सेना को प्रशासन चलाने हेतु प्राधिकृत करने से हैं।
- मार्शल लॉ को लागू करने हेतु असाधारण परिस्थितियाँ जैसे युद्ध, अशांति, दंगे या कानून का उल्लंघन आदि होनी चाहिए।

Website - https://upscpdf.com

- इसके कार्यान्वयन के दौरान एवं कानून व्यवस्था बनाए रखने हेतु किए गए कृत्यों हेतु सरकारी कर्मचारी को सुरक्षा प्रदान की गई है।
- इसके क्रियान्वयन के दौरान मूल अधिकारो पर प्रतिबन्ध को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि यह मूल अधिकार का उल्लंघन करता है।
- अनुच्छेद 34 के तहत घोषित मार्शल लॉ एवं अनुच्छेद 352 के घोषित राष्ट्रीय आपातकाल में निम्न अंतर है:

मार्शल लॉ	राष्ट्रीय आपातकाल
यह केवल मूल अधिकारों को प्रभावित करता है।	इससे सिर्फ मूल अधिकार ही प्रभावित नहीं होते अपितु यह केंद्र-राज्य सम्बन्ध, राजस्व वितरण एवं केंद्र तथा राज्य की विधायी शक्तियों पर भी प्रभाव डालता है और सरकार का कार्यकाल भी बढ़ सकता है।
यह सरकार और आम कानूनी अदालतों को निलंबित कर देता है।	इसमें सरकार और आम कानूनी अदालतें कार्य करती हैं।
यह किसी भी कारण की वजह से कानून एवं व्यवस्था में आए व्यवधान को समाप्त करता है।	यह सिर्फ तीन आधारों पर लगाया जा सकता है - युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा सशस्त्र विद्रोह।
यह देश के कुछ विशिष्ट स्थानों पर ही लागू किया जाता है।	यह या तो पूरे देश में या इसके किसी भी हिस्से में लगाया जा सकता है।
इसके सन्दर्भ में संविधान में कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं किया गया है। यह एक उपलक्षित (अंतर्निहित) प्रावधान है।	इसके सन्दर्भ में संविधान में विशिष्ट एवं विस्तृत प्रावधान किये गए हैं। यह स्पष्ट है।

5.25. अनुच्छेद 35: भाग III के उपबंधों को प्रभावी करने के लिये विधान

मूल पाठ

इस भाग के उपबंधों को प्रभावी करने के लिए विधान- इस संविधान में किसी बात के होते हुए भी,-

(क) संसद को शक्ति होगी और किसी राज्य के विधान-मंडल को शक्ति नहीं होगी कि वह-

(i) जिन विषयों के लिए अनुच्छेद 16 के खंड (3), अनुच्छेद 32 के खंड (3), अनुच्छेद 33 और अनुच्छेद 34 के अधीन संसद विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी उनमें से किसी के लिए, और

(ii) ऐसे कार्यों के लिए, जो इस भाग के अधीन अपराध घोषित किए गए हैं, दंड विहित करने के लिए, विधि बनाए और संसद इस संविधान के प्रारंभ के पश्चात् यथाशक्य शीघ्र ऐसे कार्यों के लिए, जो उपखंड (iii) में निर्दिष्ट हैं, दंड विहित करने के लिए विधि बनाएगी;

(ख) खंड (क) के उपखंड (i) में निर्दिष्ट विषयों में से किसी से संबंधित या उस खंड के उपखंड (ii) में निर्दिष्ट किसी कार्य के लिए दंड का उपबंध करने वाली कोई प्रवृत्त विधि, जो भारत के राज्यक्षेत्र में इस संविधान के प्रारंभ से ठीक पहले प्रवृत्त थी, उसके निबंधनों के और अनुच्छेद 372 के अधीन उसमें किए गए किन्हीं अनुकूलनों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए तब तक प्रवृत्त रहेगी जब तक उसका संसद द्वारा परिवर्तन या निरसन या संशोधन नहीं कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण -इस अनुच्छेद में, "प्रवृत्त विधि" पद का वही अर्थ है जो अनुच्छेद 372 में है।

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विवरण

- इसका उद्देश्य कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने एवं उनके उल्लंघन की दशा में दंडित करने हेतु पूरे देश में कानूनों के संमरूपता हेतु संसद को शक्तिसंपन्न करना है।
- इस प्रकार के विधि निर्माण की शक्ति मात्र संसद के पास है, राज्य विधानमंडल के पास नहीं।
- कुछ विशेष मूल अधिकारों को प्रभावी बनाने संबंधी संसद की शक्ति यथाः
  - **अनुच्छेद 16** - किसी राज्य, केंद्रशासित या स्थानीय प्राधिकरणों में रोजगार हेतु निवास संबंधी अनिवार्यता।
  - **अनुच्छेद 32** - मूल अधिकारों के क्रियान्वयन हेतु उच्चतम या उच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालयों को प्राधिकृत करना।
  - **अनुच्छेद 33** - विभिन्न सशस्त्र बलो, अर्धसैनिक बलों, खुफिया एजेंसियों के समुचित क्रियाकलाप एवं अनुशासन को बनाए रखने हेतु मूल अधिकारों पर प्रतिबंध हेतु।
  - **अनुच्छेद 34** - मार्शल लॉ के कार्यान्वयन के दौरान निष्पादित कृत्यों के क्षतिपूर्ति हेतु।
- मूल अधिकारों के उल्लंघन की दिशा में दंडित करने हेतु संसद की शक्ति यथा :
  - **अनुच्छेद 17** - अस्पृश्यता की समाप्ति एवं छुआछूत के आचरण को दंडित करने हेतु विधि निर्माण संबंधी शक्ति। उदाहरण के लिए, नागरिक अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 एवं अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) संशोधन अधिनियम, 2015 बनाया गया है।
  - **अनुच्छेद 23** - मानवीय दुर्व्यपार एवं बलात् श्रम को रोकने हेतु अधिनियम। उदाहरण के लिए, अनैतिक दुर्व्यापार (निवारण) अधिनियम,1956 एवं बंधुआ मजदूरी व्यवस्था (निरसन) अधिनियम, 1976।

अनुच्छेद 35 A एवं संबंधित विवाद

- संविधान के अनुच्छेद 370(1)(D) के तहत जारी राष्ट्रपति के आदेश द्वारा 1954 में अनुच्छेद 35A को संविधान के परिशिष्ट में शामिल किया गया था। संविधान का अनुच्छेद 35A राज्य के "स्थायी निवासियों" और उनके विशेष अधिकारों को परिभाषित करने के लिए जम्मू-कश्मीर विधानमंडल को शक्ति प्रदान करता है।
- इसके तहत राज्य के बाहर विवाह करने वाली महिलाओं को संपत्ति के अधिकारों से वंचित कर कर दिया जाता है। इन अधिकारों से उनके बच्चे भी वंचित रहेंगे। अनुच्छेद 35A बाहरी व्यक्ति को जम्मू और कश्मीर राज्य में संपत्ति खरीदने से प्रतिबंधित करता है।
- हाल ही में, उच्चतम न्यायालय में दायर अनुच्छेद 35A की संवैधानिकता पर निर्णय संबंधी याचिका पर 5 न्यायाधीशों की संविधान पीठ द्वारा सुनवाई की जाएगी।

विवाद:

- संविधान में इसे अनुच्छेद-368 के तहत निर्धारित संशोधन प्रक्रिया के माध्यम से शामिल नहीं किया गया था। इसे शामिल करने हेतु संसद के कानून बनाने के वैधानिक मार्ग का अनुसरण नहीं किया गया था। यह दलील है कि जहां तक सरकारी नौकरी और भूमि खरीद का संबंध है, गैर-निवासियों के खिलाफ यह भेदभावपूर्ण कदम है। इस प्रकार यह अनुच्छेद 14, 19 और 21 के तहत मूल अधिकारों का उल्लंघन है।
- पश्चिमी पाकिस्तान से आए कुछ शरणार्थियों (जो विभाजन के दौरान भारत में आये थे) ने जम्मू और कश्मीर के स्थायी निवासियों के विशेष अधिकारों और विशेषाधिकारों को संरक्षण प्रदान करने वाले संविधान के अनुच्छेद 35A को चुनौती देने वाली याचिका को उच्चतम न्यायालय में दाखिल किया है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.26. क्या मूल अधिकार आत्यंतिक हैं?

मूल अधिकार किसी व्यक्ति को आत्यंतिक शक्तियां नहीं प्रदान करते। ये युक्तियुक्त रूप से सीमित (restricted) अधिकार हैं। **गोपालन वाद (1950)** में उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट कहा था कि आत्यंतिक स्वतंत्रता जैसी कोई भी संकल्पना अस्तित्व नहीं रखती क्योंकि ऐसी स्थिति अराजकता की स्थिति बना सकती है। वहीं दूसरी ओर, यदि राज्य को आत्यंतिक अधिकार प्राप्त हो जाएँ तो तानाशाही का उदय होगा। मूल अधिकारों का उद्देश्य विधि के शासन की स्थापना है और इसीलिए व्यक्ति के अधिकारों एवं सामाजिक अपेक्षाओं के मध्य संतुलन का होना अत्यधिक आवश्यक है। यही कारण है कि संविधान संसद को यह शक्ति प्रदान करता है कि वह व्यक्ति के मूल अधिकारों पर युक्तियुक्त एवं तर्कसंगत प्रतिबन्ध लगा सके।

युक्तियुक्त प्रतिबंधों के प्रमुख आधार निम्नांकित हैं:

- अनुच्छेद 19(2) में वर्णित आधार
- महिलाओं और बच्चों सहित अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और समाज के अन्य कमजोर वर्गों की उन्नति
- आम जनता, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता और नैतिकता के हित में
- भारत की संप्रभुता और अखंडता
- राज्य की सुरक्षा
- विदेशी राज्यो के साथ मित्रतापूर्ण संबंध

मूल अधिकारों पर आपातकाल का प्रभाव

- अनुच्छेद 358 एवं 359 राष्ट्रीय आपातकाल में मूल अधिकार पर प्रभाव का वर्णन करते है। अनुच्छेद 358, अनुच्छेद 19 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के निलंबन से संबंधित है, जबकि अनुच्छेद 359 अन्य मूल अधिकारों के निलंबन (अनुच्छेद 20 और 21 द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों के अतिरिक्त) से संबंधित है।
- जब कभी संविधान के अनुच्छेद 352 के अंतर्गत युद्ध अथवा बाह्य आक्रमण के कारण (किंतु सशस्त्र विद्रोह के आधार पर नहीं) आपातकाल की उद्घोषणा की जाती है तो संविधान के अनुच्छेद 19 में उल्लेखित स्वतंत्रता संबधी अधिकार का क्रियान्वयन निलंबित रहता है। उपरोक्त आधार पर आपातकाल की उद्घोषणा के उपरांत राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 359 के अंतर्गत एक दूसरा आदेश जारी कर अन्य मूल अधिकारों के क्रियान्वयन को भी स्थगित कर सकता है।

5.27. मूल अधिकारों की आलोचना

- यद्यपि ये मूल अधिकारों कहे जाते हैं, परन्तु इन पर असंख्य प्रतिबंध हैं। इसके अतिरिक्त 'युक्तियुक्तता' में क्या शामिल है, यह न्यायालयों की बदलती व्याख्याओं पर निर्भर करता है।
- ये अधिकार केवल राजनीतिक अधिकार प्रदान करते हैं। हालांकि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक व्यर्थ है, जब तक कि सामाजिक और आर्थिक स्वतंत्रता न प्राप्त हो।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- ये अधिकार अपरिवर्तनीय नहीं हैं। संसद द्वारा इसमें कटौती की जा सकती है। इनमें से अधिकांश राष्ट्रीय आपातकाल के दौरान निलंबित हो जाते हैं।
- मूल अधिकारों के उल्लंघन के सन्दर्भ में, उपचार काफी महंगा, अधिक समय लेने वाला और व्यवहार में अधिकांश जनसंख्या की पहुँच से बाहर है।

5.28. मूल अधिकारों का महत्व

- उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद, मूल अधिकार हमारे देश की उदार लोकतांत्रिक ढांचे की आधारशिला का निर्माण करते हैं। स्वतंत्रता के बाद के अनुभव से पता चलता है कि न केवल इसने लोकतंत्र की जड़ों को मजबूत बनाने में मदद की है; अपितु न्यायालयों की उदार व्याख्या ने व्यक्तिगत अधिकारों के दायरे का अत्यंत विस्तार भी किया है। वर्तमान में ये कार्यकारी निरंकुशता और विधायी मनमानेपन के विरुद्ध एक महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान करते हैं।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

5. राज्य के नीति निदेशक तत्व

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP): एक परिचय 4

2. नीति-निदेशक सिद्धान्तों का ऐतिहासिक विकास 4

3. नीति-निदेशक सिद्धान्तों के प्रेरक तत्व 5

4. नीति निदेशक तत्वों की विशेषताएं 5

5. मूल अधिकारों एवं नीति-निदेशक तत्वों के मध्य परस्पर सम्बन्ध: प्रमुख वाद 6

6. नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण और विवरण 8

6.1. अनुच्छेद 36 : परिभाषा 9

6.2. अनुच्छेद 37 : इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना 9

6.3. अनुच्छेद 38 (समाजवादी) : राज्य, लोक कल्याण की अभिवृद्धि हेतु सामाजिक व्यवस्था बनाएगा 9

6.4. अनुच्छेद 39 (समाजवादी) : राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व 9

6.5. अनुच्छेद 39(a) (समाजवादी) : समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता 10

6.6. अनुच्छेद 40 (गांधीवादी): ग्राम पंचायतों का संगठन 11

6.7. अनुच्छेद 41 (समाजवादी) : कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता प्राप्त करने का अधिकार 11

6.8. अनुच्छेद 42 (समाजवादी) : काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध 12

6.9. अनुच्छेद 43 (समाजवादी और गांधीवादी) : कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि 12

6.10. अनुच्छेद 43(a) (समाजवादी) : उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना 12

6.11. अनुच्छेद 43(b) (समाजवादी एवं गांधीवादी): सहकारी समितियों का उन्नयन 13

6.12. अनुच्छेद 44 (उदार बौद्धिक) : नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता: 13

6.13. अनुच्छेद 45 (उदार बौद्धिक): प्रारम्भिक शैशवावस्था की देखरेख तथा छह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए शिक्षा का प्रावधान 14

6.14. अनुच्छेद 46 (समाजवादी और उदार बौद्धिक):अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि 14

6.15. अनुच्छेद 47 (उदार बौद्धिक और गांधीवादी): पोषहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य 14

6.16. अनुच्छेद 48 (उदार बौद्धिक एवं गांधीवादी): कृषि और पशुपालन का संगठन 15

6.17. अनुच्छेद 48(a) (उदार बौद्धिक): पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा 15

6.18. अनुच्छेद 49 (उदार बौद्धिक): राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण 15

6.19. अनुच्छेद 50 (उदार बौद्धिक): कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण 16

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6.20. अनुच्छेद 51 (उदार बौद्धिक): अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि ____ 16

7. संविधान के अन्य भागों में वर्णित निदेशक तत्व ____ 16

8. निदेशक तत्व एवं मूल अधिकारों में अंतर ____ 17

9. संविधान निर्माण के पश्चात् सम्मिलित किये गए नीति निदेशक तत्व ____ 18

9.1. निदेशक सिद्धांतों को गैर-न्यायोचित एवं कानूनी तौर पर गैर-प्रवर्तनीय बनाया जाने के प्रमुख कारण ____ 18

10. नीति-निदेशक तत्वों की आलोचनायें ____ 19

11. निदेशक तत्वों की उपयोगिता ____ 19

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

"नीति निदेशक तत्व भारतीय संविधान की अनोखी विशेषता हैं, इनमें एक कल्याणकारी राज्य का लक्ष्य निहित है।"

-डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

"नीति निदेशक तत्व राष्ट्रीय चेतना के आधारभूत स्तर का निर्माण करते हैं।"

-एम. वी. पायली

"नीति निदेशक तत्व संविधान सभा के उद्देश्यों और आकांक्षाओं का घोषणा पत्र है।"

-के. सी. व्हेयर

1. राज्य के नीति निदेशक तत्व (DPSP): एक परिचय

- संविधान के भाग IV (अनुच्छेद 36-51) में राज्य के नीति निदेशक तत्वों को प्रतिष्ठापित किया गया है। ये निदेशक तत्व देश में सामाजिक एवं आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना की एक व्यापक योजना का प्रतिनिधित्व करते हैं। यद्यपि निदेशक तत्वों की प्रकृति **गैर-न्यायोचित** है, तथापि ये देश की शासन व्यवस्था के मौलिक सिद्धांत है। ये सिद्धांत देश के प्रशासकों के लिए एक आचार संहिता है। निदेशक तत्व, राज्य की नीति-निर्माण में सहायता हेतु संघीय एवं राज्य, दोनों सरकारों के लिए दिशानिर्देशक एवं मार्गदर्शक सिद्धांत हैं। यह सरकार का उत्तरदायित्व है कि वह कानून बनाते समय इन सिद्धांतों को अपनाएं।
- राज्य के नीति निदेशक तत्व भारत में कल्याणकारी राज्य की स्थापना का सर्वप्रमुख आधार है। एक **कल्याणकारी राज्य** की स्थापना का उद्देश्य रखने वाली नीतियों द्वारा सामाजिक-आर्थिक आधारों को मजबूत किये बिना राजनीतिक लोकतंत्र की प्राप्ति असंभव है।
- कल्याणकारी राज्य, शासन की वह संकल्पना है जिसमें राज्य नागरिकों के, विशेषत: कमजोर, वंचित एवं अतिसंवेदनशील वर्गों के कल्याण का उत्तरदायित्व प्राथमिक रूप से ग्रहण करता है।
- राज्य के द्वारा सामाजिक-आर्थिक असमानताओं को कम करने तथा सतत एवं समावेशी विकास सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता है। सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक कल्याण सुनिश्चित किये जाने के पश्चात् ही व्यक्तिगत अधिकारों का अर्थपूर्ण ढंग से उपभोग किया जा सकता है। संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों की प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है, ये उन आदर्शों की ओर बढ़ने के लिए मार्ग-प्रशस्त करते हैं।
- अनेक महत्वपूर्ण अधिकारों जैसे: आजीविका का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा आदि को मूल अधिकारों के रूप में सम्मिलित नहीं किया गया है। इन अधिकारों को निदेशक तत्वों के रूप में स्थान दिया गया है जिससे समतापूर्ण समाज की स्थापना की जा सके।

2. नीति-निदेशक सिद्धान्तों का ऐतिहासिक विकास

- 1944 में सर्वदलीय सम्मलेन द्वारा गठित **सप्रू समिति** ने 1945 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। संविधान सभा ने भारतीय संविधान में मूल अधिकारों एवं अन्य अधिकारों की व्यवस्था करने हेतु इस समिति द्वारा की गयी अनुशंसाओं को स्वीकार किया।
- इस समिति ने **न्यायोचित** एवं **गैर-न्यायोचित** अधिकारों के दो वर्गों का सुझाव दिया। भारतीय संविधान में मूल अधिकार एवं अन्य अधिकार, न्यायोचित अधिकार के रूप में सम्मिलित किये गए हैं। जबकि संविधान के भाग IV में राज्य के नीति-निदेशक तत्वों के रूप में गैर-न्यायोचित अधिकारों का उल्लेख किया गया है।
- ये निदेशक तत्व मुख्य रूप से सामाजिक-आर्थिक विकास के लिए उचित नीति-निर्माण हेतु सरकार के लिए **'अनुदेश प्रपत्र'** की प्रकृति के होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3. नीति-निदेशक सिद्धान्तों के प्रेरक तत्व

भारतीय संविधान में वर्णित नीति-निदेशक तत्व, विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित हैं, जिनमें :

- निदेशक तत्वों की संकल्पना (Idea) आयरलैंड के संविधान से ग्रहण की गई थी।
- भारत शासन अधिनियम, 1935 में **'अनुदेशों का दस्तावेज़'** (Instrument of Instructions) सम्मिलित था। निदेशक तत्व, भारत शासन अधिनियम, 1935 में उल्लेखित उन्हीं अनुदेशों के समान हैं।
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को प्रभावित करने वाले पश्चिमी उदार लोकतांत्रिक विचारों को भारतीय परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित कर सम्मिलित किया गया। इन्हें कल्याणकारी राज्य की लोक नीतियों के लिए नैतिक दिशा-निर्देशों के रूप में भारतीय संविधान में अंगीकृत किया गया है।
- समकालीन समाजवादी विचारों ने भी संविधान निर्माताओं को प्रभावित किया। उदाहरणार्थ, कुछ निदेशक तत्व श्रमिक कल्याण से संबंधित हैं।
- संविधान सभा, महात्मा गांधी के दार्शनिक विचारों से भी प्रभावित थी। उदाहरणार्थ: पंचायत, ग्रामोद्योग को प्रोत्साहन प्रदान करने आदि से संबंधित निदेशक सिद्धांतों का भाग IV में समावेश किया गया।

4. नीति निदेशक तत्वों की विशेषताएं

- **नीति निर्माण के लिये निर्देश:** ये संघीय एवं राज्य स्तरीय सरकारों के लिए सार्वजनिक नीति-निर्माण में इन सिद्धांतों को यथासंभव लागू करने हेतु निर्देश हैं।
- **राजनीतिक बहुमत को नियंत्रित एवं संतुलित करना:** डॉ. भीमराव अम्बेडकर के अनुसार, निदेशक तत्व सत्ता में आने वाले किसी भी दल के लिए सीमा निर्धारित करते हैं। यह राजनीतिक बहुमत द्वारा भविष्य के भारतीय राज्य से सम्बंधित संविधान सभा की परिकल्पना एवं मूल्यों को खंडित करने हेतु किये गए प्रयासो के विरूद्ध सुरक्षा प्रदान करते है।
- **गैर-प्रवर्तनीय (Non-enforceable) प्रकृति:** अनुच्छेद 37 के अनुसार नीति निदेशक तत्व, न्यायालय में स्वत: प्रवर्तनीय नहीं होते हैं। ये तब ही लागू होते हैं, यदि कोई कानून कुछ निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी बनाने के लिये निर्मित किया जाता है जैसे:- आजीविका के अधिकार हेतु मनरेगा का लाया जाना। डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, इन्हें मात्र **नैतिक आदेश** नहीं माना जा सकता है। यद्यपि इन्हें क्रियान्वित करवाने हेतु कानूनी शक्ति विद्यमान नहीं है, परन्तु इनकी पृष्ठभूमि में राजनीतिक शक्ति अर्थात् जनमत निहित है । अत: कोई भी सरकार इन निर्देशों की अवेलहना नहीं कर सकती हैं।
- **प्रस्तावना का विस्तार:** नीति निदेशक तत्व, प्रस्तावना में निहित मूल्यों का विस्तार है। उदाहरणार्थ:
    - यह प्रस्तावना में निहित "समाजवादी लोकतंत्र" की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। 42वें संशोधन अधिनियम के द्वारा जोड़े गए "समाजवादी" शब्द को अनुच्छेद 38 एवं 39 द्वारा अर्थपूर्ण बनाने का प्रयास किया गया है।
    - अनुच्छेद 40 में वर्णित स्थानीय स्वशासन के सन्दर्भ में 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा "लोकतंत्र" शब्द को अधिक सार्थक एवं समावेशी रूप देने का प्रयास किया गया है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5. मूल अधिकारों एवं नीति-निदेशक तत्वों के मध्य परस्पर सम्बन्ध: प्रमुख वाद

मूल अधिकारों का उद्देश्य व्यक्तियों को उनके विकास हेतु आवश्यक एवं अनुचित नियंत्रण से मुक्त उचित अवसर प्रदान करना है। एक कल्याणकारी समाज के लिए नीति-निदेशक तत्व आवश्यक हैं।

- मूल अधिकारों एवं नीति-निदेशक तत्वों के मध्य टकराव, संविधान के आरम्भ से ही स्पष्टत: विद्यमान है। प्रारंभ में, मूल अधिकार एवं नीति-निदेशक तत्व की तुलनात्मक स्थिति स्पष्ट नहीं थी। यह माना जाता था कि वे प्रकृति में विरोधाभासी हैं। सर्वप्रथम 1952 में चम्पाकम दोराइराजन वाद में इस विषय पर चर्चा हुई। संविधान के प्रारंभ के बाद से, न्यायिक घोषणाओं एवं संवैधानिक संशोधनों की एक श्रृंखला ने दोनों के मध्य संतुलन को परिवर्तित किया।
- **मद्रास राज्य बनाम चम्पाकम दोराइराजन वाद (1951)** में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि राज्य के निदेशक सिद्धांतों को जिन्हें स्पष्टत: अनुच्छेद 37 के अनुसार न्यायोचित नहीं बनाया गया है। साथ ही उच्चतम न्यायालय ने आदेश दिया कि संविधान में मूल अधिकार का अध्याय **अनुल्लंघनीय** (Sacrosanct) है तथा इसे कार्यपालिका अथवा विधायिका के किसी कृत्य या आदेश द्वारा भाग III में निर्धारित किसी सीमाओं के अतिरिक्त सीमित नहीं किया जा सकता। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों को इसके अनुरूप चलना होगा। निदेशक तत्वों को मूल अधिकार के अध्याय के अनुरूप और उनके सहायक के रूप में कार्य करना होगा। इसका तात्पर्य यह है कि मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों के मध्य किसी भी तरह के टकराव की स्थिति में मूल अधिकार **प्रभावी** होंगे।
- **गोलकनाथ वाद (1967)** में उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकारों को निदेशक तत्वों की तुलना में वरीयता देते हुए कहा कि संसद को मूल अधिकारों को संशोधित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है। निदेशक तत्वों को लागू करने के लिए मूल अधिकारों में संशोधन नहीं किया जा सकता। गोलकनाथ वाद में भावी प्रत्यादेश (Prospective Overruling) के सिद्धांत को लागू किया गया, जिसके तहत उच्चतम न्यायालय अपने स्वयं के निर्णय में सुधार कर सकती है।
- गोलकनाथ वाद में दिए गए निर्णय को निष्प्रभावी बनाने के लिए 1971 में **25वां संशोधन अधिनियम** पारित किया गया था। इसके द्वारा मूल अधिकारों के अंतर्गत अनुच्छेद 31(c) जोड़ा गया जिसके अनुसार अनुच्छेद 39(b) एवं 39(c) को लागू कराने वाली विधि को इस आधार पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता है कि वह अनुच्छेद 14 और 19 में वर्णित मूल अधिकारों का उल्लंघन करती है।
- **केशवानंद भारती वाद (1973)** में उच्चतम न्यायालय ने **'मूल ढांचे'** का सिद्धांत प्रतिपादित किया, जिसके तहत संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है। किन्तु, संसद द्वारा मूल अधिकारों में ऐसा कोई संशोधन विधिमान्य नहीं होगा जो संविधान के 'मूल ढांचे' को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।
- **42वां संशोधन अधिनियम,1976** द्वारा नीति निदेशक तत्वों की सर्वोच्चता एवं प्राथमिकता को मूल अधिकारों पर प्रभावी बनाया गया। इसके तहत अनुच्छेद 31(c) का और अधिक विस्तार करते हुए इसके दायरे में अनुच्छेद 39(b) एवं 39(c) के स्थान पर भाग IV में वर्णित सभी निदेशक तत्वों को सम्मलित कर लिया गया।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **मिनर्वा मिल्स वाद (1980)** में उच्चतम न्यायालय के द्वारा संविधान में संशोधन करने की संसद की शक्तियां मूल ढांचे के सिद्धांत द्वारा सीमित कर दी गयी हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह व्यवस्था भी दी कि संविधान का अस्तित्व, भाग III एवं भाग IV के संतुलन में निहित है। इन्हें एक दूसरे पर थोपने से संविधान की मूल भावना बाधित होती है।
- उन्नीकृष्णन बनाम आंध्रप्रदेश वाद (1993) में भी उच्चतम न्यायालय द्वारा यह स्पष्ट किया गया की भाग III और भाग IV परस्पर पूरक है। साथ ही, मूल अधिकार भाग IV में निहित नीति निदेशक तत्वों के लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधन है।
- इस प्रकार, मूल अधिकारों एवं नीति निदेशक तत्वों की एक-दूसरे के सन्दर्भ में अंतिम स्थिति निम्नलिखित है:
  - मूल अधिकार और निदेशक तत्व एक-दूसरे के अनुपूरक हैं और एक-दूसरे को पूर्णता प्रदान करते हैं।
  - दोनों एक साथ मिलकर भारत में समावेशी लोकतंत्र हेतु आधार प्रदान करते हैं।
  - तुलनात्मक रूप से मूल अधिकारों की कानूनी स्थिति अधिक बेहतर है, परन्तु यह नीति निदेशक तत्वों के महत्व को कमजोर नहीं करता है।
  - निश्चित समयावधि के दौरान 'उदार व्याख्या' के सिद्धांत के प्रयोग से उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुच्छेद 21 के तहत् कई निदेशक तत्वों को सम्मिलित किया गया।
  - निदेशक तत्वों को प्रभावी बनाने वाले किसी विशेष कानून की वैधता की जांच करने के लिए, जो मूल अधिकारों में कटौती करता है, उच्चतम न्यायालय द्वारा निम्नलिखित सिद्धांत लागू किये जाते हैं:
    - मूल ढांचे का सिद्धांत, और
    - अधिकारों का स्वर्णिम त्रिभुज (The Golden Triangle of rights) अनुच्छेद 14, 19 एवं 21।
  - उच्चतम न्यायालय ने **सामंजस्यपूर्ण संरचना (Harmonious Construction)** के सिद्धांत को स्पष्ट किया है। इस सिद्धांत का गूढ़ अर्थ है कि भारत के संविधान में उल्लिखित मूल अधिकार एवं नीति निदेशक तत्व वास्तव में एक ही व्यवस्था के अंग हैं तथा इन दोनों का लक्ष्य भी एक ही है: व्यक्तित्व का विकास तथा लोक कल्याणकारी राज्य की स्थापना।
  - साथ ही मिनर्वा मिल्स प्रकरण में उच्चतम न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश चंद्र चूड़ ने कहा कि भारतीय संविधान, अपने भाग III और भाग IV के संतुलन पर दृढ़ता पूर्व आधारित है। इसमें किसी एक को प्रधानता देने का अर्थ संविधान की समरसता में विघ्न डालना है। मूल अधिकारों और राज्य की नीति के निदेशक तत्वों के मध्य जो समरसता एवं संतुलन है, वह संविधान की मूल ढांचें का एक परमावश्यक तत्व है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6. नीति निदेशक तत्वों का वर्गीकरण और विवरण

हालांकि संविधान में इनका वर्गीकरण नहीं किया गया है। किन्तु, इनमें निहित विषय-वस्तु के आधार पर, पारंपरिक रूप से निदेशक तत्वों को निम्नलिखित श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

निहित विषय-वस्तु एवं आधार	कुछ उदाहरण
समाजवादी ये सिद्धांत समाजवादी विचारधारा को प्रतिबिंबित करते हैं। ये लोकतांत्रिक समाजवादी राज्य के ढांचे को स्थापित करते हैं। इनका उद्देश्य सामाजिक एवं आर्थिक न्याय प्रदान करने के साथ ही कल्याणकारी राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त करना है।	• राज्य आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा [अनुच्छेद-38(2)] • काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता (अनुच्छेद-42) • कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी इत्यादि (अनुच्छेद-43)
गांधीवादी ये सिद्धांत गांधीवादी विचारधारा पर आधारित हैं। ये राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान गांधी द्वारा प्रदत्त संकल्पनाओं एवं सिद्धाँतों का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांधीजी के सपनों को साकार करने के लिए, उनके कुछ विचारों को नीति निदेशक तत्वों के रूप में सम्मिलित किया गया है।	• ग्राम पंचायतों का संगठन (अनुच्छेद-40) • मादक पेयों एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकर औषधियों के उपभोग का प्रतिषेध (अनुच्छेद-47) • गायों और बछड़ों तथा अन्य दुधारू एवं वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण एवं उनके वध का प्रतिषेध (अनुच्छेद-48)
उदार-बौद्धिक इस श्रेणी में उन सिद्धांतों को सम्मिलित किया गया है जो उदारवाद की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं।	• समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता [अनुच्छेद-39(a)] • कुछ दशाओं में काम, शिक्षा एवं लोक सहायता पाने का अधिकार (अनुच्छेद-41) • उद्योगों के प्रबंध में कामगारों का भाग लेना [अनुच्छेद-43(a)] • बालकों को नि:शुल्क शिक्षा पाने का अधिकार (अनुच्छेद-45) • राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण (अनुच्छेद-49) • कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण (अनुच्छेद-50)

नोट : उपरोक्त तालिका में संबंधित श्रेणियों के समक्ष उल्लिखित नीति निदेशक तत्व केवल कुछ उदाहरण हैं, इनके अतिरिक्त संबंधित श्रेणियों में अन्य अनुच्छेद भी सम्मिलित किये जा सकते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6.1. अनुच्छेद 36 : परिभाषा

इस भाग में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, "राज्य" का वही अर्थ है जो भाग III में है।

6.2. अनुच्छेद 37 : इस भाग में अंतर्विष्ट तत्वों का लागू होना

इस भाग में अंतर्विष्ट उपबंध किसी न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे, किन्तु फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना, राज्य का कर्तव्य होगा।

विवरण

अनुच्छेद 37 के अनुसार निदेशक तत्व, गैर-न्यायोचित प्रकृति के होंगे। हालांकि, लोक नीति की प्रकृति और दिशा के संबंध में राज्य को निर्देश देने में निदेशक तत्व अत्यधिक महत्वपूर्ण है। लेकिन, निदेशक तत्वों के उल्लंघन को किसी भी न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती है।

6.3. अनुच्छेद 38 (समाजवादी) : राज्य, लोक कल्याण की अभिवृद्धि हेतु सामाजिक व्यवस्था बनाएगा

(1) राज्य, ऐसी सामाजिक व्यवस्था की, जिसमें सामाजिक,आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की सभी संस्थाओं को अनुप्रमाणित करे, भरसक प्रभावी रूप में स्थापना और संरक्षण करके लोक कल्याण की अभिवृद्धि का प्रयास करेगा।

(2) राज्य, विशिष्टतया, आय की असमानताओं को कम करने का प्रयास करेगा, तथा न केवल व्यष्टियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में रहने वाले या विभिन्न व्यवसायों में लगे हुए लोगों के समूहों के बीच भी प्रतिष्ठा, सुविधाओं और अवसरों की असमानता को समाप्त करने का प्रयास करेगा।

विवरण

अनुच्छेद 38, समाजवादी विचारधारा से सम्बंधित सिद्धांत है। यह देश में लोगों के साथ-साथ विभिन्न क्षेत्रों के मध्य विद्यमान असमानता को कम करने का प्रयास करता है। यह राज्य के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक न्याय जैसे लक्ष्यों को भी दर्शाता है। यह अनुच्छेद जाति व्यवस्था के कारण भारतीय समाज में पारम्परिक रूप से विद्यमान प्रस्थिति के अंतर को समाप्त करने का प्रयास करता है। साथ ही, यह राज्य को अनिवार्य रूप से शिक्षा के अवसर में समानता के साथ ही रोजगार सुनिश्चत करने हेतु प्रयास करने के लिए भी दिशा निर्देशित करता है।

6.4. अनुच्छेद 39 (समाजवादी) : राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति तत्व

राज्य, अपनी नीति का, विशिष्टतया , इस प्रकार संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से:

(a) पुरुष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो;

(b) समुदाय के भौतिक संसाधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार बंटा हो जिससे सामूहिक हित का सर्वोत्तम रूप से साधन हो;

(c) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले जिससे धन और उत्पादन-साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकारी संकेन्द्रण न हो;

(d) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो;

(e) पुरुष और स्त्री कर्मकारों के स्वास्थ्य और शक्ति का तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो;

(f) बालकों को स्वतंत्र और गरिमामय वातावरण में स्वस्थ विकास के अवसर और सुविधाएं दी जायें और बालकों एवं अल्पवय व्यक्तियों की शोषण से तथा नैतिक एवं आर्थिक परित्याग से रक्षा की जाए।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विवरण एवं क्रियान्वयन

अनुच्छेद 39 भी समाजवादी विचारधारा से सम्बंधित सिद्धांत है। यह राज्य को उसकी नीतियों के निर्माण हेतु विशिष्ट दिशा-निर्देश प्रदान करता है। इसके द्वारा अनुच्छेद 31C को व्यापक अर्थ प्रदान किया गया है। इसके अंतर्गत निम्न प्रावधान किये गए हैं:

- राज्य द्वारा पुरुषों और स्त्रियों के बीच, जब वे समान कार्य कर रहे हैं, उनके वेतन के विषय में समानता सुनिश्चित करना आवश्यक है।
- बच्चों को सभी प्रकार के शोषण से मुक्त रखते हुए उनके सर्वांगीण विकास हेतु उपबंध एवं प्रबंध करने हेतु राज्य को निर्देशित किया गया है।
- संसाधनों का उपयोग लोक हित में होना चाहिए और अनावश्यक रूप से किसी निजी नागरिक के लाभ हेतु नहीं होना चाहिए।
- प्रथम संवैधानिक संशोधन, भूमि सुधारों को लागू करने के लिए था। इस हेतु बाद में चौथा, 17वां, 25वां, 42वां और 44वां संवैधानिक संशोधन अधिनियम पारित किये गए।
- महिला सशक्तिकरण एवं उनकी रोजगार सम्बन्धी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए भारत सरकार ने हाल ही में 'सपोर्ट टू ट्रेनिंग एंड एम्प्लॉयमेंट प्रोग्राम' (STEP) को प्रारंभ किया है।
- गरीब महिलाओं के सामाजिक-आर्थिक उत्थान एवं उन्हें 'सूक्ष्म वित्तीय सेवाएँ' (Micro Finance Services) प्रदान करने के लिए 'राष्ट्रीय महिला कोष' प्रारंभ किया गया है।
- कुछ लोगों तक ही धन का संकेंद्रण न हो एवं इसका लाभ समाज के सभी वर्गों तक पहुंचे इसके लिए सरकार ने कॉरपोरेट सोशल रिस्पॉसिविलिटी (CSR) को लागू किया हैं।

6.5. अनुच्छेद 39(a) (समाजवादी) : समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता

राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधिक तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो तथा वह, विशिष्ट्या, यह सुनिश्चित करने के लिए कि आर्थिक या किसी अन्य निर्योग्यता के कारण कोई नागरिक न्याय प्राप्त करने के अवसर से वंचित न रह जाए, उपयुक्त विधान या स्कीम द्वारा या किसी अन्य रीति से नि:शुल्क विधिक सहायता की व्यवस्था करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- अनुच्छेद 39(a) भी समाजवादी विचारधारा से सम्बंधित सिद्धांत है। यह अनुच्छेद राज्य को यह सुनिश्चित करने का निर्देश देता है कि देश की न्यायिक प्रणाली सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध हो। राज्य को इस हेतु 'नि:शुल्क विधिक सहायता' प्रदान करनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि केन्द्र सरकार द्वारा उपरोक्त उद्देश्य की प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 पारित किया गया।
- यह अनुच्छेद संविधान में 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया।

इस अनुच्छेद के तहत परिकल्पित नीति-निदेशक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अप्रैल, 2017 में सरकार ने तीन विधि सेवा संबंधी पहल किया है:

- **प्रो-बोनो लीगल सर्विसेज (Pro bono legal Service)** यह एक वेब आधारित प्लेटफार्म है जो वकीलों को स्वैच्छिक रूप से इस माध्यम के साथ जुड़कर वंचित वर्गों को नि:शुल्क विधिक सहायता प्रदान करने का उपबंध करता है।
- **टेली लॉ सर्विसेज (Tele law Services)** सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले गरीब और कमजोर लोगों को सरल एवं मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान कराने के लिए 'टेली लॉ सर्विसेज' प्रारम्भ की गई है। इस योजना में कामन सर्विस सेंटर (सीएससी) से वीडियो कान्फ्रेंसिंग के माध्यम से जरूरतमंदों को वकीलों द्वारा मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान की जाएगी।
- **न्यायमित्र** इसका उद्देश्य लंबित पड़े वादों का शीघ्रता से निपटान करना है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6.6. अनुच्छेद 40 (गांधीवादी): ग्राम पंचायतों का संगठन

राज्य, ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियां एवं प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हो।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- यह एक गांधीवादी निदेशक सिद्धांत है। यह राज्य को स्वशासन की संस्थाओं के रूप में स्थानीय निकायों की स्थापना करने का निर्देश देता है। साथ ही, राज्य को यह निर्देश भी देता है कि इन स्थानीय निकायों को स्वावलंबी बनाने के लिए पर्याप्त शक्तियां प्रदान की जानी चाहिए।
- उल्लेखनीय है कि भारत सरकार द्वारा 73वें एवं 74वें संशोधन अधिनियम पारित किये गए, जो सरकार के तृतीय स्तर के रूप में स्थानीय निकायों की स्थापना की व्यवस्था करते हैं।
- सरकार द्वारा स्वशासी संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण और प्रशासनिक व्यवस्था में इनकी पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित उपाय किये गये है :
- **राष्ट्रीय ग्राम स्वराज योजना** इसके माध्यम से ग्राम-सभाओं को सशक्त करके एवं स्थानीय निकायों को और अधिक शक्तियों का हस्तानांतरण करके इन्हे मजबूत करने का प्रयास किया गया है।
- **म्युनिसिपल बांड** इसके द्वारा शासन की इन इकाइयों को स्वायत रूप देने एवं वित्तीय रूप से स्वतंत्रता प्रदान करने में सहायता मिलेगी।

6.7. अनुच्छेद 41 (समाजवादी) : कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार

राज्य, अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने के, शिक्षा पाने के और बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और नि:शक्तता तथा अन्य अनर्ह (Undeserved) अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबंध करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- यह एक समाजवादी सिद्धांत है। राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्यता एवं उपलब्ध संसाधनों के अंतर्गत विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों को आरम्भ करेगा, विशेष रूप से उन लोगों के लिए जो स्वयं के लिए प्रबंध करने में असमर्थ होते हैं जैसे: वृद्ध एवं नि:शक्तजन आदि। राज्य द्वारा ऐसे व्यक्तियों के लिए राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम आरम्भ किया गया है। इसके तहत उन्हें मासिक पेंशन प्रदान की जा रही है।
- काम करने के अधिकार को मनरेगा के तहत एक विधिक अधिकार के रूप में स्थापित कर दिया गया है तथा यह आंशिक रूप से इस निदेशक सिद्धांत को कार्यान्वित करता है।
- इस अनुच्छेद में निदेशित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार ने अटल पेंशन योजना, वरिष्ठ पेंशन बीमा योजना आदि के माध्यम से वृद्धों की आय की सुरक्षा सुनिश्चित करने का प्रयास किया है।
- राष्ट्रीय वयोश्री योजना के माध्यम से वृद्ध व्यक्तियों से संबंधी आवश्यक सहायक उपकरणों को उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया है।
- इस अनुच्छेद में नि:शक्त एवं दिव्यांगजनों से संबंधी लक्ष्यों की प्राप्ति, उनके सशक्तिकरण, उनके लिए अनुकूल स्थानों के निर्माण एवं उनके आवागमन को आसान बनाने हेतु सुगम्य भारत कार्यक्रम प्रारंभ किया गया है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6.8. अनुच्छेद 42 (समाजवादी) : काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध

राज्य, काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपबंध करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- इसमें राज्य को निर्देश दिया गया हैं की वह काम की न्याय-संगत और मानवोचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए कार्य करेगा। साथ ही, प्रसूति सहायता की व्यवस्था करेगा।
- न्यूनतम मजदूरी अधिनियम (1948), बाल श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम (1986) आदि को श्रमिक वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए लागू किया गया हैं।
- सरकार द्वारा प्रसूति सहायता संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति हेतु हाल ही में मातृत्व लाभ (संशोधन) अधिनियम, 2017 लागू किया गया है। इसके अंतर्गत महिलाओं को सवेतन अवकाश, क्रेच सुविधा आदि अनेक लाभों से सम्बन्धी प्रावधानों को सम्मलित किया गया है।
- वहीं दूसरी ओर, प्रधानमंत्री सुरक्षित मातृत्व अभियान, जननी सुरक्षा योजना, किलकारी योजना आदि के माध्यम से संस्थागत प्रसव एवं चिकित्सीय सुविधाओं को सार्वभौमिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है।
- श्रमिकों की स्थिति में सुधार हेतु दीनदयाल उपाध्याय श्रमेव जयते कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है।

6.9. अनुच्छेद 43 (समाजवादी और गांधीवादी) : कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी आदि

राज्य, उपयुक्त विधान या आर्थिक संगठन द्वारा या किसी अन्य रीति से कृषि के, उद्योग के या अन्य प्रकार के सभी कर्मकारों को काम, निर्वाह मजदूरी, शिष्ट जीवन स्तर और अवकाश का सम्पूर्ण उपभोग सुनिश्चित करने वाली काम की दशाएं तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवसर प्राप्त कराने का प्रयास करेगा तथा विशिष्टतया ग्रामों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक या सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयास करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- यह अनुच्छेद गाँधी जी के ग्रामोदय के सिद्धांत से भी संबंधित है। गावों में लघु और कुटीर उद्योगों का विकास, राज्य सूची का विषय है। राज्य द्वारा ग्राम विकास एवं जीवन स्तर में सुधार करने के लिए अनेक बोर्ड , निगम और आयोगों की स्थापना की गई है।
- राज्य द्वारा गांवों में लघु एवं कुटीर उद्योगों की स्थापना को प्रोत्साहित करने के लिए अनेक कदम उठाये जा रहे है। हैंडलूम बोर्ड, हस्तशिल्प बोर्ड, जूट बोर्ड, सिल्क बोर्ड आदि की ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों के विकास हेतु स्थापना की गयी है।
- इस अनुच्छेद के निहित उद्देश्यों की प्राप्ति और वित्त, तकनीक, कौशल आदि सम्बन्धी समस्याओं के समाधान हेतु मुद्रा योजना, ज़ीरो इफेक्ट-ज़ीरो डिफेक्ट योजना आदि प्रारम्भ की गयी है।

6.10. अनुच्छेद 43(a) (समाजवादी) : उद्योगों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना

राज्य, किसी उद्योग में लगे हुए उपक्रमों, स्थापनों या अन्य संगठनों के प्रबंध में कर्मकारों का भाग लेना सुनिश्चित करने के लिए उपयुक्त विधान द्वारा या किसी अन्य रीति से कदम उठाएगा।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

विवरण

- अनुच्छेद 43(a) संविधान में 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया था। यह समाजवादी संकल्पना पर आधारित तत्व है।
- श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार, उनकी गरिमा एवं प्रतिष्ठा की सुरक्षा और औद्योगिक इकाई के प्रशासन में उनकी पर्याप्त भागीदारी सुनिश्चित कराने के लिए यह प्रावधान उपबंधित किया गया।

6.11. अनुच्छेद 43(b) (समाजवादी एवं गांधीवादी): सहकारी समितियों का उन्नयन

राज्य सहकारी समितियों के स्वैच्छिक निर्माण, स्वायत्त कार्यकरण, लोकतान्त्रिक नियंत्रण और व्यावसायिक प्रबंध के उन्नयन का प्रयास करेगा।

97वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011 द्वारा भाग IV में, अनुच्छेद 43(b) जोड़ा गया है जो प्रावधान करता है कि राज्य सहकारी समितियों के स्वैच्छिक संगठन, स्वायत्त कार्यकरण, लोकतांत्रिक नियंत्रण तथा पेशेवर प्रबंधन को बढ़ाने का प्रयास करेगा।

97वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011

इस संविधान संशोधन के परिणामस्वरूप संविधान में दो अन्य महत्वपूर्ण खंड जोड़ें गए, जो निम्न है :-

- अधिनियम द्वारा भारतीय संविधान के भाग III का संशोधन किया है जिससे अनुच्छेद 19(1)(c)में, 'या संघ' शब्द के बाद 'या सहकारी समितियां' शब्द जोड़ा गया है।अधिनियम ने सहकारी समितियों के गठन के अधिकार को मूल अधिकार बना दिया है। अधिनियम सहकारी समितियों के प्रबंधन की जिम्मेदारी सुनिश्चित करता है एवं कानून के उल्लंघन के लिए निरोध प्रदान करता है।
- संविधान के भाग 9(a) के बाद एक नया भाग जिसे भाग 9(b) (अनुच्छेद 243 ZH - 243 ZT) जोड़ा गया है जो सहकारी समितियों संबंधी परिभाषाएं; सहकारी समितियों का समावेशन; बोर्ड के सदस्यों एवं इसके पदाधिकारियों की संख्या एवं पदावधि; बोर्ड के सदस्यों का चुनाव; बोर्ड एवं अंतरिम प्रबंधन का निलम्बन; सहकारी समितियों के लेखाओं का अंकेक्षण; जनरल बॉडी बैठक का आयोजन; सूचना प्राप्त करने का अधिकार, रिटर्न फाइल करने; अपराध एवं दंड; बहु-राज्य सहकारी समितियों पर अनुप्रयोग; संघ शासित प्रदेशों पर अनुप्रयोग एवं वर्तमान विधि की निरंतरता का प्रावधान करता है।

6.12. अनुच्छेद 44 (उदार बौद्धिक) : नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता:

राज्य, भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में नागरिकों के लिए एक समान सिविल संहिता प्राप्त कराने का प्रयास करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- निजी कानून (पर्सनल लॉ), विवाह, तलाक, भरण-पोषण, उत्तराधिकार एवं गोद लेने से संबंधित होते हैं। भारत में विभिन्न धर्मों के भिन्न-भिन्न निजी कानून है। समान सिविल संहिता के तहत एक ही निजी कानून होगा, जिसका देश के सभी नागरिकों द्वारा अनुसरण किया जाएगा।
- उच्चतम न्यायालय ने केंद्र को समान सिविल संहिता लागू करने का लिए निर्देश देने हेतु की गयी याचिकाओं को बार-बार खारिज किया और कहा कि यह नीति-निर्माण का विषय है तथा न्यायालय यह कार्य करने में सक्षम नहीं है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6.13. अनुच्छेद 45 (उदार बौद्धिक): प्रारम्भिक शैशवावस्था की देखरेख तथा छह वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए शिक्षा का प्रावधान

राज्य, प्रारम्भिक शैशवावस्था की देखरेख और सभी बालकों को उस समय तक जब तक कि वे छह वर्ष की आयु पूर्ण न कर लें, शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- अनुच्छेद 45 (प्राथमिक शिक्षा) के तहत वर्णित इस नीति निदेशक तत्व को 86वें संशोधन, 2002 द्वारा अनुच्छेद 21(a) के अंतर्गत मूल अधिकार के रूप में सम्मिलित कर लिया गया है।
- साथ ही, प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के दायित्व के निर्वहन हेतु सरकार ने सर्वशिक्षा अभियान चलाकर अपने नीति निदेशक संबंधी उल्लिखित उद्देश्यों को पूरा करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

6.14. अनुच्छेद 46 (समाजवादी और उदार बौद्धिक):अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की अभिवृद्धि

राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय एवं सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- सरकार ने हमारे समाज के सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों, विशेष रूप से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को आरक्षण प्रदान कर इस निदेशक तत्व को लागू करने का प्रयास किया है।
- अनुसूचित जाति एंव जनजाति के शैक्षणिक विकास के लिए सरकार ने उनके लिए छात्रवृत्ति, निःशुल्क पुस्तके, छात्रावास आदि की व्यवस्था की है।
- वहीं, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के आथिक हितों के संवर्द्धन हेत एवं उनमें उद्यमिता के विकास के लिए 'स्टैंड-अप-इंडिया' एवं 'SC/ST हब' को प्रारम्भ किया गया है।

6.15. अनुच्छेद 47 (उदार बौद्धिक और गांधीवादी): पोषहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य का सुधार करने का राज्य का कर्तव्य

राज्य, अपने लोगों के पोषहार स्तर और जीवन स्तर को ऊँचा करने तथा लोक स्वास्थ्य के सुधार को अपने प्राथमिक कर्तव्यों में मानेगा और राज्य, विशिष्टतया, मादक पेयों एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक औषधियों के, औषधीय प्रयोजनों से भिन्न, उपभोग का प्रतिषेध करने का प्रयास करेगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- यह एक गांधीवादी सिद्धांत है। मिड डे मील योजना को इस निदेशक तत्व के क्रियान्वयन हेतु आरम्भ किया गया ताकि पोषाहार में सुधार किया जा सके।
- 2013 में पारित खाद्य सुरक्षा अधिनियम, इस निदेशक तत्व को कार्यान्वित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम हो सकता है।
    - एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम (1978), जवाहर रोजगार योजना (1989), स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना (1999), संपूर्ण ग्राम रोजगार योजना (2001), महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कार्यक्रम (2006) आदि योजनाओं को लोगों के जीवन स्तर में सुधार करने के लिए लागू किया गया।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- इस अनुच्छेद में निहित गांधीवादी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए हाल ही में बिहार में मद्यनिषेध (पूर्ण शराब बंदी) लागू कर दिया गया।

6.16. अनुच्छेद 48 (उदार बौद्धिक एवं गांधीवादी): कृषि और पशुपालन का संगठन

राज्य, कृषि और पशुपालन को आधुनिक और वैज्ञानिक प्रणालियों से संगठित करने का प्रयास करेगा तथा विशिष्टतया, गायों एवं बछड़ों और अन्य दुधारू एवं वाहक पशुओं की नस्लों के परिरक्षण और सुधार के लिए और उनके वध का प्रतिषेध करने के लिए कदम उठाएगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- हरित क्रांति एवं जैव प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अनुसंधान कृषि और पशुपालन के आधुनिकीकरण के लक्ष्य हैं।
- कृषि में वैज्ञानिक तकनीकों को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने 'मृदा स्वास्थ्य कार्ड' एवं कृषि विज्ञान केंद्र' जैसे पहलों को प्रारंभ किया है। कृषि क्षेत्र को मजबूत करने के लिए सरकार ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना एवं प्रधानमंत्री सिंचाई योजना को प्रारंभ किया है।
- वहीं, इस अनुच्छेद में उल्लिखित नीतिगत उद्देश्य की प्राप्ति एवं पशुपालन में आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों एवं दुधारू पशुओं के नस्ल सुधार हेतु राष्ट्रीय गोकुल मिशन प्रारंभ किया गया है।
- साथ ही, उनके वध/हत्या पर रोक लगाने के लिए विभिन्न राज्यों ने भी कानून निर्मित किए है।

6.17. अनुच्छेद 48(a) (उदार बौद्धिक): पर्यावरण का संरक्षण तथा संवर्धन और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा

राज्य, देश के पर्यावरण के संरक्षण तथा संवर्धन का और वन तथा वन्य जीवों की रक्षा करने का प्रयास करेगा।

विवरण

- अनुच्छेद 48A संविधान में 42वें संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा जोड़ा गया है।
- जीवन के बेहतर मानदंड एवं प्रदूषण रहित वातावरण के निर्माण हेतु संविधान में इस प्रावधान को शामिल किया गया।
- राष्ट्रीय वन नीति (1988) का लक्ष्य वनों का विकास, संरक्षण और सुरक्षा करना है। पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, 1986; वन्यजीव (संरक्षण) अधिनियम, 1972; भी अनुच्छेद 48(a) के तहत निर्देशों को पूरा करने की दिशा में कुछ महत्वपूर्ण कदम हैं।

6.18. अनुच्छेद 49 (उदार बौद्धिक): राष्ट्रीय महत्व के संस्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण

(संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन) राष्ट्रीय महत्व वाले घोषित किये गए कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरूचि वाले प्रत्येक संस्मारक या स्थान या वस्तु का, यथास्थिति, लुंठन, विरूपण, विनाश, अपसारण, व्ययन या निर्यात आदि से संरक्षण करना राज्य की बाध्यता होगी।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- यह राज्य से राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों के संरक्षण की अपेक्षा रखने वाला एक उदार-बौद्धिक सिद्धांत है। भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण को इसके क्रियान्वयन का प्रभार सौंपा गया है।

Website - https://upscpdf.com

- विश्व धरोहर स्थलों, प्राचीन स्मारकों और पुरातात्विक स्थलों का संरक्षण राष्ट्रीय महत्व का है। पर्यटन गतिविधियों के सन्दर्भ में इन स्थलों का आर्थिक महत्व भी हैं।

6.19. अनुच्छेद 50 (उदार बौद्धिक): कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करण

राज्य की लोक सेवाओं में, न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए राज्य कदम उठाएगा।

विवरण एवं क्रियान्वयन

- नियंत्रण एवं संतुलन की व्यवस्था के लिए शक्तियों का पृथक्करण आवश्यक है। यह न्यायपालिका की स्वतंत्रता भी सुनिश्चित करता है।
- यह एक उदार-बौद्धिक सिद्धांत भी है। यह 1973 में CrPC में संशोधन द्वारा कार्यान्वित किया गया।

6.20. अनुच्छेद 51 (उदार बौद्धिक): अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि

राज्य

- *अंतरराष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की अभिवृद्धि का,*
- *राष्ट्रों के बीच न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण संबंधों को बनाए रखने का;*
- *संगठित लोगों के एक दूसरे से व्यवहारों में अंतरराष्ट्रीय विधि और संधि-बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का; तथा*
- *अंतरराष्ट्रीय विवादों का मध्यस्थता द्वारा निपटारे के लिए प्रोत्साहन देने का, प्रयास करेगा।*

विवरण एवं क्रियान्वयन

- भारत सरकार ने इस अनुच्छेद के तहत उल्लिखित उद्देश्यों के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाते हुए अपने विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता, पंचशील, संयुक्त राष्ट्र चार्टर के प्रति निष्ठा एवं शांति मिशनों में भागीदारी एवं पूर्ण निःशस्त्रीकरण जैसे प्रमुख सिद्धांतों को शामिल किया है। हाल ही में, सार्क उपग्रह द्वारा निःशुल्क सेवा का पड़ोसियों तक विस्तार इसी शांति एवं मैत्री के दिशा में बढ़ते कदमों को दर्शाता है।

7. संविधान के अन्य भागों में वर्णित निदेशक तत्व

संविधान में भाग IV के अतिरिक्त भी कुछ निदेशक तत्वों को उल्लेखित किया गया है जिनमें से प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं:

- **अनुच्छेद 335** के तहत राज्य के क्रियाकलाप से सम्बन्धी सेवाओं और पदों के लिए नियुक्तिओं में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के सदस्यों के दावों के साथ-साथ प्रशासन की दक्षता बनाये रखने की संगति को ध्यान में रखने का निर्देश दिया गया है।
- **अनुच्छेद 350(a)** इसके अनुसार प्रत्येक राज्य एवं राज्य के प्राधिकारियों का यह कर्तव्य होगा कि भाषाई अल्पसंख्यक वर्ग के बच्चों को प्राथमिक स्तर तक मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाये।
- **अनुच्छेद 351** के अनुसार संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहन दे एवं इसका विकास करे जिससे वह भारत की संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का साधन बन सके।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

8. निदेशक तत्व एवं मूल अधिकारों में अंतर

मूल अधिकार	नीति निदेशक तत्व
• यह उदारवादी दर्शन पर आधारित हैं, जो व्यक्ति एवं उनके अधिकारों को संरक्षण प्रदान करता है।	• यह अलग-अलग विचारधाराओं जैसे कल्याणकारी राज्य, फैबियन समाजवाद, गांधीवाद, पर्यावरणवाद, अंतर्राष्ट्रीयता आदि को प्रतिबिंबित करते हैं।
• यह सामान्य रूप से राज्य तथा कुछ मामलों में निजी व्यक्तियों पर भी पर **निषेधाज्ञा** होते हैं।	• संघ, राज्य सरकारों के साथ ही अन्य अधिकारियों से नीति-निर्माण में निदेशक तत्वों का मूल दिशानिर्देशों के रूप में **अनुसरण** किये जाने की अपेक्षा की जाती हैं।
• इनकी प्रकृति **नकारात्मक** है क्योंकि ये राज्य को कुछ नीतियों के निर्माण से प्रतिबंधित करते है।	• निदेशक तत्व की प्रकृति सकारात्मक होती है। ये, राज्य पर **सकारात्मक दायित्व** होते हैं।
• मूल अधिकार न्यायालय में **प्रवर्तनीय** हैं। संवैधानिक उपचार (अनुच्छेद-32) का अधिकार स्वयं एक मूल अधिकार है। न्यायपालिका को, मूल अधिकारों में कटौती करने वाले किसी कानून को अमान्य घोषित करने की शक्ति प्रदान की गयी है।	• अनुच्छेद 37 के अनुसार, नीति निदेशक तत्व न्यायालय में **प्रवर्तनीय नहीं** हैं। अत: निदेशक तत्वों हेतु संवैधानिक उपचार की व्यवस्था उपलब्ध नहीं हैं।
• संविधान के भाग III में उल्लिखित मूल अधिकार (FR) राजनीतिक लोकतंत्र का आधार हैं।	• निदेशक तत्व देश में सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना निर्धारित करते हैं।
• मूल अधिकार व्यक्ति केंद्रित होते हैं, जबकि निदेशक तत्व समूह केंद्रित होते हैं।	• निदेशक तत्व, भारत को एक कल्याणकारी राज्य के रूप में स्थापित करते हैं।

- उच्चतम न्यायालय ने मूल अधिकार और निदेशक तत्व के बीच संबंध स्थापित करने के लिए **सामंजस्यपूर्ण संरचना का सिद्धांत** दिया है।
- संविधान सभा के विधिक सलाहकार, बी.एन. राव के अनुसार, मूल अधिकार और निदेशक तत्व योजना में एकीकृत होते हैं। वे संविधान सभा में एक ही योजना के रूप में प्रस्तुत किए गए थे। यहाँ तक कि नेहरू रिपोर्ट में वे एक ही इकाई के भाग थे। संसाधनों की कमी के कारण निदेशक तत्वों को लागू किये जाने की असमर्थता से संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है, इस संकट से बचने के लिए मूल अधिकारों एवं निदेशक तत्वों की पृथक व्यवस्था की गयी है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

9. संविधान निर्माण के पश्चात् सम्मिलित किये गए नीति निदेशक तत्व

भारतीय संविधान के आरम्भ के पश्चात् संविधान के भाग IV में समय-समय पर कुछ संशोधन किये गए तथा अनेक अनुच्छेद जोड़े गए। ये निम्नानुसार हैं:

प्रभावित अनुच्छेद	परिवर्तन	स्रोत
38 (2)	जोड़ा गया	42वां संविधान संशोधन अधिनियम,1976
39 (a)	जोड़ा गया	42वां संविधान संशोधन अधिनियम,1976
39 (f)	जोड़ा गया	42वां संविधान संशोधन अधिनियम,1976
43 (a)	जोड़ा गया	42वां संविधान संशोधन अधिनियम,1976
43 (b)	जोड़ा गया	97वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2011
45	संशोधित मूलपाठ	86वां संविधान संशोधन अधिनियम, 2002
48 (a)	जोड़ा गया	42 वां संविधान संशोधन अधिनियम,1976

9.1. निदेशक सिद्धांतों को गैर-न्यायोचित एवं कानूनी तौर पर गैर-प्रवर्तनीय बनाया जाने के प्रमुख कारण

संविधान निर्माताओं ने निदेशक सिद्धांतों को गैर न्यायोचित और कानूनी तौर पर गैर-प्रवर्तनीय बनाया, क्योंकि:

- उन्हें लागू करने के लिए देश में पर्याप्त वित्तीय संसाधन उपलब्ध नहीं थे।
- देश की विविधता और पिछड़ापन उनके क्रियान्वयन में बाधक होगी।
- निदेशक सिद्धांतों को न्यायोचित बनाने से हाल ही में ब्रिटिश दासता से मुक्त राज्य पर इनके क्रियान्वयन हेतु दबाव पड़ सकता था। अत: यह आशा की गयी कि देश अपनी प्राथमिकताओं के आधार पर कार्य करें तथा राज्य को निदेशक सिद्धांतों को प्राप्त करने के लिए पर्याप्त स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

अत: संविधान निर्माताओं द्वारा एक व्यावहारिक निर्णय लिया गया तथा इन सिद्धांतों को न्यायिक एवं बाध्यकारी शक्तियां प्रदान करने से परहेज किया गया। वे इन सिद्धांतों की पूर्ति के लिए अंतिम मंजूरी के रूप में न्यायालय की प्रक्रियाओं के बजाय जागरूक जनता की राय पर अधिक विश्वास करते थे।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

10. नीति-निदेशक तत्वों की आलोचनायें

- आलोचक, निदेशक तत्वों में निरंतरता एवं तारतम्यता की कमी की ओर संकेत करते हैं। स्पष्ट है कि अत्यधिक महत्वपूर्ण निदेशक तत्वों एवं कम महत्वपूर्ण निदेशक तत्वों को मिश्रित कर दिया गया है। साथ ही, सम्बंधित दर्शन पर आधारित इनकी पद्धति से तार्किक व्यवस्था नहीं की गयी है।
- एन श्रीनिवासन के अनुसार, "निदेशक तत्वों को न तो उचित तरीके से वर्गीकृत किया गया है और न ही तर्कसंगत तरीके से व्यवस्थित किया गया हैं। इसमें अत्यल्प महत्व वाले नीति निदेशक तत्वों को सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए अत्यावश्यक अति महत्वपूर्ण तत्वों के साथ मिश्रित कर दिया गया है । इस व्यवस्था के लिए वैज्ञानिक आधार सुझाया जाता है, जबकि ये भावनाओं एवं बिना पर्याप्त जानकारी के आधार पर आधारित है।"
- इसके अतिरिक्त, इनकी गैर-प्रवर्तनीय प्रकृति इनके क्रियान्वयन को तत्कालीन सरकार के विवेक पर छोड़ देती है।
- प्रो. के.टी.शाह द्वारा इनकी ऐसे **चैक, जिसका भुकतान बैंक की इच्छा पर निर्भर है**, के रूप में और बी.एन.राव द्वारा इनकी **नैतिक उपदेश** के रूप में वर्णित करते हुए आलोचना की गई है।
- यह तर्क दिया गया है कि चूंकि संविधान देश का बुनियादी कानून है, इसमें कुछ भी ऐसा सम्मिलित नहीं होना चाहिए, जो गैर-न्यायोचित है।
- इसके अतिरिक्त, उनकी इस आधार पर आलोचना की गई है कि वे संघीय ढांचे में बाधा उत्पन्न करते हैं- निदेशक तत्व संघ एवं राज्य दोनों सरकारों हेतु निर्देश होते हैं। अधिकांश निदेशक तत्व राज्य सूची के विषयों से सम्बंधित हैं। के. संथानम द्वारा विशेष रूप से उल्लेखित किया गया कि निदेशक तत्व
  - केंद्र और राज्यों के बीच
  - राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री के बीच, तथा
  - राज्यपाल और मुख्यमंत्री के बीच संवैधानिक संघर्ष उत्पन्न करते हैं।
- उनके अनुसार, केंद्र सरकार इन सिद्धांतों के कार्यान्वयन के संबंध में राज्यों को निर्देश दे सकती हैं तथा गैर-अनुपालन की स्थिति में राज्य सरकार को बर्ख़ास्त कर सकती हैं। निदेशक सिद्धांतों का उल्लंघन करने वाले किसी विधेयक को राष्ट्रपति इस आधार पर अस्वीकार कर सकता हैं कि ये सिद्धांत, देश के शासन के मूल सिद्धांत हैं, तथा इस प्रकार, सरकार के पास इन सिद्धांतों की अवहेलना का कोई अधिकार नहीं है। यही समान संवैधानिक संघर्ष, राज्य स्तर पर राज्यपाल और मुख्यमंत्री के मध्य हो सकता है।

11. निदेशक तत्वों की उपयोगिता

- निदेशक तत्वों का लक्ष्य भारत में राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्शों के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र भी स्थापित करना है। वे सत्तारूढ़ शासन को, उनके राजनीतिक स्वभाव की परवाह किए बिना एक व्यापक दिशा प्रदान करते हैं तथा इस प्रकार ये सरकारों में परिवर्तन के बावजूद नीतियों में कुछ हद तक स्थिरता को बनाए रखने में मदद करते हैं। निदेशक तत्व, न्यायपालिका के लिए प्रकाशस्तंभ के रूप में भी कार्य करते है। इन सबसे ऊपर, ये शिक्षाप्रद मूल्य हैं।

VISION IAS

- भारत के पूर्व महान्यायवादी एम.सी. सीतलवाड़ के अनुसार, हालांकि निदेशक तत्व, कोई विधिक अधिकार प्रदान नहीं करते हैं और न कोई विधिक उपचारों का सृजन करते हैं, फिर भी ये निम्नलिखित तरीके से महत्वपूर्ण और उपयोगी होते हैं:
  - ये 'अनुदेशों' के समान हैं या ये भारतीय संघ के प्राधिकरणों को संबोधित सामान्य अनुसंशायें हैं। ये उन्हें उन सामाजिक एवं आर्थिक मूल सिद्धांतों की याद दिलाते हैं, जो संविधान के लक्ष्यों की प्राप्ति से जुड़े हैं।
  - ये न्यायालयों के लिए उपयोगी मार्गदर्शक सिद्धांत हैं। ये न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति के प्रयोग में सहायता करते हैं, जो कि विधि की संवैधानिक वैधता का निर्धारण करती है।
  - ये सभी अनुदेश विधायिका एवं कार्यपालिका को नीति निर्माण के लिये प्रेरित करते हैं साथ ही न्यायालयों को कुछ मामलों में दिशा-निर्देशित भी करते हैं।
  - ये प्रस्तावना को विस्तृत रूप देते हैं, जिनसे भारत के नागरिकों को न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व आदि मूल्यों को बल मिलता है।
  - ये राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों की घरेलू और विदेश नीतियों में स्थायित्व और निरंतरता बनाये रखते हैं, भले ही सत्ता में परिवर्तन हो जाए।
  - ये नागरिकों के मूल अधिकारों के पूरक होते हैं। इनके द्वारा सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की व्यवस्था करते हुए इस रिक्तता को पूरा करने का प्रयास किया गया हैं। भाग III एवं भाग IV राजनीतिक लोकतंत्र के साथ आर्थिक लोकतंत्र को भी संभव बनाते है।
  - ये विपक्ष द्वारा सरकार पर नियंत्रण को संभव बनाते हैं। विपक्ष, सत्तारूढ़ दल पर निदेशक तत्वों का विरोध एवं इसके कार्यकलापों के आधार पर आरोप लगा सकता हैं तथा इन्हें लागू करने के लिए दबाव बना सकता है।
  - ये सरकार के कार्यों के प्रदर्शन का कठिन परीक्षण करते हैं। लोग सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों का परीक्षण इन संवैधानिक घोषणाओं के आलोक में कर सकते हैं।
  - ये आम राजनीतिक घोषणा पत्र की तरह होते हैं। एक सत्तारूढ़ दल अपनी राजनीतिक विचारधारा के बावजूद विधायिका एवं कार्यपालिकीय कृत्यों में इस तथ्य को स्वीकार करता है कि ये तत्व इसके प्रदर्शक, दार्शनिक और मित्र हैं।

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

6. मूल कर्त्तव्य

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. मूल कर्त्तव्य: एक विचार 3

1.1. स्वर्ण सिंह समिति 3

1.2. मूल कर्त्तव्यों का संक्षिप्त विवरण 3

1.3. मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने के उद्देश्य 7

1.4. मूल कर्त्तव्यों की विशेषताएँ 7

1.5. मूल कर्त्तव्यों, नीति निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों में सम्बन्ध 8

1.6. विभिन्न समितियाँ और न्यायिक निर्वचन 8

1.7. मूल कर्त्तव्य हेतु नवीन संदर्भ 9

1.8. आलोचना 9

1.9. प्रासंगिकता 10

1.10. मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव 10

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

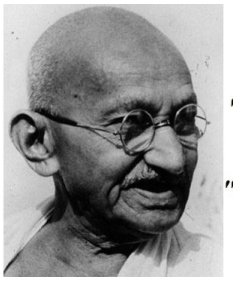

"The True Source of Rights is Duty."

"कर्त्तव्य ही अधिकारों का मूल स्रोत है।"

1. मूल कर्त्तव्य: एक विचार

- मूल भारतीय संविधान में नागरिकों के कर्त्तव्यों से सम्बंधित भाग को सम्मिलित नहीं किया गया था। 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में एक नए भाग IVA और इसके अंतर्गत एक नया अनुच्छेद 51(a) जोड़ा गया। इसके द्वारा इस भाग में 10 मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित किया गया। 11वें मूल कर्त्तव्य को 86वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोड़ा गया। इन्हें नागरिकों के नैतिक दायित्वों के रूप में परिभाषित किया गया है।
- इनकी प्रेरणा भूतपूर्व सोवियत संघ के संविधान से ग्रहण की गयी। मूल कर्त्तव्यों से संबंधित प्रावधानों को विश्व के अन्य प्रमुख लोकतान्त्रिक देशों जैसे अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि में नहीं अपनाया गया है। हालाँकि, भारतीय संविधान में इनके अपनाये जाने के लिए, भारतीय सांस्कृतिक एवं भौगोलिक विविधता, देश की एकता एवं अखंडता की सुरक्षा के लिए सक्रिय नागरिक सहभागिता की आवश्यकता, युद्ध से उभरी परिस्थितियों में भारतीय सुरक्षा व्यवस्था की सुदृढ़ता प्रमुख रूप से उत्तरदायी थे।

1.1. स्वर्ण सिंह समिति

- देश में आपातकाल लागू किये जाने के तुरंत पश्चात् इंदिरा गांधी द्वारा **सरदार स्वर्ण सिंह समिति** गठित की गयी। इस समिति का उद्देश्य अतीत के अनुभवों के आलोक में संविधान संशोधन से सम्बंधित प्रश्नों का अध्ययन करना और संशोधनों की सिफारिश करना था।
- सरदार स्वर्ण सिंह समिति की सिफारिशों के आधार पर ही 42वें संशोधन अधिनियम,1976 जिसे **"मिनी कॉन्सटीट्यूशन"** भी कहा जाता है, को पारित किया गया। इसके तहत, विभिन्न अनुच्छेदों और यहाँ तक कि प्रस्तावना में भी संशोधन किया गया।
- सरदार स्वर्ण सिंह समिति द्वारा 8 मूल कर्त्तव्यों को जोड़े जाने और इनका अनुपालन न किये जाने पर दंड के प्रावधान की सिफारिश की गयी थी।

1.2. मूल कर्त्तव्यों का संक्षिप्त विवरण

अनुच्छेद 51(a)(1): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह -

संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्र ध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।

विवरण

(i) संविधान के प्रस्तावना में निम्नलिखित आदर्शों की बात की गई है जिनका पालन करने एवं जीवन में अपनाने की नागरिकों से अपेक्षा की गई है:

- सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक **न्याय,**
- विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की **स्वतंत्रता**,
- प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
- सभी व्यक्तियों की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली **बंधुता का विकास** करना।

Website - https://upscpdf.com

(ii) संविधान की संस्थाओं के अंतर्गत, मुख्यतः कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका सम्मिलित हैं।

(iii) यदि किसी नागरिक की समस्या की सुनवाई ये संस्थाएँ नहीं करती है तो इसके लिए वह 'हुल्लड़, हड़ताल एवं हिंसा' का सहारा लेने के बजाय कानूनी एवं संवैधानिक मार्ग को अपनाए तथा इन संस्थाओं का सम्मान करे।

अनुच्छेद 51(a)(2): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे।

विवरणः

(i) भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले कुछ उच्च आदर्श निम्नलिखित हैं:

- विदेशी शासन से मुक्ति एवं एक ऐसी स्वशासन व्यवस्था की स्थापना करना जो ऐसे समाज का निर्माण कर सके जहाँ व्यक्ति, व्यक्ति का शोषण न करे तथा जहाँ गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा के लिए कोई स्थान न हो।
- उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति तभी संभव है जब सभी नागरिकों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर मिल सके।
- इस प्रकार के पूर्ण विकास हेतु व्यक्तित्व-निर्माण करने वाली शिक्षा की जरूरत होगी।
- इसके लिए, प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रहित को व्यक्तिगत हितों से ऊपर रखना होगा।
- कुछ अन्य आदर्शों में समतापूर्ण समाज का निर्माण, अहिंसा, भाईचारा, विश्व शांति एवं स्वयं अनुच्छेद 51(a) में उल्लिखित बातें यथा महिलाओं का सम्मान करना, भारत की सामासिक संस्कृति की रक्षा करना, लोगों में वैज्ञानिक सोच एवं मानववाद का विकास करना आदि शामिल हैं।

अनुच्छेद 51(a)(3): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे तथा उसे अक्षुण्ण बनाए रखे।

विवरणः

(i) एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में संप्रभुता, जनता में ही निहित होती है। अतः नागरिकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे भारत की संप्रभुता, एकता एवं अखंडता की किसी भी स्थिति में रक्षा करें।

(ii) व्यवहारिक रूप में, भारत की संप्रभुता एवं एकता-अखंडता की रक्षा हेतु भारतीय दंड संहिता (IPC) में संबंधित अपराधों एवं उन्हें रोकने के लिए दंड की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 51(a)(4): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

देश की रक्षा करे और आह्वान किये जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।

विवरण

(i) आधुनिक राष्ट्र-राज्य की संकल्पना में यह निहित है कि प्रत्येक नागरिक युद्ध या बाह्य आक्रमण की स्थिति में अपने देश की रक्षा करने के कर्त्तव्य से बंधा है।

(ii) यहाँ 'आह्वान किये जाने' का अर्थ तीनों सेनाओं के अतिरिक्त आम नागरिकों से है जिनकी आवश्यकता 'राष्ट्रीय सेवाओं' के लिए पड़ सकती है।

(iii) इसी को ध्यान में रखते हुए अनुच्छेद 23(2) में राज्य को यह अधिकार दिया गया है कि धर्म, नस्ल, जाति, वर्ग या इनमें से किसी भी आधार पर भेदभाव किए बगैर वह नागरिकों से 'सार्वजनिक लोक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अनिवार्य सेवा' ले सकती है।

VISION IAS

अनुच्छेद 51(a)(5): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभाव से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो स्त्रियों के सम्मान के विरुद्ध हैं।

विवरण:

- यहाँ धर्म, भाषा, प्रदेश या वर्ग आधारित भेदभाव से परे होने का अर्थ इस विविधता को सीमित या समाप्त करना नहीं है, बल्कि इनमें निहित सामूहिक एवं समान तत्वों के आधार पर समरूपता की भावना का लोगों में निर्माण करना है।
- उपरोक्त विभिन्न आधारों पर विविधता के बावजूद सभी भारतीय एक संविधान, एक ध्वज एवं एक नागरिकता के आधार पर आपस में जुड़े हैं तथा यही हमारे भ्रातृत्व की भावना के निर्माण का प्रमुख आधार है।
- इस अनुच्छेद का दूसरा भाग, लैंगिक आधार पर भेदभाव एवं पूर्वाग्रह का निषेध करता है। इसमें महिलाओं की गरिमा के विरुद्ध व्यवहार में लाई जाने वाली किसी भी प्रकार की प्रथाओं का विरोध किया गया है।
- महिला की गरिमा एवं सम्मान को व्यवहारिक रूप देने के लिए निम्न प्रावधान किये गए हैं-
  - सरकार द्वारा पारित सती प्रथा (निषेध) अधिनियम, 1987 एवं सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1997 में कार्यस्थल पर यौन शोषण रोकने के लिए दिए गए **'विशाखा दिशानिर्देश'** इस दिशा में मील का पत्थर साबित हुए हैं।
  - अक्टूबर 2017 में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि 18 वर्ष से कम उम्र की स्त्री से शारीरिक संबंध बनाना दुष्कर्म की श्रेणी में आता है, चाहे वह स्त्री विवाहित (चाहे वह पति द्वारा ही क्यों न हो) हो या अविवाहित। यह स्त्री के सम्मान की रक्षा हेतु एक सराहनीय एवं प्रगतिशील कदम है।

अनुच्छेद 51(a)(6) : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह -

हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करें।

विवरण:

- हमारी सामासिक संस्कृति एवं गौरवशाली परंपरा के अंतर्गत शामिल हैं-
  - पिछले पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुरानी सभ्यता एवं संस्कृति।
  - मूर्ति कला, वास्तु कला, गणित, विज्ञान, चिकित्सा, चित्रकला में विश्व को दिए गए भारतीयों के योगदान।
  - धरोहर के रूप में प्राचीन स्मारक, किले, मंदिर, मस्जिद, चर्च जैसे ऐतिहासिक एवं पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल।
  - विभिन्न धर्मों यथा हिंदू, बौद्ध, जैन, सिख आदि की जन्मस्थली होने का गौरव।
  - सत्य, अहिंसा एवं वैश्विक शांति एवं बंधुत्व के प्रति हमारी दृढ़ निष्ठा।
- अतः जो कुछ हमने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया है, उसे अगली पीढ़ी तक अधिक सुरक्षित एवं समृद्ध रूप में पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है।
- इसके लिए, नीति-निदेशक तत्वों के अनुच्छेद 49 के अंतर्गत राष्ट्रीय महत्त्व के स्मारकों, कलाकृतियों एवं स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करने का कर्त्तव्य राज्य को भी सौंपा गया है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- नागरिक का बौद्धिक, शारीरिक एवं आध्यात्मिक- सभी क्षेत्रों में विकास हमारी सामासिक संस्कृति का अभिन्न अंग है। अतः, अपने व्यक्तित्व के विकास हेतु प्रयास करना, प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है।
- हमारी सामासिक संस्कृति सत्य, अहिंसा जैसे नैतिक मूल्यों पर विशेष बल देती है।
- इसी सामासिक संस्कृति को परिरक्षित करने हेतु भारत सरकार ने 21 जून को 'अंतराष्ट्रीय योग दिवस' मनाने का निर्णय लिया ताकि नागरिक अपनी संस्कृति की पांच हजार वर्षों से भी अधिक पुरानी गौरवशाली परंपरा के महत्त्व को समझ सकें।

अनुच्छेद 51(a)(7): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे।

विवरणः

- पिछले कुछ वर्षों से लगातार बढ़ रहे पर्यावरण क्षरण, प्रदूषण, वनों की कटाई, ग्लोबल वार्मिंग, जलवायु परिवर्तन और वन्य जीवों के अवैध व्यापार एवं तस्करी ने समस्त मानव प्रजाति के साथ-साथ अन्य प्राणियों के समक्ष अस्तित्व पर संकट उत्पन्न कर दिया है।
- अतः, यह प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह अपने स्तर पर वनों की सुरक्षा कर, नए पौधों को लगाकर, नदियों को साफ कर, जल संरक्षण कर, सार्वजनिक स्थलों पर गंदगी फैलने से रोककर इस दिशा में प्रयास करे।
- इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 48(a) के तहत, नीति-निदेशक तत्वों के रूप में पर्यावरण, वन एवं वन्य जीवों के संरक्षण का दायित्व राज्य के ऊपर भी सौंपा गया है जिसको व्यवहारिक रूप देने के लिए राज्य ने पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986; वन्य जीव अधिनियम, 1972 आदि पारित किया है।
- हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने दिल्ली में दीपावली के अवसर पर पटाखों की बिक्री पर प्रतिबंध लगाकर इस कर्त्तव्य की ओर पुनः ध्यान आकर्षित किया है।

अनुच्छेद 51(a)(8): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।

विवरण:

- इसमें तेजी से बदलती वैश्विक परिस्थितियों में मानव जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि एवं संपूर्ण विकास हेतु प्रत्येक नागरिक से मानववाद की भावना से ओतप्रोत वैज्ञानिक दृष्टिकोण के विकास की अपेक्षा की गई है।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अर्थ है- सभी प्रकार के अंधविश्वासों से दूर रहना एवं ज्ञान की खोज एवं तथ्यों के अनुसंधान के आधार पर व्यवस्थित ज्ञान एवं अनुभव का विकास करना।
- ज्ञानार्जन एवं सुधार की भावना, सभी प्रकार के विकास हेतु पूर्वशर्त हैं।

अनुच्छेद 51(a)(9) : भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।

विवरणः

- पिछले कुछ वर्षों में देखा गया है कि जब भी रैली, बंद, हड़ताल आदि होती है तो इस दौरान सार्वजनिक संपत्तियों यथा बस, ट्रेन, भवनों आदि की तोड़फोड़ एवं आगजनी प्रारंभ हो जाती है जो कि इस मूल कर्त्तव्य का प्रत्यक्ष उल्लंघन है।
- इसे रोकने के लिए सबसे सशक्त उपाय यही है कि विद्यालय के प्रारंभिक वर्षों में ही बच्चों में इसके प्रति जागरूकता पैदा की जाए ताकि बाद के वर्षों में सार्वजनिक संपति की रक्षा करना एवं हिंसा से दूर रहना, उनके चरित्र का हिस्सा बन जाए।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

अनुच्छेद 51(a)(10): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू ले।

विवरण:

- जीवन के सभी क्षेत्रों में अति प्रतिस्पर्द्धा के वर्तमान दौर में 'उत्कृष्टता' ही सभी प्रकार की सफलता एवं विकास का रहस्य है, चाहे वह व्यक्तिगत स्तर पर हो या सामूहिक स्तर पर।
- डा. दशरथी बनाम आंध्रप्रदेश वाद (1985) में न्यायालय ने कहा कि प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य है कि व्यक्तिगत तथा सामूहिक सभी स्तरों पर उत्कृष्टता को प्राप्त करने का प्रयास करे ताकि उपलब्धियों एवं प्रगति के नए मानदंडों को स्थापित किया जा सके।

अनुच्छेद 51(a)(11): भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह-

जो माता-पिता या संरक्षक हो वह, 6 से 14 वर्ष के बीच की आयु के, यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करे।

विवरण:

- इस मूल कर्त्तव्य को 86वें संविधान संशोधन, 2002 द्वारा अनुच्छेद 51(a) में जोड़ा गया।
- इसमें माता-पिता या अभिभावक पर अपने बच्चों को शिक्षित करने का कर्त्तव्य सौंपा गया ताकि बच्चे अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर सके।
- इसी संविधान संशोधन के द्वारा शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद 21(a) में मूल अधिकार के रूप में तथा अनुच्छेद 45 में राज्य के दायित्व के रूप में सम्मिलित किया गया है।

मूल कर्त्तव्य, न केवल नागरिकों पर बल्कि राज्य पर भी लागू होते हैं। इस प्रकार, राज्य द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा करना आवश्यक है।

1.3. मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने के उद्देश्य

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संविधान में मूल कर्त्तव्य निम्नलिखित उद्देश्यों हेतु सम्मिलित किये गए:

- नागरिकों में देशभक्ति को बढ़ावा देने के लिए;
- आचरण संहिता, जो राष्ट्र को मजबूत बनाएगी, का पालन करने हेतु नागरिकों की सहायता करने के लिए;
- देश की संप्रभुता और अखंडता की रक्षा करने के लिए;
- राज्य के विविध कर्त्तव्यों के निष्पादन में सहायता करने के लिए;
- सद्भावना के विचारों को बढ़ावा देने के लिए;
- राज्य के प्रति नागरिकों की प्रतिबद्धताओं को सुनिश्चित करने के लिए;
- साथ ही, व्याप्त अनुशासनहीनता को समाप्त करने के लिए।

1.4. मूल कर्त्तव्यों की विशेषताएँ

- ये नागरिकों के नैतिक दायित्व है;
- ये केवल नागरिकों के लिए है न कि विदेशियों के लिए;
- इनकी प्रकृति गैर-न्यायोचित होती है अर्थात् ये न्यायालय में वाद योग्य नहीं हैं।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.5. मूल कर्त्तव्यों, नीति निदेशक तत्वों और मूल अधिकारों में सम्बन्ध

- मूल कर्त्तव्य, नागरिकों के उत्तरदायित्व हैं जबकि निदेशक तत्व, राज्य की नीतियों के प्रमुख आधार हैं। हालाँकि, दोनों के पालन सम्बन्धी कोई क़ानूनी बाध्यकारिता निर्धारित नहीं की गयी है।
- मूल अधिकारों का उपयोग करने वाले नागरिकों को संविधान के आदर्शों का सम्मान करना चाहिए तथा सद्भाव और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना चाहिए।
- अधिकार एवं कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी द्वारा कर्त्तव्यों के पक्ष में तर्क दिया गया कि "मूल कर्त्तव्य, मूल अधिकारों को सीमित नहीं करेंगे बल्कि लोकतान्त्रिक संतुलन स्थापित करेंगे"। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 1992 में व्यवस्था की गयी कि मूल कर्त्तव्यों को कार्यान्वित करने के लिए बनायी गयी किसी विधि को अनुच्छेद 14 एवं 19 के उल्लंघन के आधार पर अमान्य सिद्ध नहीं किया जायेगा।
- मूल कर्त्तव्य न्यायालय के माध्यम से प्रवृत्त नहीं करवाए जा सकते। इसका तात्पर्य है कि नागरिकों को इनका पालन करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। तथापि, उनमें से कुछ, प्रवर्तनीय कानून के भाग हैं। उदाहरणार्थ– राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 (Prevention of Insults to National Honor Act, 1971) आदि।

1.6. विभिन्न समितियाँ और न्यायिक निर्वचन

- **एम. सी. मेहता बनाम भारत संघ वाद (1991)** में सर्वोच्च न्यायालय ने मूल कर्त्तव्यों से संबंधित निम्न दिशानिर्देश दिए:
  - शैक्षणिक संस्थाओं में सप्ताह में कम-से-कम एक घंटे के लिए पर्यावरण एवं वन्यजीवों के संरक्षण संबंधी प्रावधानों के बारे में पढ़ाने हेतु केंद्र सरकार व्यवस्था करेगी।
  - इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केंद्र सरकार, शैक्षणिक संस्थाओं में निःशुल्क पुस्तक वितरण करेगी।
  - इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु केंद्र सरकार, शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करेगी।
  - केंद्र, राज्य एवं संघशासित सरकारें 'स्वच्छता सप्ताह' का आयोजन करेंगी।
  - पर्यावरण की गुणवत्ता में आ रही गिरावट के प्रति लोगों को सचेत करने हेतु जागरूकता अभियान चलाया जाएगा।
- **नागरिकों के मूल कर्त्तव्यों के शिक्षण के विषय पर जस्टिस वर्मा समिति** का गठन 1999 में किया गया था। इसने विद्यालयों के पाठ्यक्रम और शिक्षकों के शिक्षा कार्यक्रम तथा उच्चतर एवं व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में मूल कर्त्तव्यों को सम्मिलित करने की सिफारिश की थी।
- 2003 में सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र को जस्टिस वर्मा समिति के सुझावों के अनुसार, नागरिकों द्वारा मूल कर्त्तव्यों के पालन हेतु कानून बनाने के लिए निर्देश दिया।
- **भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश, रंगनाथ मिश्रा** ने भारत के मुख्य न्यायाधीश को एक पत्र में सर्वोच्च न्यायालय से मूल कर्त्तव्यों के विषय में अपने नागरिकों को शिक्षित करने हेतु राज्य के लिए आवश्यक निर्देश जारी करने का अनुरोध किया था ताकि अधिकारों और कर्त्तव्यों के मध्य उचित संतुलन स्थापित हो सके। उस पत्र को एक रिट याचिका के समान माना गया।
- **2002 में संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग (National Commission to Review the Working of the Constitution: NCRWC)** की रिपोर्ट में जस्टिस वर्मा समिति की अनुसंशाओं के कार्यान्वयन की सिफारिश की गयी। इसमें अनुशंसा की गयी कि पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण कदम जिसे संघ और राज्य सरकारों द्वारा उठाए जाने की आवश्यकता है, वह है- जनता को संवेदनशील बनाना और नागरिकों के बीच मूल कर्त्तव्यों के प्रावधानों के अनुपालन हेतु एक सामान्य जागरूकता पैदा करना।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.7. मूल कर्त्तव्य हेतु नवीन संदर्भ

- 1976 से अब तक मूल कर्त्तव्यों में शिक्षा प्रदान करने संबंधी माता-पिता (अभिभावकों) के दायित्वों को शामिल करने के अतिरिक्त कोई बड़ा बदलाव नहीं हो पाया है। हाल के कुछ वर्षों में यह विषय संविधानवेत्ताओं, प्रबुद्ध नागरिकों एवं समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य गंभीर चिंतन और चर्चा का विषय बना हुआ है।
- जबकि, इसी दौरान भारत की सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था में काफी परिवर्तन आया है। साथ ही, उदार न्यायिक व्याख्याओं के द्वारा मूल अधिकारों के क्षितिज का विस्तार हुआ है। इससे अधिकार एवं कर्त्तव्य के मध्य असंतुलन उत्पन्न हो गया है। अतः इस पर तत्काल पुनर्विचार करने की आवश्यकता है।
- सर्वोच्च न्यायालय के वर्तमान न्यायाधीश कुरियन जोसेफ ने अपने विभिन्न वक्तव्यों एवं लेखों के द्वारा मूल कर्त्तव्यों में कुछ नये आयामों को जोड़ने पर बल दिया है जो निम्न हैं-

  (i) मतदान करने का कर्त्तव्य (Duty to vote)

  (ii) कर देने का कर्त्तव्य (Duty to pay tax)

  (iii) दुर्घटना पीड़ित की मदद करने का कर्त्तव्य (Duty to help accident victim)

  (iv) आस-पड़ोस को स्वच्छ रखने का कर्त्तव्य (Duty to keep the premise clean)

  (v) गलत कार्यों से स्वयं को एवं दूसरों को दूर रखने का नागरिक कर्त्तव्य (Duty to prevent civil wrong)

  (vi) अन्याय के विरुद्ध आवाज उठाने का कर्त्तव्य (Duty to raise voice against injustice)

  (vii) व्हिसल ब्लोअर की सुरक्षा का कर्त्तव्य (Duty to protect whistleblower)

  (viii) औचित्यपूर्ण सिविल सोसाइटी आंदोलन को समर्थन देने का कर्त्तव्य (Duty to support bona fide civil society movements)

1.8. आलोचना

- संविधान में प्रतिष्ठापित कर्त्तव्य, किसी सुसंगत मूलभूत विषय-वस्तु को प्रदर्शित नही करते हैं। मूल कर्त्तव्यों की गैर-प्रवर्तनीय प्रकृति के कारण तथा इनके अनिश्चित, अस्पष्ट और अल्प व्यवहारिक मूल्यों वाले एक नैतिक विचार भर होने के कारण इनकी आलोचना की गई है। इनमें से अधिकांश कर्त्तव्यों का उल्लंघन पहले से ही विभिन्न कानूनों के तहत दंडनीय है। कुछ आलोचकों का मानना है कि मूल अधिकारों के साथ-साथ मूल कर्त्तव्यों को न्यायोचित दर्जा प्रदान करना अधिक उपयुक्त होता क्योंकि अधिकार एवं कर्त्तव्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
- **भारत के पूर्व महान्यायवादी, सी.के. दफ्तरी,** द्वारा मूल कर्त्तव्यों का विरोध किया गया। उन्होंने तर्क दिया कि अधिकांश नागरिक कानून का पालन करते है। अतः उन्हें उनके कर्त्तव्यों के बारे में बताने की आवश्यकता नहीं हैं। "जब तक लोग खुश एवं संतुष्ट होते हैं तब तक वे स्वयं अपने कर्त्तव्यों का पालन करते रहते हैं।"

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

1.9. प्रासंगिकता

- कर्त्तव्य, कई देशभक्त नागरिकों को अनुशासन एवं प्रतिबद्धता की समझ प्रदान करते हैं। अधिकारों का उपभोग करने के साथ-साथ नागरिकों के कुछ कर्त्तव्य भी होते हैं। मूल कर्त्तव्यों से न्यायालयों में कानूनों की संवैधानिक वैधता की जांच करने में सहायता मिली है। इस प्रकार, ये कर्त्तव्य होने से पहले एक महान शिक्षाप्रद मूल्य भी हैं। ये देश की एकता एवं अखंडता के साथ-साथ भूमण्डलीकृत एवं भौतिकवादी वैश्विक व्यवस्था में गौरवशाली भारतीय सांस्कृतिक परम्परा, मानववाद जैसे मूल्यों को भी सुरक्षा प्रदान करते है। वर्तमान वैश्विक समस्याओं जैसे पर्यावरणीय क्षरण आदि के समाधान के लिए भी प्रासंगिक है।

1.10. मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु कुछ सुझाव

- मूल कर्त्तव्यों एवं संवैधानिक मूल्यों के प्रति आम जनता को जागरुक करने के लिए राष्ट्रव्यापी अभियान चलाये जाने चाहिए। मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी एवं लोगों को जागरुक बनाने हेतु जस्टिस वर्मा समिति ने निम्न सुझाव दिए हैं-
    - भारत की संविधान की प्रस्तावना सहित सभी मूल कर्त्तव्य को सरकारी प्रकाशनों, कैलेंडर एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों पर दिखाया जाना चाहिए ताकि लोग इन्हें देखकर जागरुक हो सकें।
    - 3 जनवरी को 'मूल कर्त्तव्य दिवस' मनाया जाना चाहिए।
    - मूल कर्त्तव्यों को प्रभावी बनाने हेतु लोकपाल/अम्बुडसमैन जैसी स्वायत्त संस्थाओं का गठन किया जाना चाहिए।
    - मीडिया, रेडियो, समाचार पत्रों आदि के माध्यम से लोगों को इन मूल कर्त्तव्यों के प्रति जागरुक करना चाहिए।
    - इनको प्रभावी रूप प्रदान करने में गैर-सरकारी संगठनों (NGO) की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।
    - इन्हें हमेशा के लिए मूर्त रूप देना तभी संभव होगा जब प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शैक्षणिक स्तर पर सामूहिक परिचर्चा, भाषण, वर्कशॉप, निबंध आदि के माध्यम से इन कर्त्तव्यों के प्रति विद्यार्थियों को जीवन के प्रारम्भिक चरण में ही जागरुक किया जाये।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

7. संघ कार्यपालिका

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. राष्ट्रपति 4

1.1 कार्यपालिका प्रमुख 4

1.2 स्थायी कार्यपालिका एवं अस्थायी कार्यपालिका 5

1.3 राष्ट्रपति पद के लिए अर्हताएँ 6

1.4 राष्ट्रपति की पदावधि (Term of Office) 6

1.5 निर्वाचन प्रणाली 7

1.5.1 निर्वाचक मंडल (Electoral College) 7

1.5.2 निर्वाचन प्रक्रिया 8

1.5.3 निर्वाचन से संबंधित विवाद 9

1.5.4 समालोचनात्मक विश्लेषण 9

1.6 राष्ट्रपति के पद के लिए अन्य शर्तें 10

1.7 राष्ट्रपति पर महाभियोग (अनु. 61) 11

1.8 राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कर्तव्य 12

1.8.1 कार्यकारी शक्तियाँ 13

1.8.2 विधायी शक्तियाँ 15

1.8.3 आपातकालीन शक्तियाँ 16

1.8.4 वित्तीय शक्तियाँ 17

1.8.5 राजनयिक शक्तियाँ 17

1.8.6 सैन्य शक्तियाँ 17

1.8.7 न्यायिक शक्तियाँ 17

1.8.8 क्षमादान की शक्ति 17

1.8.9 वीटो पॉवर: विधेयकों पर अनुमति देना या अनुमति रोकना 20

1.8.9.1. अत्यांतिक वीटो (Absolute Veto) 20

1.8.9.2. निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto) 20

1.8.9.3. पॉकेट वीटो (Pocket Veto) 21

1.8.10 अध्यादेश जारी करने की शक्ति 21

1.8.11 प्रकीर्ण शक्तियाँ 24

1.9. राष्ट्रपति हेतु उपलब्ध परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार 24

1.10 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति 26

2. उपराष्ट्रपति 28

2.1 भूमिका 28

2.2 अर्हताएँ 28

2.3 निर्वाचन 29

2.4 पदावधि 29

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.5 पद रिक्तिता 29
2.6 शक्तियाँ और कार्य 30
2.7 भारत एवं अमेरिकी उपराष्ट्रपतियों की तुलना 30
3. प्रधानमंत्री 31
3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति 31
3.2 प्रधानमंत्री की शक्तियाँ और कार्य 32
3.2.1 मंत्रिपरिषद के संबंध में 32
3.2.2 राष्ट्रपति के संबंध में 32
3.2.3 संसद के संबंध में 32
3.2.4 अन्य शक्तियाँ और कार्य 32
3.3 प्रधानमंत्री का राज्यसभा का सदस्य होना 33
3.4 सरकार की प्रधानमंत्री प्रणाली 33
3.5 प्रधानमंत्री पद पर गठबंधन की राजनीति का प्रभाव 33
4. केंद्रीय मंत्रिपरिषद 34
4.1 मंत्रिपरिषद की नियुक्ति और कार्यकाल 34
4.2 मंत्रिपरिषद की संरचना 34
4.3 मंत्रिपरिषद के कार्य 35
5. मंत्रिमंडल (Cabinet) 35
5.1 मंत्रिमंडल के कार्य 35
5.2. मंत्रिमंडलीय समितियाँ (Cabinet Committees) 36
5.3. सरकार की संसदीय प्रणाली के कार्यकारी सिद्धांत 37
5.3.1 सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत (Principle of Collective Responsibility) 37
5.3.2 मंत्रियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व 37
5.3.3 प्रधानमंत्री की भूमिका 37
6. महान्यायवादी (Attorney General) 38
6.1 महान्यायवादी के कर्तव्य 38
6.2 अधिकार एवं मर्यादाएँ 38

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

भारत संसदीय प्रणाली पर आधारित एक गणतांत्रिक देश है। यहाँ ब्रिटेन की तर्ज़ पर लोकतंत्र की वेस्टमिंस्टर प्रणाली को अपनाया गया है जिसमें संसद विधि निर्माण की सर्वोच्च इकाई है। हालाँकि, देश के दैनिक प्रशासन हेतु एकमात्र प्राधिकारी एवं जवाबदेह, कार्यपालिका ही है। यह सरकार की वह शाखा है जो संसद द्वारा बनाए गए कानूनों का क्रियान्वयन सुनिश्चित करती है।

संघीय कार्यपालिका में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद, महान्यायवादी आदि सम्मिलित होते हैं। इसी तरह का ढांचा राज्यों के स्तर पर भी कार्य करता है जहाँ राज्य कार्यपालिका में राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद, महाधिवक्ता आदि सम्मिलित होते हैं।

1. राष्ट्रपति

- भारत में **'राष्ट्रप्रमुख'** के रूप में राष्ट्रपति के पद की व्यवस्था को अपनाया गया है। ब्रिटिश क्राउन और अमेरिकी राष्ट्रपति से भिन्न, संविधान निर्माताओं ने भारतीय व्यवस्था के अनुरूप इस पद के एक संतुलित स्वरूप को अपनाया। गणतांत्रिक प्रणाली होने के कारण संविधान में 'निर्वाचित राष्ट्रपति' के प्रावधान को शामिल किया गया।

1.1. कार्यपालिका प्रमुख

- मंत्रिमंडलीय कार्यपालिका में सामान्यतः दो प्रमुख होते हैं: एक 'वास्तविक प्रमुख' एवं दूसरा 'नाममात्र या औपचारिक प्रमुख'। भारत में राष्ट्रपति नाममात्र प्रमुख है तथा राष्ट्रपति कार्यालय की प्रकृति काफी सीमा तक औपचारिक है।

शासन व्यवस्था में औपचारिक प्रमुख की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है :

- **राष्ट्र प्रमुख के रूप में:** राष्ट्रपति देश की एकता, अखंडता एवं एकजुटता का प्रतीक है। अतः व्यवहारिक रूप से राजप्रमुख न होते हुए भी भारतीय राष्ट्रपति को राष्ट्रप्रमुख की भूमिका प्रदान की गयी है।
- **दलगत राजनीति से मुक्त रखने हेतु:** राष्ट्रपति कार्यालय को दलगत राजनीति से ऊपर माना जा सकता है।
- **प्रशासन की निरंतरता हेतु:** मंत्रिपरिषद का कार्यकाल अनिश्चित होता है और यह लोकसभा में बहुमत पर निर्भर करता है। ऐसे में प्रशासन में निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए एक निश्चित कार्यकाल वाले कार्यालय का होना आवश्यक है।
- **संघवादी स्वरूप को बनाए रखने हेतु:** भारत के संदर्भ में एक अतिरिक्त कारण, संघवाद भी है। राज्य विधानसभाओं के सदस्य भी राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेते हैं। इसलिए, यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति संघ के अतिरिक्त राज्यों का भी प्रतिनिधित्व करता है।

संविधान के भाग 5 के अनुच्छेद 52 से 78 तक में संघ की कार्यपालिका का वर्णन है।

- **अनुच्छेद 52 के अनुसार,** भारत का एक राष्ट्रपति होगा। यहाँ "होगा" शब्द के लिए "shall" का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ है कि भारत का राष्ट्रपति अपने पद पर **सदैव विद्यमान होगा**। यह पद न तो कभी रिक्त रखा जा सकता है और न ही इसे कभी समाप्त किया जा सकता है। राष्ट्रपति का चुनाव, इसके कार्यकाल की समाप्ति से पहले ही संपन्न करवाए जाने का प्रावधान किया गया है। अस्वस्थता के कारण अस्थायी अनुपस्थिति आदि के मामले में उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद धारण करेगा जब तक कि राष्ट्रपति अपना पदभार पुनर्ग्रहण न करें।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.2. स्थायी कार्यपालिका एवं अस्थायी कार्यपालिका

अनुच्छेद 53 (1) के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग इस संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा करेगा।

विवरण

- राष्ट्रपति, अपनी इस कार्यपालिकीय शक्ति का प्रयोग मुख्यतः दो प्रकार के अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करता है:
  - स्थायी कार्यपालिका या नौकरशाही
  - अस्थायी या राजनीतिक कार्यपालिका

स्थायी कार्यपालिका या नौकरशाही

- स्थायी कार्यपालिका के अंतर्गत अखिल भारतीय सेवाएँ (IAS, IPS, IFoS), प्रांतीय सेवाएँ, स्थानीय सरकार के कर्मचारी और लोक उपक्रमों के तकनीकी एवं प्रबंधकीय अधिकारी सम्मिलित होते हैं।

नौकरशाही अथवा स्थायी कार्यपालिका की आवश्यकता क्यों?

- संविधान निर्माता ब्रिटिश शासन के दौरान अपने अनुभव से गैर-राजनीतिक एवं व्यावसायिक रूप से दक्ष प्रशासनिक मशीनरी के महत्व को जानते थे।
- नौकरशाही, वह माध्यम है जिसके द्वारा सरकार की लोकहितकारी नीतियाँ जनता तक पहुँचती हैं।
- सरकार के स्थायी कर्मचारी के रूप में कार्य करनेवाले ये प्रशिक्षित एवं प्रवीण अधिकारी, नीतियों को बनाने व उसे लागू करने में मंत्रियों का सहयोग करते हैं।
- वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में नीति-निर्माण एक अत्यंत ही जटिल कार्य बन गया है जिसके लिए विशेषज्ञता एवं गहन ज्ञान की आवश्यकता है। इसके लिए दक्ष एवं स्थायी कार्यपालिका की आवश्यकता है।
- राजनीतिक या अस्थायी कार्यपालिका का ध्यान सामान्यत: नीति-निर्माण एवं क्रियान्वयन में अल्पकालीन राजनीतिक लाभ पर केंद्रित होता है। जबकि, स्थायी कार्यपालिका दीर्घकालीन सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए ही नीति-निर्माण एवं क्रियान्वयन में मंत्रियों को परामर्श देती है।
- सरकारों के बदलने के बावजूद भी स्थायी कार्यपालिका, नीतियों में निरंतरता एवं लोकप्रशासन में एकरूपता बनाए रखने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है।

स्थायी कार्यपालिका एवं राजनीतिक कार्यपालिका के मध्य संबंध

- संसदीय शासन प्रणाली में, राजनीतिक कार्यपालिका (मंत्रीपरिषद, प्रधानमंत्री सहित) सरकार के प्रभारी होते हैं एवं स्थायी कार्यपालिका या प्रशासन इनके नियंत्रण एवं देखरेख में होता है।
- यह मंत्री की जिम्मेदारी है कि वह प्रशासन पर राजनीतिक नियंत्रण रखे।
- राजनीतिक कार्यपालिका, जहाँ सामूहिक रूप से लोकसभा या विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है, वहीं स्थायी कार्यपालिका या नौकरशाही अपने संबंधित विभागों के मंत्रियों के प्रति उत्तरदायी होती है।
- नौकरशाही से यह अपेक्षा की जाती है कि यह राजनीतिक रूप से तटस्थ हो, अर्थात् नौकरशाही, नीतियों पर विचार करते समय किसी राजनीतिक दृष्टिकोण या विचारधारा का समर्थन नहीं करेगी।
- लोकतंत्र में सरकारों के बदलने पर नौकरशाही की जिम्मेदारी है कि वह नई सरकार को अपनी नीति बनाने एवं लागू करने में मदद करे।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

शासन की राष्ट्रपतीय प्रणाली

हमारा संविधान राष्ट्रपति के पद का सृजन करता है किंतु शासन की प्रणाली राष्ट्रपतीय नहीं है। शासन की राष्ट्रपतीय और संसदीय प्रणाली को समझना एवं उनके भेद जानना आवश्यक है। राष्ट्रपति प्रणाली के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं:

- राष्ट्रपति राज्य का अध्यक्ष होता है और साथ ही शासनाध्यक्ष भी। वह राज्य व्यवस्था में शीर्षस्थ होता है। वह वास्तव में कार्यपालक होता है, नाममात्र का नहीं। उसमें जो शक्तियाँ निहित हैं उनका वह व्यवहार में और वास्तव में उपयोग करता है।
- सभी कार्यपालिका शक्तियाँ राष्ट्रपति में निहित होती हैं। राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मंत्रिमंडल उसे केवल सलाह देता है। यह आवश्यक नहीं है कि वह उनकी सलाह माने। वह उनकी सलाह लेकर अपने विवेक के अनुसार कार्य कर सकता है।
- राष्ट्रपति जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। राष्ट्रपति के पद की अवधि विधान-मंडल की इच्छा पर आश्रित नहीं है। विधान-मंडल न तो राष्ट्रपति का निर्वाचन करता है और न उसे उसके पद से हटा सकता है।
- राष्ट्रपति और मंत्रिमंडल के सदस्य, विधान मंडल के सदस्य नहीं होते हैं। राष्ट्रपति विधान-मंडल की अवधि के अवसान के पूर्व उसका विघटन नहीं कर सकता। विधान-मंडल राष्ट्रपति की पदावधि को महाभियोग द्वारा ही समाप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार राष्ट्रपति और विधान-मंडल नियत अवधि के लिए निर्वाचित होते हैं और एक दूसरे से स्वतंत्र होते हैं। एक का दूसरे में हस्तक्षेप नहीं होता।

1.3 राष्ट्रपति पद के लिए अर्हताएँ

अनु. 58 के अनुसार राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए एक व्यक्ति को निम्नलिखित अर्हताओं को पूर्ण करना आवश्यक है:

- वह भारत का नागरिक हो।
- वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
- वह लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने के योग्य हो।
- वह संघ सरकार अथवा किसी राज्य सरकार अथवा किसी स्थानीय प्राधिकरण अथवा किसी सार्वजनिक प्राधिकरण में लाभ के पद पर न हो।

1.4 राष्ट्रपति की पदावधि (Term of Office)

- **अनु. 56 के अनुसार**, राष्ट्रपति की पदावधि, उसके पद धारण करने की तिथि से पांच वर्ष तक होती है। हालाँकि वह निम्नलिखित रीतियों से अपने कार्यकाल के दौरान ही पदमुक्त हो सकता है:
  - भारत के उपराष्ट्रपति को लिखित में त्यागपत्र सौंपकर।
  - संविधान का अतिक्रमण करने पर अनुच्छेद 61 में वर्णित महाभियोग की प्रक्रिया द्वारा उसे पदमुक्त किया जा सकता है। अनु. 61(1) के तहत, महाभियोग हेतु एकमात्र आधार 'संविधान का अतिक्रमण' उल्लिखित है।
- यदि राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, त्यागपत्र, निष्कासन अथवा किन्हीं अन्य कारणों से रिक्त हो तो उपराष्ट्रपति, नये राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। यदि उपराष्ट्रपति का पद रिक्त हो, तो भारत का मुख्य न्यायाधीश (और यदि यह भी पद रिक्त हो तो उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश) कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।
- पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर नए राष्ट्रपति का चुनाव करवाया जाना आवश्यक है। वर्तमान या भूतपूर्व राष्ट्रपति, संविधान के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए इस पद के लिए पुनर्निर्वाचन का पात्र होगा।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.5 निर्वाचन प्रणाली

- भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन (अनु. 55) के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत पद्धति को अपनाया गया है। इस पद्धति के तहत निर्वाचन, गुप्त मतदान के माध्यम से एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जाता है।
- भारत के राष्ट्रपति के निर्वाचन के लिए सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप से अप्रत्यक्ष चुनाव प्रक्रिया को अपनाया गया है। (अमेरिकी राष्ट्रपति की निर्वाचन प्रक्रिया सैद्धांतिक रूप से अप्रत्यक्ष जबकि व्यावहारिक रूप से प्रत्यक्ष है।)

1.5.1 निर्वाचक मंडल (Electoral College)

निर्वाचक मंडल में सम्मिलित होते हैं:

- संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य।
- राज्यों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य।
- दिल्ली और पुदुचेरी संघ शासित प्रदेशों की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य (70वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 द्वारा शामिल)।

इसका अर्थ है कि निम्नलिखित सदस्यों को राष्ट्रपति चुनाव में मतदान करने की अनुमति **नहीं** है:

- लोकसभा के मनोनीत सदस्यों को
- राज्यसभा के मनोनीत सदस्यों को
- राज्य विधानसभा के मनोनीत सदस्यों को
- राज्यों की विधानपरिषदें के निर्वाचित एवं मनोनीत सदस्यों को

- राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव से संबंधित मामलों को विधि द्वारा विनियमित करने का अधिकार संसद को प्राप्त है। राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति निर्वाचन अधिनियम के तहत राष्ट्रपति के पद के लिए नामांकन हेतु एक उम्मीदवार के पास कम से कम 50 प्रस्तावक (electors as proposers) एवं 50 अनुमोदक (electors as seconders) {निर्वाचक (electors) से यहाँ तात्पर्य राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल (electoral college) के सदस्यों से है} होने चाहिए।
- जहाँ तक संभव हो, प्रत्येक राज्य की जनसंख्या एवं विधानसभा के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या के अनुसार राष्ट्रपति के चुनाव में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व में एकरूपता होनी चाहिए। साथ ही, सभी राज्यों एवं संघ के मध्य भी समानता होनी चाहिए (अनु-55)। दूसरी शर्त यह सुनिश्चित करती है कि राष्ट्रपति चुनाव के निर्वाचक मंडल में राज्यों के विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों का समग्र मत मूल्य, संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों के मत मूल्यो के लगभग बराबर हो। इस प्रकार, राष्ट्रपति राष्ट्र का प्रतिनिधि होने के साथ-साथ विभिन्न राज्यों के लोगों का भी प्रतिनिधि होगा।
- विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधित्व में एकरूपता सुनिश्चित करने के क्रम में यह प्रावधान किया गया है कि एक राज्य की विधान सभा के प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मत का मूल्य उस राज्य की जनसंख्या को, उस राज्य की विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों एवं 1000 के गुणनफल से प्राप्त संख्या द्वारा भाग देने पर प्राप्त संख्या के समान होता है। सरल शब्दों में निर्वाचक मंडल के प्रत्येक सदस्य, जो किसी राज्य विधान सभा का एक सदस्य है, के मतों के मूल्य की गणना निम्नलिखित सूत्र से की जाती है:

एक विधायक के मत का मूल्य = राज्य की कुल जनसंख्या / (राज्य विधानसभा के निर्वाचित कुल सदस्य * 1000)

(0.5 से बड़ी भिन्न संख्या को 01 एवं अन्य भिन्नों को शून्य माना जाएगा।)

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

निम्नलिखित उदाहरण के माध्यम से इस मतगणना विधि को और अधिक स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है:

- मान लीजिए, अविभाजित आंध्रप्रदेश राज्य की जनसंख्या 37,129,852 और विधानसभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या 276 है। राष्ट्रपति के चुनाव में प्रत्येक निर्वाचित सदस्य द्वारा डाले जाने वाले मतों का मूल्य ज्ञात करने के लिए हम पहले 37,129,852 (राज्य की जनसंख्या) को 276 (कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या) से विभाजित करते है और इस से प्राप्त भागफल को 1/1000 से गुणन करते हैं। इससे यह 134,528.449/1000 भागफल प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रत्येक निर्वाचित सदस्य के मतों का मूल्य 134,528.449/1000 अर्थात् **135** (यहाँ दशमलव संख्या 0.528 जो 0.5 से अधिक है, इसलिए 01 मानी जाएगी) होगा।
- संसद के प्रत्येक सदन के निर्वाचित सदस्य (MP) के मतों का मूल्य, सभी राज्यों के विधायकों के मतों के मूल्य को संसद के कुल निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग देने पर प्राप्त होती है।

एक संसद सदस्य के मतों का मूल्य = (सभी राज्यों के विधायकों के मतों का कुल मूल्य) / (संसद के निर्वाचित सदस्यों की कुल संख्या)

(0.5 से बड़ी भिन्न संख्या को 01 एवं अन्य भिन्नों को शून्य माना जाएगा।)

- राष्ट्रपति का चुनाव आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार एकल संक्रमणीय मत एवं गुप्त मतदान द्वारा होता है जो सफल उम्मीदवार की पूर्ण बहुमत से जीत सुनिश्चित करता है। किसी उम्मीदवार को, राष्ट्रपति के चुनाव में निर्वाचित होने के लिए, मतों का एक निश्चित कोटा प्राप्त करना आवश्यक है। मतों का यह निश्चित कोटा, कुल वैध मतों की संख्या में, निर्वाचित होने वाले कुल उम्मीदवारों (यहाँ केवल एक ही उम्मीदवार राष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित होता है) की संख्या में एक जोड़कर प्राप्त संख्या द्वारा, भाग देने पर भागफल में एक जोड़कर प्राप्त होता है। इस सूत्र को निम्नलिखित तरीके से दर्शाया जा सकता है:

निश्चित मतों का कोटा = [कुल वैध मत / (1+1=2)] + 1

1.5.2 निर्वाचन प्रक्रिया

- निर्वाचक मंडल के प्रत्येक सदस्य को केवल एक मतपत्र दिया जाता है। मतदाता को मतदान करते समय उम्मीदवारों के नाम के आगे अपनी वरीयता 1, 2, 3, 4 आदि अंकित करनी होती है। इस प्रकार मतदाता उम्मीदवारों की उतनी वरीयता दे सकता है, जितने उम्मीदवार होते हैं।
- प्रथम चरण में, प्रथम वरीयता के मतों की गणना होती है। यदि उम्मीदवार निर्धारित मत प्राप्त कर लेता है तो वह निर्वाचित घोषित हो जाता है अन्यथा मतों के स्थानान्तरण (transfer) की प्रक्रिया अपनाई जाती है। प्रथम वरीयता के न्यूनतम मत प्राप्त करने वाले उम्मीदवार के मतों को रद्द कर दिया जाता है तथा इसके द्वितीय वरीयता के मत अन्य उम्मीदवारों के प्रथम वरीयता के मतों में स्थानांतरित कर दिए जाते हैं, यह प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक कोई उम्मीदवार निर्धारित मत प्राप्त नहीं कर लेता।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.5.3 निर्वाचन से संबंधित विवाद

- अनुच्छेद 71 के अनुसार, राष्ट्रपति चुनाव से संबंधित सभी विवादों की जांच व निर्णय **भारत के उच्चतम न्यायालय** (अन्य न्यायालयों का इस पर कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है) द्वारा किए जायेंगे, जिसका अधिकार क्षेत्र विशिष्ट और अंतिम होगा। राष्ट्रपति पद के चुनाव से संबंधित किसी चुनाव याचिका को चुनाव परिणाम की घोषणा के प्रकाशन की तिथि से 30 दिनों के भीतर सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता है। इसे चुनाव में भाग लेने वाले किसी भी उम्मीदवार द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है या याचिकाकर्ता के रूप में किन्हीं बीस या उससे अधिक मतदाताओं को एक साथ शामिल कर भी याचिका प्रस्तुत की जा सकती है। याचिका केवल दो आधारों पर दी जा सकती है:
  - उम्मीदवार का नामांकन गलत तरीके से खारिज किया गया है, या
  - निर्वाचित उम्मीदवार को गलत तरीके से विजयी घोषित किया गया है।
- चुनाव को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि निर्वाचक मंडल अपूर्ण (निर्वाचक मंडल के किसी सदस्य का पद रिक्त होने पर) है।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्वाचन को अवैध घोषित किये जाने की स्थिति में, उच्चतम न्यायालय के निर्णय से पूर्व राष्ट्रपति द्वारा किये गए कार्य अवैध नहीं माने जायेंगे तथा प्रभावी बने रहेंगे।

1.5.4 समालोचनात्मक विश्लेषण

- इस अप्रत्यक्ष चुनाव प्रणाली की कुछ विद्वानों द्वारा आलोचना की गई क्योंकि यह लोकतंत्र के अन्तर्निहित आदर्श सार्वभौमिक मताधिकार का पालन नहीं करती है। लेकिन संविधान निर्माताओं द्वारा, निम्नलिखित आधारों पर अप्रत्यक्ष चुनाव का समर्थन किया गया:
  - भारत जैसे देश में विस्तृत निर्वाचक मंडल द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव से समय, ऊर्जा और धन का अत्यधिक अपव्यय होगा।
  - संविधान द्वारा प्रदत्त उत्तरदायी सरकार की प्रणाली के तहत वास्तविक शक्ति मंत्रिमंडल में निहित होगी। अतः प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति को वास्तविक शक्तियाँ न देना, एक अव्यवस्था होगी।
- संविधान सभा के कुछ सदस्यों ने सुझाव दिया था कि राष्ट्रपति का चुनाव केवल संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होना चाहिए। संविधान निर्माताओं ने इसे प्राथमिकता नहीं दी क्योंकि संसद में एक दल का बहुमत होता है, जो निश्चित तौर पर उसी दल के उम्मीदवार को चुनेगा और ऐसा राष्ट्रपति भारत के सभी राज्यों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता। वहीं दूसरी तरफ, वर्तमान व्यवस्था में राष्ट्रपति संघ तथा सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व करता है।
- इसके अतिरिक्त, संविधान सभा में यह कहा गया कि राष्ट्रपति के चुनाव में **'आनुपातिक प्रतिनिधित्व'** शब्द का प्रयोग गलत है। आनुपातिक प्रतिनिधित्व का प्रयोग दो अथवा अधिक व्यक्तियों के निर्वाचन (बहुसदस्यीय निर्वाचन) हेतु होता है। राष्ट्रपति के मामले में, पद केवल एक ही है। बेहतर होता कि इसे प्राथमिक अथवा वैकल्पिक व्यवस्था कहा जाता। इसी प्रकार 'एकल संक्रमणीय मत' के अर्थ की इस आधार पर आलोचना की गई कि किसी भी मतदाता का मत एकल न होकर बहुसंख्यक होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

1.6 राष्ट्रपति के पद के लिए अन्य शर्तें

- राष्ट्रपति को संसद के किसी भी सदन अथवा राज्य विधायिका का सदस्य नहीं होना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि यदि ऐसा कोई सदस्य राष्ट्रपति निर्वाचित होता है तो यह समझा जाएगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान राष्ट्रपति के रूप में अपने पद ग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है।
- राष्ट्रपति कोई अन्य लाभ का पद धारण नहीं करेगा।
- राष्ट्रपति, बिना किराया दिए अपने शासकीय निवासों के उपयोग का हक़दार होगा।
- राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ और भत्ते उसकी पदावधि के दौरान कम नहीं किये जायेंगे।

रिक्तता की स्थिति	राष्ट्रपति के पद पर कौन कार्य करेगा
पाँच वर्षीय कार्यकाल की समाप्ति	कार्यकाल समाप्त होने से पूर्व चुनाव करवा लेना आवश्यक है। यदि चुनाव में किसी कारण कोई देरी हो तो वर्तमान राष्ट्रपति अपने पद पर बना रहेगा, जब तक कि उसका उत्तराधिकारी कार्यभार ग्रहण ना कर ले।
उसकी मृत्यु द्वारा	उपराष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। चुनाव, पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर हो जाना चाहिए।
उसके त्याग पत्र द्वारा	उपराष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। चुनाव, पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर हो जाना चाहिए।
महाभियोग द्वारा उसे पद से हटाने पर	उपराष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। चुनाव, पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर हो जाना चाहिए।
अन्यथा, जैसे यदि वह पद धारण करने के लिए अयोग्य हो गया हो	उपराष्ट्रपति, नए राष्ट्रपति के निर्वाचित होने तक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा। चुनाव, पद रिक्त होने की तिथि से छह महीने के भीतर हो जाना चाहिए।
अस्वस्थता या भारत में अनुपस्थिति पर	उपराष्ट्रपति उसके पुनः पद ग्रहण करने तक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।

नोट: यदि उपराष्ट्रपति का पद रिक्त हो तो भारत का मुख्य न्यायाधीश (अथवा उसका भी पद रिक्त होने पर उच्चतम न्यायालय का वरिष्ठतम न्यायाधीश) कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करेगा।
राष्ट्रपति डा. जाकिर हुसैन की मृत्यु की वजह से पद रिक्त होने के कारण राष्ट्रपति के रूप में कार्य कर रहे उप राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने जब 1969 में उप राष्ट्रपति के पद से इस्तीफा दे दिया, तब भारत के मुख्य न्यायाधीश श्री एम. हिदायतुल्ला ने राष्ट्रपति के रूप में कार्य किया।

VISION IAS

1.7 राष्ट्रपति पर महाभियोग (अनु. 61)

- महाभियोग संसद में संपन्न होने वाली एक अर्द्ध-न्यायिक प्रक्रिया है। राष्ट्रपति को **'संविधान का अतिक्रमण'** करने पर उसके पद से महाभियोग प्रक्रिया द्वारा हटाया जा सकता है। हालाँकि संविधान, 'संविधान का अतिक्रमण' वाक्यांश के अर्थ को परिभाषित नहीं करता।
- राष्ट्रपति के विरुद्ध संविधान के अतिक्रमण का आरोप संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है। एक सदन द्वारा इस प्रकार का आरोप लगाए जाने पर दूसरा सदन उस आरोप का अन्वेषण करेगा या करवाएगा।
- राष्ट्रपति के विरूद्ध आरोप संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किए जा सकते हैं। आरोप एक प्रस्थापना के रूप में होगा और प्रस्थापना संकल्प में होगी। संकल्प को प्रस्तावित करने की सूचना पर सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम एक चौथाई सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे। इस हेतु 14 दिनों की अग्रिम सूचना देना आवश्यक है। संकल्प उस सदन की कुल सदस्य संख्या के कम से कम दो तिहाई बहुमत से पारित किया जाना चाहिए।
- जब एक सदन द्वारा इस प्रकार आरोप लगाया जाता है तो दूसरे सदन द्वारा उसका अन्वेषण होगा। राष्ट्रपति को ऐसे अन्वेषण में उपस्थित होने का तथा अपना प्रतिनिधित्व करवाने का अधिकार होगा, अर्थात् राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में कोई अधिवक्ता या अन्य व्यक्ति उपस्थित हो सकता है। सदन अन्वेषण का काम किसी न्यायालय या अधिकरण को प्रत्यायोजित कर सकता है। यदि अन्वेषण के पश्चात् सदन दो तिहाई बहुमत से संकल्प पारित करके यह घोषित कर देता है कि आरोप सिद्ध हो गया है तो ऐसे संकल्प का प्रभाव उसके पारित किए जाने की तारीख से राष्ट्रपति को उसके पद से हटाना होगा।

अमरीका में सीनेट को महाभियोग के विचारण का अधिकार है, कांग्रेस को नहीं। विचारण की अध्यक्षता उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति करता है। हटाए जाने का संकल्प विचारण में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से पारित होता है।

- चूँकि संविधान राष्ट्रपति को हटाने का आधार और तरीका प्रदान करता है, अतः अनुच्छेद 56 और 61 की शर्तों के अनुरूप महाभियोग के अतिरिक्त उसे और किसी भी तरीके से नहीं हटाया जा सकता है।

स्पष्टीकरण

- 'महाभियोग' इतना असाधारण शब्द है कि इसको गलत समझा जा सकता है। एक सामान्य गलत अवधारणा यह है कि इसे 'पद से जबरन हटाना' समझा जाता है।
- 'महाभियोग' शब्द ब्रिटिश परम्परा से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ किसी सरकारी अधिकारी को बिना किसी सरकारी अनुबंध के तथा महाभियोग द्वारा दोषसिद्ध हो जाने पर उसके पद से हटाना है। भारत में, यह एक अर्द्ध-न्यायिक प्रक्रिया है और केवल राष्ट्रपति को संविधान के अतिक्रमण के आधार पर महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है।
    - संसद के दोनों सदनों के नामांकित सदस्य जिन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग नहीं लिया था, महाभियोग में भाग ले सकते हैं।
    - राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य तथा दिल्ली और पुदुचेरी केन्द्रशासित प्रदेश के विधानसभाओं के सदस्य महाभियोग प्रस्ताव में भाग नहीं लेते हैं, भले ही उन्होंने राष्ट्रपति के चुनाव में भाग लिया था।
- अभी तक भारत में किसी भी राष्ट्रपति पर महाभियोग नहीं चलाया गया है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8 राष्ट्रपति की शक्तियाँ एवं कर्तव्य

- संविधान के अनुसार, संघ की समस्त कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। 'कार्यपालिका शक्ति' मुख्य रूप से विधानमंडल द्वारा पारित कानूनों के क्रियान्वयन को दर्शाता है। राज्य के कार्यों में अत्यधिक विस्तार होने के कारण, सभी अवशिष्ट कार्यों को व्यावहारिक रूप से कार्यपालिका के हाथों में सौंप दिया गया है। कार्यपालिका शक्ति को संक्षिप्त रूप में, उन मामलों को छोड़कर जिसके लिए संविधान ने किसी और को अधिकृत किया है, शेष सभी के लिए, 'सरकार के कार्यों को पालन करने की शक्ति' या 'राज्य के मामलों का प्रशासन' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इस प्रकार, कार्यपालिका शक्तियों में प्रमुख रूप से नीतिनिर्माण, नीति क्रियान्वयन, व्यवस्था को बनाए रखना, सामाजिक और आर्थिक कल्याण को बढ़ावा देना, विदेश नीति की रूप रेखा तैयार करना, राज्य के सामान्य प्रशासन की देखरेख करना आदि शामिल हैं।

राष्ट्रपति की शक्तियों पर संवैधानिक सीमाएँ

- अनुच्छेद 74(1) के अनुसार, भारत का राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका शक्तियों का प्रयोग मंत्रिपरिषद की सलाह पर करेगा।
- अनुच्छेद 75(1) स्पष्ट रूप से यह प्रावधान करता है कि मंत्रियों (प्रधानमंत्री को छोड़कर) की नियुक्ति प्रधानमंत्री की सलाह पर की जाती है। यदि राष्ट्रपति प्रधानमन्त्री द्वारा उपलब्ध करवायी गयी सूची से अलग किसी अन्य व्यक्ति को मंत्री नियुक्त करता है तो यह इस प्रावधान का उल्लंघन होगा। यदि राष्ट्रपति संविधान के अनिवार्य प्रावधानों का उल्लंघन करता है तो वह महाभियोग की प्रक्रिया के तहत पद से हटाये जाने के लिए उत्तरदायी होगा।

42वाँ संविधान संशोधन

- 1976 के पहले, राष्ट्रपति संवैधानिक प्रावधानों के तहत मंत्रिपरिषद की सलाह पर काम करने के लिए बाध्य नहीं था। यद्यपि न्यायिक रूप से यह स्पष्ट कर दिया गया था कि राष्ट्रपति संवैधानिक प्रमुख है न कि वास्तविक प्रमुख तथा वह मंत्रिपरिषद की सलाह को मानने के लिए बाध्य है, बशर्ते उन्हें लोकसभा में विश्वासमत प्राप्त हो। 42वें संविधान संशोधन, 1976 के तहत अनु. 74(1) में संशोधन करके इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है।

अनु. 74(1) संशोधन के बाद अब इस रूप में है:

"राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

- यह अनुच्छेद राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करने हेतु बाध्य करता है।
- जनता दल की सरकार ने 42वें संविधान संशोधन द्वारा अनु. 74(1) के संशोधित स्वरूप को बनाए रखा। लेकिन, 44वें संशोधन अधिनियम, द्वारा एक अन्य प्रावधान जोड़ा गया जो इस प्रकार है:

"राष्ट्रपति ऐसी सलाह पर पुनर्विचार के लिए अपेक्षा कर सकेगा और पुनर्विचार के पश्चात् दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा।"

- 44वें संविधान संशोधन के बाद वर्तमान स्थिति यह है कि राष्ट्रपति को प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में गठित मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार ही कार्य करना होगा। इसलिए, इस तरह की सलाह को इंकार करने की स्थिति में उसपर संविधान के अतिक्रमण के मामले में महाभियोग चलाया जा सकेगा। लेकिन, यह राष्ट्रपति की शक्तियों के अधीन है कि वह कुछ विशेष मामलों में मंत्रिपरिषद के द्वारा प्राप्त सलाह को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकेगा।
- हालाँकि, यदि मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति को बिना संशोधन के ही परामर्श को वापस भेज दे तो राष्ट्रपति के पास इसे मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं होगा। किसी एक मामले में पुनर्विचार के लिए वापस करने की शक्ति का प्रयोग एक बार ही किया जा सकता है। राष्ट्रपति द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियों व कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत रखा जा सकता है:

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.1 कार्यकारी शक्तियाँ

- अनु. 53 राष्ट्रपति को संघ की समस्त कार्यकारी शक्तियाँ प्रदान करता है। औपचारिक रूप से सभी कार्य उसी के नाम पर किए जाते हैं। इन शक्तियों का प्रयोग उसके द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या संविधान द्वारा प्रदत्त उसके अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से किया जाता है।
- राष्ट्रपति अपने नाम से निर्मित किये जाने वाले तथा लागू किये जाने वाले आदेशों के लिए ऐसे नियम बना सकता है, जिनकी पूर्ति की स्थिति में वे आदेश वैध एवं प्रमाणित हों।
- वह प्रधानमन्त्री एवं अन्य मंत्रियों की नियुक्ति करता है तथा सभी मंत्री उसके प्रसादपर्यंत कार्य करते हैं।
- वह भारत के महान्यायवादी की नियुक्ति करता है तथा उसके वेतन आदि का निर्धारण करता है। महान्यायवादी भी राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत कार्य करता है।
- राष्ट्रपति निम्नलिखित पदाधिकारियों को नियुक्त करता है:
  - भारत का प्रधानमंत्री और संघ के अन्य मंत्री
  - भारत का महान्यायवादी
  - भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक
  - मुख्य निर्वाचन आयुक्त और अन्य निर्वाचन आयुक्त
  - संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्य
  - वित्त आयोग के अध्यक्ष और सदस्य
  - उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश
  - राज्यपाल, उपराज्यपाल और प्रशासक
  - अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए विशेष अधिकारी
  - भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए विशेष अधिकारी
- कुछ नियुक्तियों में, राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्तियों से सलाह लेता है। उदाहरण के लिए, उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश की सलाह लेगा और उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के ऐसे अन्य न्यायाधीशों, जिनसे वह आवश्यक समझे, सलाह लेगा। [अनु. 124(2)]
- ऊपर निर्दिष्ट अधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति के अतिरिक्त, भारतीय संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अवर अधिकारियों की नियुक्ति की शक्ति नहीं है जैसा कि अमेरिकी संविधान में पाया जाता है। इस प्रकार, भारतीय संविधान अमेरिका की तरह अवांछनीय **'लूट प्रणाली (Spoil system)'** से बचाव करता है। बल्कि यह उच्च अधिकारियों की नियुक्ति को संसद के लिए एक विधायी विषय बना देता है तथा इसके तहत राष्ट्रपति के लिए नियुक्ति से संबंधित मामलों में (कुछ निर्दिष्ट मामलों को छोड़कर) लोक सेवा आयोग से सलाह लेना अनिवार्य है।
- राष्ट्रपति, संघ के प्रशासन के मामलों से संबंधित और विधायिका से संबंधित किसी भी प्रस्ताव की जानकारी मांग सकता है।
- वह किसी ऐसे मामले, जिसमें किसी मंत्री द्वारा निर्णय लिया गया है लेकिन मंत्रिपरिषद ने उस पर विचार नहीं किया है, के संबंध में प्रधानमंत्री को मंत्रिपरिषद की राय प्रस्तुत करने को कह सकता है।
- वह अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों की स्थिति की जांच के लिए एक आयोग नियुक्त कर सकता है।
- वह केंद्र-राज्य और अंतर राज्यीय सहयोग को बढ़ावा देने के लिए एक अंतर राज्यीय परिषद् का गठन कर सकता है।
- वह स्वयं द्वारा नियुक्त प्रशासकों के माध्यम से केन्द्रशासित प्रदेशों का प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से सम्भालता है।
- वह किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकता है। राष्ट्रपति को अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन की शक्तियाँ प्राप्त हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अनुसूचित/जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति की शक्तियाँ:

- किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र के रूप में घोषित करने की शक्ति।
- किसी क्षेत्र के अनुसूचित क्षेत्र न रहने की घोषणा करने की शक्ति।
- जनजातीय सलाहकार समिति के गठन की शक्ति।
- किसी राज्य के अनुसूचित क्षेत्र में शांति और सुशासन के लिए, राज्यपाल क़ानून बना सकता है। ऐसे कानून तब तक प्रभावी नहीं होंगें जब तक कि राष्ट्रपति के समक्ष उसे विचार के लिए प्रस्तुत न किया गया हो और वह उस पर अपनी सहमति न दे दे।
- राष्ट्रपति, क्षेत्र के प्रशासन पर राज्यपाल से रिपोर्ट तैयार करने की मांग कर सकता है।
- राष्ट्रपति ऐसे क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में निर्देश जारी कर सकता है।

संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार

अनुच्छेद 73 प्रावधान करता है:

1. उन सभी विषयों पर, जिन पर संसद को क़ानून बनाने का अधिकार है, संघीय कार्यपालिका को भी ऐसी ही शक्तियाँ प्राप्त होंगी।
2. किसी संधि या करार के आधार पर भारत सरकार द्वारा प्रयोक्तव्य अधिकारों, प्राधिकार और आधिकारिता के प्रयोग तक।
3. समवर्ती सूची के संबंध में, सामान्यतया कार्यकारी शक्तियाँ राज्यों को ही प्राप्त हैं। लेकिन, यदि संसद विशेष रूप से संघ कार्यकारी को इस पर क़ानून बनाने का अधिकार दे दे तो संघ अपने इस अधिकार का प्रयोग कर सकेगा।

इसके अतिरिक्त, **अनुच्छेद 53(3)** प्रावधान करता है कि:

यदि संसद द्वारा कोई क़ानून पारित कर उसके तहत किसी राज्य या अन्य किसी प्राधिकारी को कार्य करने का अधिकार दिया जाए तो इसे राष्ट्रपति के पास स्थानांतरित हुआ नहीं समझा जाएगा। विशेष रूप से, अनु. 53 के द्वारा संसद, राष्ट्रपति के अतिरिक्त किसी भी प्राधिकारी को क़ानून के द्वारा कोई भी कार्यकारी कार्य करने के लिए निर्देशित कर सकती है।

राष्ट्रपति द्वारा कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग का तरीका

- अनु. 53(1) के तहत प्रावधान किया गया है कि कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा प्रत्यक्ष रूप से या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के द्वारा किया जाएगा।
- यहाँ, अधीनस्थ अधिकारियों में मंत्रिपरिषद भी शामिल है।
- विशेष रूप से, इस अनुच्छेद को अनुच्छेद 74 के साथ समझा जाना चाहिए जिसके अनुसार राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रधान प्रधानमंत्री होगा।
- इस अनुच्छेद के अनुसार शब्द "होगी" का आशय है कि संविधान ऐसी स्थिति का प्रावधान नहीं करता है कि राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह के बिना कार्य करे। इस मामले में, यदि सरकार ने बहुमत खो दिया हो तो राष्ट्रपति एक कार्यवाहक सरकार का गठन कर सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि वह मौजूदा सरकार को अगली सरकार के गठन होने तक पद पर बने रहने के लिए कह सकता है।

कार्यों के आवंटन और सम्पादन के संबंध में राष्ट्रपति की शक्तियाँ

अनु.77 प्रावधान करता है कि:

1. भारत सरकार के सभी कार्यकारी कार्य राष्ट्रपति के नाम से किये जाएँगे।
2. राष्ट्रपति के नाम से किए गए एवं निष्पादित आदेशों और अन्य लिखतों को ऐसी रीति से प्रमाणित किया जायेगा जो राष्ट्रपति द्वारा बनाए जाने वाले नियमों में विनिर्दिष्ट किया जाए और इस प्रकार प्रमाणित आदेश की विधिमान्यता को प्रश्नगत नहीं किया जायेगा कि वह राष्ट्रपति द्वारा निष्पादित आदेश या लिखत नहीं है।
3. राष्ट्रपति, भारत सरकार का कार्य अधिक सुविधाजनक किए जाने के लिए और मंत्रियों में उक्त कार्य के आवंटन के लिए नियम बनाएगा।

हालाँकि, राष्ट्रपति की कार्यकारी शक्तियाँ उसकी अन्य शक्तियों की तरह ही मंत्रिपरिषद, जिसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री करते हैं, की सलाह के अधीन हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.2 विधायी शक्तियाँ

राष्ट्रपति, भारतीय संसद का अभिन्न अंग है। उसे निम्नलिखित विधायी शक्तियाँ प्राप्त है:

- राष्ट्रपति, संसद के सत्र को आहूत या सत्रावसान कर सकता है और लोकसभा को विघटित कर सकता है। वह संसद के संयुक्त अधिवेशन का आह्वान कर सकता है (साधारण विधेयक के मामले में) जिसकी अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष द्वारा की जाती है।
- वह प्रत्येक नए आम चुनाव के बाद तथा प्रति वर्ष संसद के प्रथम अधिवेशन को संबोधित करता है। इसके अतिरिक्त, वह संसद के किसी भी सदन को लंबित विधेयक, राष्ट्रीय, संवैधानिक या सार्वजनिक हित आदि से संबंधित किसी महत्वपूर्ण मुद्दे पर सन्देश भेज सकता है।
- भारत के राष्ट्रपति को आंशिक रूप से संसद का गठन करने की शक्ति प्राप्त है क्योंकि वह संसद के दोनों सदनों के कुछ सदस्यों को मनोनीत कर सकता है। यदि उसे प्रतीत हो कि आंग्ल भारतीय समुदाय का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह इस समुदाय के दो व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है। इसके अतिरिक्त, वह राज्यसभा में साहित्य, विज्ञान, कला व समाज सेवा में विशेष ज्ञान रखने वाले 12 व्यक्तियों को मनोनीत कर सकता है।
- जब कोई विधेयक संसद से पारित होने के बाद राष्ट्रपति के पास भेजा जाता है तो राष्ट्रपति उसे:
  - अपनी स्वीकृति देता है, या
  - अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है, या
  - विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं हो) संसद को पुनर्विचार के लिए लौटा देता है।
- हालाँकि यदि विधेयक को संशोधित करके या बिना संशोधन के राष्ट्रपति के पास पुनः वापस भेजा जाता है तो उसे इस पर अवश्य ही अपनी सहमति देनी होगी।
- राष्ट्रपति द्वारा किसी धन विधेयक को पुनर्विचार हेतु सदन में वापस नहीं भेजा जा सकता। राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक को स्वीकृति देने के लिए बाध्य है क्योंकि यह संसद द्वारा निर्धारित विशेष बहुमत से पारित होकर आता है और जहाँ आवश्यक हो, राज्य विधानमंडल के अपेक्षित संख्या द्वारा इसकी पुष्टि की जाती है।
- जब राज्यपाल, राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ सुरक्षित रखता है तो राष्ट्रपति उसे:
  - अपनी स्वीकृति देता है, या
  - अपनी स्वीकृति सुरक्षित रखता है, या
  - राज्यपाल को निर्देश देता है कि विधेयक को (यदि वह धन विधेयक नहीं हो) पुनर्विचार के लिए राज्य विधानमंडल को लौटा दे। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह राज्य विधानमंडल द्वारा पुनः पारित विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान करे। उसे पुनः पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है।
- राष्ट्रपति संसद के सत्रावसान की अवधि में **अध्यादेश** जारी कर सकता है (जब संसद के दोनों सदनों का सत्र नहीं चल रहा हो या संसद के किसी भी एक सदन का सत्र नहीं चल रहा हो)। अध्यादेश एक आकस्मिक विधान की तरह है। जब कोई क़ानून ऐसे समय में आवश्यक हो जब विधायिका का सत्र न चल रह हो तो कार्यपालिका के अनुरोध पर राष्ट्रपति अध्यादेश जारी कर सकता है जिसका प्रभाव एक अधिनियम की भाँति होगा। हालाँकि, ऐसे प्रत्येक अध्यादेश को संसद की आगामी बैठक के छह हफ्ते के भीतर संसद द्वारा अनुमोदित करना आवश्यक है। संसद की बैठक के छह हफ्ते के बाद यदि इसे संसद द्वारा पारित न किया गया (दोनों सदनों के बैठक की तारीख में यदि अंतर हो तो दोनों तिथियों में से अंतिम तिथि से से छह हफ़्तों की गणना होगी) तो यह समाप्त हो जायेगा। अध्यादेश स्वतः समाप्त हो जाता है, यदि इसे छह हफ्तों की समाप्ति के पहले एक संकल्प द्वारा वापस ले लिया जाए। राष्ट्रपति किसी भी समय अध्यादेश को वापस ले सकता है। राष्ट्रपति के अध्यादेश जारी करने के निर्णय को न्यायालय में प्रश्नगत किया जा सकता है, यदि वह किसी दुर्भावना के आधार पर जारी किया गया हो।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- राष्ट्रपति वित्त आयोग, संघ लोक सेवा आयोग, अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के राष्ट्रीय आयोग, केन्द्रीय सतर्कता आयोग, केन्द्रीय सूचना आयोग और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को संसद के समक्ष रखवाता है।
- **अनु. 103** के अनुसार, किसी संसद सदस्य की अयोग्यता से संबंधित मामला यदि **अनु.102** के अधीन है तो इसे राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा, जिसका निर्णय अंतिम होगा। हालाँकि, इसकी पूर्व शर्त यह है कि ऐसे मामलों में निर्णय से पहले राष्ट्रपति निर्वाचन आयोग की राय ले सकेगा और उक्त राय के अनुसार ही कार्य करेगा।
- वह अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप, दादरा एवं नागर हवेली तथा दमन एवं दीव में शांति, विकास व सुशासन के लिए विनियम बना सकता है। पुदुचेरी के मामले में भी, यदि वहाँ की विधानसभा निलंबित अथवा विघटित अवस्था में हो तो वह नियम बना सकता है।

पूर्व मंजूरी: संविधान में यह अपेक्षा है कि कुछ विषयों से संबंधित विधान राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी या सिफारिश के बिना पुनःस्थापित नहीं किया जाएगा। ये विषय हैं: नए राज्य की रचना के लिए या विद्यमान राज्य की सीमा में परिवर्तन के लिए विधेयक (अनु. 3)। ऐसे विधेयक जो धन विधेयक हैं [अनु. 117(1)]। ऐसा विधेयक जिसके अधिनियमित किए जाने पर भारत की संचित निधि में से व्यय करना पड़ेगा [अनु. 117(3)]। ऐसा विधेयक जो उन करों के बारे में है जिनमें राज्य हितबद्ध है या जो उन सिद्धांतों को प्रभावित करता है जिनसे राज्यों को धन वितरित किया जाता है या जो कृषि-आय की परिभाषा में परिवर्तन करता है [अनु. 274(1)]। राज्यों के ऐसे विधेयक जो व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता को प्रभावित करते हैं (अनु. 304)।

1.8.3 आपातकालीन शक्तियाँ

भारतीय संविधान के निर्माता भारत शासन अधिनियम, 1935 और जर्मनी के वाईमर संविधान से प्रभावित थे जहाँ से आपातकालीन प्रावधानों को भारतीय संविधान में शामिल किया गया। भारत के संविधान में तीन प्रकार की आपात स्थिति की परिकल्पना की गयी है:

- राष्ट्रीय आपातकाल
- राज्य आपातकाल या राष्ट्रपति शासन और
- वित्तीय आपातकाल।

किसी भी आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिए राष्ट्रपति को भारत के संविधान द्वारा कुछ असाधारण शक्तियाँ प्रदान की गयी है:

राष्ट्रीय आपातकाल (अनु. 352)

- जब भारत या इसके किसी भूभाग पर युद्ध, बाह्य आक्रमण या सशस्त्र विद्रोह का खतरा हो तो अनु.352 के तहत राष्ट्रपति, राष्ट्रीय आपातकाल की उदघोषणा कर सकते हैं । 44वें संविधान संशोधन, 1978 के द्वारा **'आंतरिक अशांति'** के स्थान पर **'सशस्त्र विद्रोह'** को जोड़ा गया। इस प्रकार 'आंतरिक अशांति' के आधार पर राष्ट्रीय आपातकाल की उद्घोषणा नहीं की जा सकती है।

राज्य आपातकाल या राष्ट्रपति शासन (अनु. 356 और 365)

- राष्ट्रपति शासन, राज्य आपातकाल या संवैधानिक आपातकाल के रूप में जाना जाता है।
- यह अनु. 356 के तहत दो आधारों पर लगाया जा सकता है - पहला **अनु. 356** में वर्णित प्रावधानों के आधार पर जोकि राज्यों में **संवैधानिक तंत्र की विफलता** के रूप में उल्लेख किया गया है। दूसरा **अनु. 365** के अनुसार, **संघ द्वारा दिए गए निर्देशों को प्रभावी करने की विफलता** के आधार पर। यह राष्ट्रपति की राष्ट्रपति शासन के घोषणा की शक्ति के अधीन है। अनु. 356 यह प्रावधान करता है कि यदि भारत के राष्ट्रपति को राज्य के राज्यपाल से रिपोर्ट प्राप्त होने पर पता चले कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है कि संबंधित राज्य का प्रशासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है तो वह (राष्ट्रपति), राज्य आपातकाल की घोषणा कर सकता है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

जहाँ राज्य केन्द्रीय निर्देशों को लागू करने में असफल रहा है, वहाँ भी राष्ट्रपति के द्वारा इस प्रकार की उद्घोषणा की जा सकती है। चूँकि राज्य प्रशासन में कोई भी अव्यवस्था राष्ट्रीय अखंडता को प्रभावित कर सकती है, अतः राष्ट्रपति शासन का प्रावधान ऐसी स्थिति के विरुद्ध रक्षा के लिए प्रदान किया गया है।

वित्तीय आपातकाल (अनु.360)

- यदि राष्ट्रपति संतुष्ट हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी है जिसमें भारत या उसके किसी क्षेत्र की वित्तीय स्थिति खतरे में हो तो वह (राष्ट्रपति) अनु. 360 के तहत वित्तीय आपातकाल की घोषणा कर सकता है।

1.8.4 वित्तीय शक्तियाँ

- धन विधेयक, राष्ट्रपति की पूर्वानुमति से ही संसद में प्रस्तुत किया जा सकता है।
- अनुदान की कोई भी मांग उसकी सिफारिश के बिना नहीं की जा सकती है।
- राष्ट्रपति वार्षिक वित्तीय विवरण अर्थात् केन्द्रीय बजट को संसद के पटल पर रखवाता है।
- राष्ट्रपति भारत की आकस्मिक निधि से, किसी अदृश्य व्यय हेतु अग्रिम भुगतान की व्यवस्था कर सकता है।
- राष्ट्रपति राज्य व केंद्र के मध्य राजस्व के बँटवारे के लिए प्रत्येक पांच वर्ष में एक वित्त आयोग (अनुच्छेद 280 के अधीन) का गठन करता है।

1.8.5 राजनयिक शक्तियाँ

राष्ट्रपति को बाह्य या विदेशी मामलों में व्यापक राजनयिक शक्तियाँ प्राप्त है। अन्य देशों के साथ संबंधों को बनाए रखने के उद्देश्य से उन देशों के लिए वह राजदूतों व उच्चायुक्तों की नियुक्ति करता है। विदेशी राष्ट्रों के राजनयिक प्रतिनिधियों को भी अपनी पहचान राष्ट्रपति के पास प्रस्तुत करनी होती है। राष्ट्रपति ही अंतर्राष्ट्रीय मामलों व मंचों पर भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अतिरिक्त, सभी अंतर्राष्ट्रीय संधियाँ व समझौते राष्ट्रपति के नाम पर किए जाते हैं। हालाँकि, वे संसद के अनुमोदन के अधीन हैं।

1.8.6 सैन्य शक्तियाँ

- राष्ट्रपति, भारत के सैन्य बलों का सर्वोच्च सेनापति होता है। इस क्षमता में वह थल सेना, वायु सेना और नौसेना के प्रमुखों की नियुक्ति करता है। वह युद्ध के प्रारम्भ या समाप्ति की घोषणा कर सकता है। हालाँकि, यह संसद की अनुमति के अधीन है।

1.8.7 न्यायिक शक्तियाँ

- राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश सहित अन्य न्यायाधीशों और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के स्थानान्तरण का अधिकार भी राष्ट्रपति को प्राप्त है।
- **अनु.143 के अनुसार**, राष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय से क़ानून या तथ्य के किसी ऐसे प्रश्न, जिसमें राष्ट्रहित या लोकहित से संबंधी व्यापक महत्व का प्रश्न निहित हो, पर सलाह प्राप्त कर सकता है। हालाँकि, यह उच्चतम न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह सलाह दे या न दे तथा दूसरी ओर राष्ट्रपति भी, दिए गए परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है।

1.8.8 क्षमादान की शक्ति

संविधान के **अनुच्छेद 72** के अंतर्गत निहित क्षमादान इत्यादि की शक्ति राष्ट्रपति का, देश की जनता द्वारा उनमें विश्वास के रूप में निहित किया गया, एक संवैधानिक कर्त्तव्य है।

1. राष्ट्रपति निम्नलिखित मामलों में किसी भी दोषी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की शक्ति रखता है-

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

(क) ऐसे सभी मामलों में जहाँ दंड कोर्ट मार्शल (सैन्य न्यायालय) द्वारा दिया गया हो।

(ख) ऐसे सभी मामलों में जहाँ संघ की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार से संबंधित किसी भी क़ानून के उल्लंघन के विरुद्ध किसी अपराध के लिए दंड दिया गया हो।

(ग) ऐसे सभी मामलों में जहाँ मृत्युदंड दिया गया हो।

2. खंड 1 के उपखंड (क) की कोई बात, संघ के सशस्त्र बलों के किसी अधिकारी की, सैन्य न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की, विधि द्वारा प्रदत्त शक्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी।

इन शब्दों के अर्थ को निम्नलिखित रूप में समझा जा सकता है:

1. **क्षमा (Pardon):** इसमें दण्ड और बंदीकरण दोनों को हटा दिया जाता है और दोषी को सभी दण्ड, दंडादेशों और निरहर्ताओं से मुक्त कर दिया जाता है।
2. **प्रविलंबन (Reprieve):** इसका अर्थ है, किसी दंड (विशेष रूप से मृत्युदंड) पर अस्थायी रोक लगाना। इसका उद्देश्य दोषी व्यक्ति को राष्ट्रपति से क्षमायाचना अथवा दंड के स्वरूप में परिवर्तन की याचना के लिए अतिरिक्त समय उपलब्ध करवाना है।
3. **परिहार (Remission):** इसका अर्थ है, दंड की प्रकृति में परिवर्तन किए बिना उसकी अवधि को कम करना। उदाहरण के लिए, दो वर्ष के कठोर कारावास की सजा को कम करके एक वर्ष के कठोर कारावास में बदलना।
4. **लघुकरण (Commutation):** इसका अर्थ है, दंड के स्वरूप को बदलकर कम करना। उदाहरण के लिए, मृत्यु दंड को कठोर कारावास या साधारण कारावास में बदला जा सकता है।
5. **विराम (Respite):** इसका अर्थ है किसी दोषी को मूल रूप में दिए गए दंड को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में कम करना जैसे: शारीरिक अपंगता अथवा महिलाओं के गर्भावस्था की अवधि के कारण।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति न्यायपालिका से स्वतंत्र है और यह एक कार्यकारी शक्ति है। इस शक्ति के प्रयोग के दौरान राष्ट्रपति किसी अपीलीय अदालत के रूप में नहीं बैठते हैं।

राष्ट्रपति को यह शक्ति दो रूपों में प्रदान की गई है:

- क़ानून के संचालन में किसी भी न्यायिक त्रुटि को ठीक करने के लिए अपने द्वार सदैव खोले रखना।
- किसी ऐसे दंड से राहत के लिए जिसे राष्ट्रपति अनावश्यक रूप से कठोर समझे।

न्यायिक समीक्षा के दायरे

- **मारू राम वाद (1980)** में उच्चतम न्यायालय ने यह घोषणा की है कि अनु. 72 के तहत राष्ट्रपति की शक्ति न्यायिक समीक्षा के अधीन है। इस शक्ति का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं किया जा सकता है।
- **केहर सिंह वाद (1988)** में, उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित पहलुओं पर प्रकाश डाला:

1. याचिकाकर्ता को सुने जाने का कोई अधिकार नहीं है।
2. राष्ट्रपति न्यायपालिका द्वारा लिए गए निर्णय की जांच कर सकता है।
3. राष्ट्रपति का कार्य प्रकृति में न्यायिक नहीं माना जा सकता है। वह न्यायालय से भिन्न एवं स्वतंत्र निर्णय देते हुए भी न्यायालय के निर्णय को रद्द या गलत सिद्ध नहीं करेगा।
4. इस शक्ति का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा केंद्रीय मंत्रिमंडल की सलाह पर किया जाता है।
5. न्यायालय इस शक्ति के प्रयोग के लिए कोई दिशा निर्देश नहीं जारी कर सकता है।
6. राष्ट्रपति को अपने आदेश का कारण देने के लिए नहीं कहा जा सकता है।
7. इस शक्ति के व्यापक आयाम हैं। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रकार के कई मामले राष्ट्रपति की शक्तियों के अधीन आते हैं।
8. न्यायिक समीक्षा के दायरे निम्नलिखित सन्दर्भों तक सीमित है:
    - आदेश बिना विवेक के प्रयोग के पारित कर दिया गया हो।
    - राष्ट्रपति ने प्रासंगिक तथ्यों को विचार में न लिया हो।
    - आदेश दुर्भावनापूर्ण हो।
    - आदेश मनमाने ढंग से दिया गया हो।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

उपर्युक्त दो मामलों के अतिरिक्त, **वाठी सवारण वाद 1983 और त्रिवेणी बेन वाद 1989** के मतानुसार (निर्णय न होकर एक सुझाव) मृत्युदंड में अनावश्यक देरी की स्थिति में उसे उम्रकैद में बदला जा सकता है।

शत्रुघन चौहान बनाम भारत संघ वाद (2014) में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया है कि:

- अत्यधिक विलंब, मृत्युदंड को उम्रकैद में बदलने के लिए एक उचित आधार हो सकता है।
- कैद के दौरान विकसित मनोरोग की स्थिति क्षमादान का आधार हो सकती है।
- यह निर्णय मृत्युदंड प्राप्त कैदियों के एकांत कारावास के विरुद्ध सुनाया गया है।
- कम से कम 14 दिन पहले परिवार के सदस्यों को सूचना देनी होगी।
- यह राष्ट्रपति का एकमात्र विशेषाधिकार नहीं है और न्यायिक समीक्षा के अधीन है।
- दोषियों की दया याचिकाओं को निपटाना राष्ट्रपति और राज्यपाल का संवैधानिक दायित्व है।
- क्षमादान प्राप्त करने का अधिकार एक संवैधानिक अधिकार है, जिसे कार्यपालिका की इच्छा के अधीन प्रयोग नहीं किया जा सकता है।
- हालाँकि, कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गयी है। लेकिन, यह कार्यपालिका का कर्तव्य है कि वह हर स्तर पर मामले में तेजी लाए।
- अनु. 21 व्यक्ति की अंतिम सांस तक उपलब्ध है, यहाँ तक कि दया याचिका खारिज हो जाने के बाद भी, अपराधी कभी भी आकस्मिक घटनाओं के आधार पर रूपांतरण के लिए न्यायालय की शरण ले सकता है।
- सभी स्तरों पर कानूनी सहायता उपलब्ध करवाई जाएगी।
- अस्वीकृति को अतिशीघ्र सूचित किया जायेगा। दोषी को नजदीकी कानूनी सहायता केंद्र से सूचित किया जाना चाहिए।
- व्यक्ति को न्यायिक समीक्षा को प्राप्त करने का अधिकार है। दया याचिका खारिज होने के बाद न्यायपालिका के पास राष्ट्रपति के निर्णय को रद्द करने का अधिकार है, अगर वहाँ पूर्वाग्रह से ग्रसित होने का साक्ष्य हो।

राज्यपाल के क्षमादान की शक्ति से तुलना

- **अनु. 161** के अनुसार, किसी राज्य का राज्यपाल भी किसी दोषी व्यक्ति को राज्य की कार्यपालिका शक्ति के विस्तार तक संबंधित मामले के लिए उसे क्षमादान, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की शक्ति रखता है। इसका तात्पर्य यह है कि राज्यपाल के पास भी क्षमादान की शक्ति है, ऐसे मामलों में जहाँ दोषी व्यक्ति राज्य के कानून के अधीन है।
- **अनु. 72** के तहत राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्ति **अनु. 161** के तहत राज्यपाल की तुलना में ज्यादा व्यापक है। ये शक्तियाँ निम्नलिखित दो मामलों में व्यापक है:
  - जहाँ राष्ट्रपति को कोर्ट मार्शल के द्वारा सजा प्राप्त व्यक्ति को क्षमादान का अधिकार है, वहीं अनु. 161 के तहत राज्यपाल के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है।
  - राष्ट्रपति सभी मामलों में यहाँ तक कि मृत्युदंड प्राप्त व्यक्ति को भी क्षमा कर सकता है। किन्तु, राज्यपाल को मृत्युदंड को क्षमा करने की शक्ति नहीं प्राप्त है। यदि राज्य विधि में मृत्युदंड विहित किया जाता है तो भी क्षमादान की शक्ति राष्ट्रपति में ही होगी राज्यपाल में नहीं। किंतु यदि मृत्युदंड के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति किसी विधि द्वारा राज्यपाल को प्रदान की गयी है तो राज्यपाल मृत्युदंड का निलंबन, परिहार या लघुकरण कर सकता है। ऐसी शक्तियाँ दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 432 और 433 द्वारा प्रदान की गयी है।
  - हाल ही में, तमिलनाडु सरकार ने राजीव गांधी के हत्या के मामले में दोषी सात कैदियों को रिहा करने का फैसला किया। उच्चतम न्यायालय ने उनके मृत्युदंड को पहले ही उम्रकैद में बदल दिया था। केंद्र सरकार ने राज्य सरकार के फैसले पर प्रश्न उठाते हुए एक रिट दायर की है। केंद्र का तर्क है कि चूँकि इन कैदियों को केन्द्रीय अधिनियम जैसे टाडा, के तहत दोषी ठहराया गया है। अतः राज्य सरकार के निर्णय को कानूनी रूप से तर्कसंगत नहीं माना जा सकता है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.9 वीटो पॉवर: विधेयकों पर अनुमति देना या अनुमति रोकना

- कोई विधेयक जो संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित कर दिया जाता है तब तक अधिनियम नहीं बनता जब तक कि उसे राष्ट्रपति की अनुमति नहीं मिलती। प्रत्येक विधेयक जो दोनों सदनों द्वारा पारित किया गया है राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है। राष्ट्रपति,
  - यह घोषित कर सकता है कि उसने विधेयक को अनुमति दे दी है, या
  - विधेयक को अनुमति विधारित (मनाही) कर ली है, या
  - वह विधेयक को सदनों द्वारा पुनर्विचारण के लिए लौटा सकता है।
- यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि धन विधेयक पुनर्विचार के लिए नहीं लौटाया जा सकता। यदि कोई विधेयक जिसे राष्ट्रपति ने पुनर्विचार के लिए लौटाया है दोनों सदनों द्वारा पुनःपारित किया जाता है और राष्ट्रपति को प्रस्तुत किया जाता है तो राष्ट्रपति विधेयक पर अनुमति रोक नहीं सकता।

- विधान को अनुमति न देने या अनुमति देने से इंकार करने की कार्यपालिका की शक्ति को वीटो कहा जाता है, किंतु इस शब्द का प्रयोग उस परिस्थिति में भी किया जाता है, जहाँ अनुमति तुरंत नहीं दी जाती है।
- वीटो का प्रयोजन ऐसे विधान को रोकना है जिस पर भली-भाँति विचार नहीं किया गया है या जो शक्ति बाह्य या असंवैधानिक है।

भारत के राष्ट्रपति के पास निम्नलिखित तीन प्रकार की वीटो शक्ति है:

1.8.9.1. अत्यांतिक वीटो (Absolute Veto)

इसका संबंध राष्ट्रपति की उस शक्ति से है जिसमे वह संसद द्वारा पारित किसी विधेयक को अपने पास सुरक्षित रखता है। इस प्रकार उक्त विधेयक समाप्त हो जाता है और अधिनियम नहीं बन पाता। सामान्यतः यह वीटो निम्न दो मामलों में प्रयोग किया जाता है:

- गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयक के संबंध में (अर्थात् संसद का वह सदस्य जो मंत्री न हो, द्वारा प्रस्तुत विधेयक); और
- सरकारी विधेयक के संबंध में जब मंत्रिमंडल त्यागपत्र दे दे (जब विधेयक पारित हो गया हो तथा राष्ट्रपति की अनुमति मिलना शेष हो) और नया मंत्रिमंडल, राष्ट्रपति को ऐसे विधेयक पर अपनी सहमति न देने की सलाह दे।

1954 में, राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने PEPSU विनियोग विधेयक पर अपना निर्णय रोककर रखा। यह विधेयक संसद द्वारा उस समय पारित किया गया जब इन राज्यों में राष्ट्रपति शासन लागू था। लेकिन, जब विधेयक स्वीकृति के लिए राष्ट्रपति के पास भेजा गया तो राष्ट्रपति शासन हटा लिया गया था।

1.8.9.2. निलंबनकारी वीटो (Suspensive Veto)

- राष्ट्रपति इस वीटो का प्रयोग तब करता है, जब वह किसी विधेयक को संसद के पुनर्विचार हेतु लौटाता है। हालाँकि, यदि संसद उस विधेयक को पुनः किसी संशोधन के बिना अथवा संशोधन के साथ पारित कर राष्ट्रपति के पास भेजती है तो उस पर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देना बाध्यकारी है। इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति के इस वीटो को, उस विधेयक को साधारण बहुमत से पुनः पारित करवाकर निरस्त किया जा सकता है (उच्च बहुमत द्वारा नही जैसा कि अमेरिका में प्रचलित है)।
- राष्ट्रपति धन विधेयकों के मामले में इस वीटो का प्रयोग नहीं कर सकता है। साधारणतः राष्ट्रपति, धन विधेयक पर अपनी स्वीकृति उस समय दे देता है, जब यह संसद में उसकी पूर्वानुमति से प्रस्तुत किया जाता है।
  - राष्ट्रपति ए. पी. जे. अब्दुल कलाम ने 2006 में लाभ का पद विधेयक संसद को पुनर्विचार हेतु लौटा दिया था। यह निलंबनकारी वीटो का प्रयोग था।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.9.3. पॉकेट वीटो (Pocket Veto)

- इस मामले में राष्ट्रपति विधेयक पर न तो कोई सहमति देता है, न ही उसे अस्वीकृत करता है और न ही लौटाता है। परन्तु, एक अनिश्चित काल के लिए विधेयक को लंबित कर देता है। राष्ट्रपति की विधेयक पर किसी भी प्रकार का निर्णय न देने की (सकारात्मक अथवा नकारात्मक) शक्ति, पॉकेट वीटो के नाम से जानी जाती है। राष्ट्रपति इस वीटो शक्ति का प्रयोग इस आधार पर करता है कि संविधान में उसके समक्ष आए किसी विधेयक पर निर्णय देने के लिए कोई तय समय सीमा नहीं है।
- दूसरी ओर, अमेरिका में यह व्यवस्था है कि राष्ट्रपति को 10 दिनों के भीतर वह विधेयक पुनर्विचार के लिए लौटाना होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भारत के राष्ट्रपति की शक्ति इस संबंध में अमेरिका के राष्ट्रपति की तुलना में अधिक है।
- 1986 में राष्ट्रपति ज्ञानी जैलसिंह द्वारा भारतीय डाक (संशोधन) अधिनियम के संदर्भ में इस वीटो का प्रयोग किया गया। राजीव गाँधी सरकार द्वारा पारित विधेयक ने प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाए थे।
- यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि संविधान संशोधन से संबंधित अधिनियमों में राष्ट्रपति के पास कोई वीटो शक्ति नहीं है। 24वें संविधान संशोधन अधिनियम 1971 ने संविधान संशोधन विधेयकों पर राष्ट्रपति को अपनी स्वीकृति देने के लिए बाध्यकारी बना दिया।

1.8.10 अध्यादेश जारी करने की शक्ति

- संविधान के **अनुच्छेद 123** के तहत राष्ट्रपति को संसद के सत्रावसान की अवधि में **अध्यादेश जारी करने की शक्ति** प्रदान की गई है। इन अध्यादेशों के प्रभाव व शक्तियाँ, संसद द्वारा बनाए गए क़ानून की तरह ही होते हैं, परंतु ये प्रकृति में अल्पकालीन होते हैं।
- ऐसे किसी भी विषय पर अध्यादेश जारी किया जा सकता है जिस पर संसद के पास क़ानून बनाने की शक्ति होती है। संघ, राज्य एवं समवर्ती सूची में शक्तियों के विभाजन के अनुसार संसद की विधान निर्माण संबंधी सीमाओं के समान ही इसकी भी सीमाएँ होती है। इसलिए, कार्यपालिका की अध्यादेश जारी करने की शक्ति पर निम्नलिखित सीमाएँ आरोपित हैं:
  - I. **संसद का सत्र न चल रहा हो:** राष्ट्रपति अध्यादेश केवल तभी जारी कर सकता है जब संसद के दोनों अथवा दोनों में से किसी एक सदन का सत्र न चल रहा हो।
  - II. **तत्काल कार्रवाई की आश्यकता हो:** राष्ट्रपति अध्यादेश केवल तभी जारी कर सकता है, जब वह इस बात से संतुष्ट हो कि मौजूदा परिस्थिति ऐसी है कि तत्काल कार्रवाई करना आवश्यक है। **आर. सी. कूपर बनाम भारत संघ वाद (1970)** में सुप्रीम कोर्ट ने कहा- "राष्ट्रपति की संतुष्टि पर असद्भाव के आधार पर प्रश्नचिन्ह लगाया जा सकता है।" इसका अर्थ है कि राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने के निर्णय पर न्यायालय में इस आधार पर प्रश्न उठाया जा सकता है कि राष्ट्रपति ने विचारपूर्वक संसद के एक सदन अथवा दोनों सदनों को कुछ समय के लिए स्थगित कर एक विवादास्पद विषय पर अध्यादेश प्रख्यापित किया है और संसद को नज़रअंदाज़ किया है जिससे संसद के प्राधिकार की परिवंचना हुई है।
  - III. **सत्र के दौरान संसद द्वारा स्वीकृति:** संसद की पुनः बैठक से छह सप्ताह के भीतर अध्यादेश को पारित किया जाना चाहिए अन्यथा वह समाप्त हो जाएगा। यदि दोनों सदन इसका निरनुमोदन कर दें तो यह निर्धारित छह सप्ताह की अवधि से पहले भी समाप्त हो सकता है।
- राष्ट्रपति किसी भी समय किसी अध्यादेश को वापस ले सकता है। हालाँकि, राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति उसकी कार्य स्वतंत्रता का अंग नही है और वह किसी भी अध्यादेश को प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सलाह पर ही जारी करता है अथवा वापस लेता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- एक विधेयक की भाँति एक अध्यादेश भी **भूतलक्षी** हो सकता है अर्थात् इसे पिछली तिथि से प्रभावी किया जा सकता है। यह संसद के किसी भी कार्य या अन्य अध्यादेश को संशोधित अथवा निरसित कर सकता है। यह किसी कर विधि को भी परिवर्तित अथवा संशोधित कर सकता है। हालाँकि संविधान संशोधन हेतु अध्यादेश जारी नही किया जा सकता है।
- भारत शासन अधिनियम, 1935 में गवर्नर जनरल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति दी गयी थी। हमारे संविधान में उस उपबंध को अपना लिया गया है। हालाँकि, भारत के राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति अनोखी है तथा अधिकांश लोकतांत्रिक देशों जैसे: अमेरिका और ब्रिटेन में यह प्रयोग नही की जाती है। यह शक्ति राष्ट्रपति को उस परिस्थिति से निपटने में योग्य बनाती है जो आकस्मिक उत्पन्न होती है जबकि संसद का सत्र कार्यरत नहीं होता।
- हाल ही में कई अध्यादेश प्रख्यापित किये गए जो विभिन्न अलग-अलग कारणों से विवाद एवं चर्चा के केंद्र में रहे। जैसे कि:
  - शत्रु संपत्ति (संशोधन एवं मान्यकरण) अध्यादेश, 2016 [Enemy property (Amendment and Validation) ordinance, 2016]
  - बैंकिंग विनियमन (संशोधन) अध्यादेश, 2017 [Banking Regulation (Amendment) ordinance, 2017]
- इन अध्यादेशों में से प्रथम अध्यादेश को पाँच बार प्रख्यापित किया गया है (हालाँकि अब यह संसद से पारित होकर अधिनियम बन चुका है), अर्थात् एक मौजूदा अध्यादेश को प्रतिस्थापित करने के लिए एक दूसरे अध्यादेश को प्रख्यापित किया गया। यह डी.सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य वाद में सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लंघन है।
- **डी.सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य वाद, 1987**
  - इस वाद में उच्चतम न्यायालय के ध्यान में यह बात लाई गई कि 1967 से 1981 के बीच बिहार के राज्यपाल ने 256 अध्यादेश प्रख्यापित किए। इन अध्यादेशों को एक वर्ष से लेकर 14 वर्ष तक की अवधि तक प्रवृत्त रखा गया। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिमत प्रकट किया कि ऐसा प्रख्यापन अध्यादेश की शक्ति का दुरुपयोग और संविधान के साथ कपट है। इससे लोकतांत्रिक सिद्धांत का विध्वंस होता है।
  - इस मामले में कहा गया कि कार्यपालिका को अध्यादेश द्वारा विधान निर्मित करने की शक्ति का प्रयोग असाधारण परिस्थितियों में ही करना चाहिए और इसे विधायिका की विधायी शक्ति का विकल्प नहीं बनाना चाहिए।
  - सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि यदि अध्यादेश को विधि निर्माण की एक सामान्य प्रक्रिया बना दी जाती है अर्थात् **'अध्यादेश राज'** निर्मित किया जाता है तो कोर्ट पुनर्प्रख्यापित अध्यादेशों को निरस्त कर सकता है।
- हाल ही में **कृष्ण कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य वाद, 2017** में उच्चतम न्यायालय के सात न्यायधीशों की पीठ ने निर्णय दिया है कि अध्यादेश को विधायिका के समक्ष पेश नहीं करना, शक्ति का दुरूपयोग और संविधान के साथ धोखाधड़ी है। यह वाद बिहार सरकार द्वारा 1989 के एक अध्यादेश को लगातार सात बार पुनर्प्रख्यापित करने के बाद दायर किया गया जिसके द्वारा राज्य सरकार ने विधेयक को एक बार भी विधानसभा में पेश किये बिना बिहार में 429 से अधिक संस्कृत विद्यालयों का अधिग्रहण किया।

न्यायिक समीक्षा का दायरा

न्यायपालिका अध्यादेश की वैधता की जांच निम्नलिखित आधारों पर करती है:

- दोनों सदनों के सत्र जारी नहीं हैं
- यह जनहित में लाया गया है
- तर्कसंगतता का परीक्षण
- क्या अध्यादेश मनमाने ढंग से जारी किया गया है अथवा अस्पष्ट है?

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

संसद के पिछले सत्र के पश्चात् अध्यादेश से संबंधित विवाद

हाल ही में सरकार द्वारा चुनाव से ठीक पहले और संसद के अंतिम सत्र के समाप्त होने पर भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों को लागू करने के लिए अध्यादेश का मार्ग अपनाने का प्रयास किया गया। यह विवाद का विषय बन गया। नैतिक अनौचित्य के अतिरिक्त इस प्रयास में कुछ कानूनी कमियाँ भी थीं।

- अनुच्छेद 123 की धारा 2(a) के तहत एक अध्यादेश संसद के सत्र के पुनः समवेत होने के छह हफ्ते पश्चात् (यदि अनुमोदन नहीं किया गया हो) समाप्त हो जाता है। यहाँ "पुनः समवेत" शब्द से तात्पर्य अगले सत्र से है। 15 वीं लोकसभा का अंतिम सत्र समाप्त हो चुका था एवं अब इसकी पुनः बैठक नही बुलाई जा सकती थी। 16 वीं लोकसभा का पहला सत्र पुनः समवेत सत्र नही था, बल्कि एक नई लोकसभा थी। संवैधानिक रूप से, प्रत्येक लोकसभा स्वतंत्र है और विघटन एक लोकसभा के कार्यकाल को समाप्त करता है और आम चुनाव नई लोकसभा का गठन करता है।
- लोकसभा के समक्ष लाए गये और लंबित विधेयक सहित, सब कुछ विघटन के साथ समाप्त हो जाते हैं। इसका अर्थ है कि अनुच्छेद 123 के तहत एक अध्यादेश को तभी प्रख्यापित किया जा सकता है, जब लोकसभा अगले सत्र में दोबारा बैठक करने में सक्षम हो। दूसरे शब्दों में, एक अध्यादेश को एक ही सदन के दो सत्रों के मध्य ही जारी किया जा सकता है। चूँकि 16वीं लोकसभा, 15वीं लोकसभा का "पुनःसमवेत सत्र" नही था, इसलिए 15वीं लोकसभा के अंतिम सत्र के अंत के पश्चात् पहले का कोई भी अध्यादेश प्रख्यापित नही किया जा सकता था।
- इसके अलावा, अनुच्छेद 123 यह स्पष्ट करता है कि एक अध्यादेश तभी जारी किया जा सकता है जब संसद में अवकाश हो। अवकाश से तात्पर्य उस समयावधि से है जिसमे संसद, समिति, विधि न्यायालय आदि की कार्यवाही अस्थायी रूप से निलंबित कर दी जाती है। संसद के संदर्भ में अवकाश का तात्पर्य एक सदन के एक सत्र के सत्रावसान और अगले सत्र की बैठक के बीच के समय से है। इसका अर्थ एक सदन को भंग करने और नए सदन के गठन के बीच की अवधि से नहीं है। इस प्रकार, राष्ट्रपति केवल एक ही लोकसभा के दो सत्रों के बीच, अनुच्छेद 123 के तहत अध्यादेश जारी करने की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है।
- भारत का राष्ट्रपति उल्लिखित शक्तियों का प्रयोग संवैधानिक सीमाओं के भीतर रहकर ही कर सकता है। राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सलाह के अनुसार ही इन शक्तियों का प्रयोग करता है। 44वें संविधान संशोधन से यह स्पष्ट है कि कुछ चुनिंदा मामलों को छोड़कर, राष्ट्रपति के पास कोई विवेकाधिकार शक्ति नहीं है। उसके द्वारा मंत्रिपरिषद की सलाह की अवमानना को संविधान का अतिक्रमण माना जाएगा जिसके आधार पर उस पर महाभियोग चलाया जा सकता है। संसदीय लोकतंत्र की परंपरा में राष्ट्रपति की शक्तियों का प्रयोग वास्तव में मंत्रिपरिषद द्वारा ही किया जाता है। सरकार की ऐसी प्रणाली में, संविधान के अंतर्गत राष्ट्रपति की बहुत ही औपचारिक स्थिति होती है और वह नाममात्र की भूमिका निभाता है। हालाँकि, अगर उसके पास निष्पक्ष छवि, वैचारिक स्पष्टता, सत्यनिष्ठ चरित्र और सबसे महत्वपूर्ण एक करिश्माई व्यक्तित्व हो तो वह हमेशा अपनी सलाह से मंत्रिपरिषद के निर्णयों को प्रभावित और अपने भाषणों एवं संदेशों के माध्यम से संसद का मार्गदर्शन कर सकता है।

सरकार बार-बार अध्यादेश के मार्ग का सहारा क्यों लेती है?

- विशेष मुद्दों पर विधायिका का सामना करने की अनिच्छा।
- उच्च सदन में बहुमत का अभाव।
- विपक्षी दलों द्वारा बार-बार तथा जानबूझकर व्यवधान डालना।

अध्यादेश के विरुद्ध दिए जाने वाले तर्क:

- अध्यादेश मार्ग शक्ति के पृथक्करण सिद्धांत के विरुद्ध है, क्योंकि क़ानून बनाने की शक्ति विधायिका के क्षेत्र में आती है।
- यह कार्यपालिका के हाथों में मनमानी शक्तियाँ प्रदान करता है।
- इसके द्वारा बिना किसी चर्चा और बहस के कानून पारित किये जाते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.11 प्रकीर्ण शक्तियाँ

राष्ट्रपति कार्यपालिका का अध्यक्ष होता है और इस नाते उसे संविधान या संसद के अधिनियमों द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का निर्वाहन करना होता है। हम यहाँ केवल उन शक्तियों पर विचार करेंगे जो महत्वपूर्ण हैं।

- **नियम बनाने की शक्ति** - अनुच्छेद 309 का परंतुक राष्ट्रपति को केंद्रीय सरकार के अधीन लोक सेवाओं और पदों के लिए भर्ती का और नियुक्त व्यक्ति की सेवा की शर्तों का विनियमन करने वाले नियम बनाने के लिए सशक्त करता है। राष्ट्रपति को संसद के सदनों की संयुक्त बैठक के संबंध में प्रक्रिया के नियम बनाने की शक्ति है। राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के आदेशों को प्रवृत्त करने के लिए भी नियम बनाता है। राष्ट्रपति नियम बनाकर यह विनिर्दिष्ट करता है कि कौन से मामलों में भारत सरकार को संघ लोक सेवा आयोग से परामर्श करना आवश्यक नहीं होगा।
- अनुच्छेद 143 के अधीन राष्ट्रपति को विधि या तथ्य के किसी प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय की राय प्राप्त करने की शक्ति है।
- अनुच्छेद 213 के अधीन राष्ट्रपति को अध्यादेश प्रख्यापित करने के बारे में राज्यपाल को अनुदेश देने की शक्ति है।
- राष्ट्रपति कुछ आयोग नियुक्त करता है जैसे, निर्वाचन आयोग, वित्त आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति और जनजाति आयोग तथा अंतराज्यीय परिषद।
- संघ राज्य क्षेत्रों का प्रशासन राष्ट्रपति के नाम से चलाया जाता है। अनु. 240 के तहत राष्ट्रपति को इन राज्यक्षेत्रों के लिए विनियम बनाने की शक्ति है। विनियम निम्नलिखित के लिए बनाए जा सकते हैं :
  - अंडमान और निकोबार द्वीप
  - लक्षद्वीप
  - दादरा और नागर हवेली
  - दमन और दीव
- राष्ट्रपति को अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के बारे में प्रतिवेदन देने के लिए और पिछड़े वर्गों की दशाओं के अन्वेषण और उनको सुधारने के लिए उपाय के बारे में प्रतिवेदन करने के लिए एक आयोग नियुक्त करने की शक्ति है। (अनु. 339 और 340)।
- राष्ट्रपति को यह शक्ति है कि वह ऐसी जातियाँ और मूलवंश या जनजातियाँ विनिर्दिष्ट करे जिन्हें अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति समझा जाएगा। (अनु. 341 और 342)।

1.9. राष्ट्रपति हेतु उपलब्ध परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार

ऐतिहासिक आधार

- भारतीय संविधान द्वारा राष्ट्रपति को प्रदान की गयी शक्तियों की प्रकृति प्रारम्भ से ही विवादास्पद रही है। यह स्पष्ट नहीं रहा है कि राष्ट्रपति का कार्यालय, क्या वास्तव में ब्रिटिश सम्राट के समान स्तर पर है अथवा नहीं।
- प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के अनुसार, भारतीय राष्ट्रपति और ब्रिटिश सम्राट की स्थितियों में निम्नलिखित कारणों से विभेद हैं:
  - अनुच्छेद 74(1) का मूल शब्द 'shall' के बजाय 'will' है।
  - राष्ट्रपति चुनाव में राज्य विधानसभाओं के सदस्य भी भाग लेते हैं।
  - राष्ट्रपति संविधान की रक्षा तथा भारत के लोगों की सेवा एवं कल्याण के लिए स्वयं को समर्पित करने की शपथ ग्रहण करता है।
  - ब्रिटेन में 'सम्राट कभी गलत नहीं कर सकता (King can do no wrong)' का सिद्धांत प्रचलित है जबकि भारत के राष्ट्रपति को संविधान के अनुच्छेद 61 के अधीन उल्लिखित प्रक्रिया के तहत संविधान के अतिक्रमण की स्थिति में महाभियोग का सामना करना पड़ सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- पंडित जवाहरलाल नेहरू ने राष्ट्रपति की विवेकाधीन शक्तियों के प्रश्न को विचार के लिए भारत के महान्यायवादी के समक्ष रखा जिसके प्रत्युत्तर में महान्यायवादी ने विचार दिया कि 'भारत का राष्ट्रपति विवेकाधीन शक्तियाँ नहीं धारण करता'। सरकार के संसदीय स्वरूप के सिद्धांतों के अनुसार, राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद की सहायता से और उसकी सलाह पर कार्य करना होगा।
- हालाँकि, अपने विभिन्न निर्णयों के माध्यम से उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि संविधान एक **अतिसक्रिय राष्ट्रपति** की कल्पना नहीं करता।
- 24वें संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 368 के तहत संविधान संशोधन विधेयक को राष्ट्रपति के समक्ष पेश किए जाने पर उसे अपनी सहमति देने हेतु बाध्य कर दिया गया।
- 42वें संविधान संशोधन के माध्यम से अनुच्छेद 74(1) में will को shall से प्रतिस्थापित कर दिया गया। इसके द्वारा राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद द्वारा दी गयी सलाह के अनुसार ही कार्य करने के लिए बाध्य हो गया।
- 44वें संविधान संशोधन के माध्यम से राष्ट्रपति को इस सलाह को एक बार पुनर्विचार के लिए भेजने का विवेकाधिकार प्राप्त हो गया।

परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार

यद्यपि अनुच्छेद 74 के अनुसार राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद की सलाह और सहायता के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य है तथापि यह समझना कि राष्ट्रपति पूरी तरह से प्रभावहीन या गैर अधिकृत है, गलत होगा। यह पहले भी देखा जा चुका है कि अपवादस्वरूप तथा असामान्य परिस्थितियों में उसके पास कुछ मुद्दों पर सीमित विवेकाधिकार होता है। उदाहरण के लिए:

- तत्कालीन सरकार के बहुमत खो देने की स्थिति में राष्ट्रपति लोकसभा के विघटन का निर्णय ले सकता है।
- यदि कोई भी एक पार्टी या नेता बहुमत साबित करने में सफल नहीं होता तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति अपने विवेकानुसार प्रधानमंत्री को नियुक्त कर सकता है। यह अत्यधिक महत्वपूर्ण है, विशेषकर ऐसी स्थितियों में जब चुनाव में किसी को स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हुआ हो।

- संकट की स्थिति में ऐसा कोई भी मुद्दा अत्यधिक महत्वपूर्ण हो जाता है तथा देश के भविष्य के लिए राष्ट्रपति का निर्णय अत्यधिक प्रभावशाली बन जाता है।

अनुच्छेद 78 यह प्रावधान करता है कि प्रधानमंत्री का कर्तव्य होगा:

a) संघ के मामलों के प्रशासन और कानून के लिए प्रस्तावों से संबंधित मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों को राष्ट्रपति की जानकारी में लाना;

b) संघ के मामलों के प्रशासन और कानून के लिए प्रस्तावों से संबंधित ऐसी जानकारी प्रस्तुत करना, जिसकी अपेक्षा राष्ट्रपति द्वारा की गयी हो तथा;

c) यदि राष्ट्रपति द्वारा इस आशय की अपेक्षा की जाए तो किसी ऐसे मुद्दे को जिस पर किसी मंत्री द्वारा निर्णय लिया गया हो परंतु मंत्रीपरिषद द्वारा नहीं, मंत्रिपरिषद के विचार के लिए भेजना।

ब्रिटिश सम्राट के समान राष्ट्रपति का कार्य मंत्रियों को उनके द्वारा दिए गए सुझावों के लिए 'सलाह देना, प्रोत्साहन देना तथा चेतावनी देने' का है।

अनुच्छेद 111 के तहत, राष्ट्रपति को साधारण विधेयकों के मामले में विवेकाधिकार प्राप्त है। वह विधेयक को अपने किसी संदेश (यदि कोई है) के साथ पुनर्विचार के लिए भेज सकता है। हालाँकि यदि विधेयक कुछ संशोधनों के साथ या उनके बिना पुनः पारित होकर उसके पास आता है तो उसे अपनी सहमति देनी ही होगी।

राष्ट्रपति के.आर. नारायणन कैबिनेट की सलाह को पुनर्विचार के लिए भेजने वाले पहले राष्ट्रपति थे। कैबिनेट द्वारा उत्तर प्रदेश में कल्याण सिंह सरकार के विरुद्ध राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की सलाह दी गई थी। उसके बाद से इस प्रकार की एक प्रथा विकसित हो गई है कि यदि राष्ट्रपति कोई सलाह कैबिनेट को पुनर्विचार के लिए भेज दे तो इसे सामान्यतः राष्ट्रपति के पास पुनः नहीं भेजा जाता।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

पूर्व राष्ट्रपति वेंकटरमण ने भी संविधान के तहत राष्ट्रपति को प्राप्त विवेकाधीन शक्तियों के चरित्र को व्याख्यायित किया था। भारतीय संदर्भ में राष्ट्रपति **'इमरजेंसी लाइट'** के समान है जो सामान्य विद्युत आपूर्ति में कोई अवरोध उत्पन्न होने पर, तब तक के लिए स्वयं प्रकाशित हो जाता है जब तक सामान्य विद्युत आपूर्ति पुनः रोशनी देने में समर्थ न हो जाये।

उन्मुक्तियाँ

- अनुच्छेद 361, राष्ट्रपति और राज्यपालों को विधिक कार्रवाई से व्यक्तिगत उन्मुक्ति प्रदान करता है। कोई न्यायालय राज्य के प्रमुख को किसी शक्ति का प्रयोग करने या कर्तव्य का पालन करने के लिए बाध्य नहीं कर सकता या करने से विरत नहीं कर सकता। यह संरक्षण बहुत विस्तृत है। यह कवच शासकीय कार्य और लोप के लिए तो है ही साथ ही यह संविधान के बाहर के कार्यों के लिए भी है। प्रत्येक कार्य, जो संविधान के अनुसरण में किया जाना तात्पर्यित है, पूर्णतया संरक्षित है। अनुच्छेद 361 राष्ट्रपति या राजयपाल को पक्षकार बनाने या उन्हें सूचना जारी करने के विरूद्ध रक्षा प्रदान करता है। वे अपनी शक्ति के प्रयोग के लिए किसी न्यायालय में उत्तरदायी नहीं है।
- किंतु अनु. 361 द्वारा प्रदत्त व्यक्तिगत उन्मुक्तता का यह अर्थ नहीं है कि उनके कार्यों पर आक्षेप नहीं किया जा सकता। चुनौती का आधार असद्भाव हो सकता है। जब आक्षेप किया जाए तो उसका प्रतिवाद/संघ या राज्य को करना होगा। यदि व्यक्तिगत असद्भाव का अभिकथन है और वह साबित किया जा रहा है तो उसका प्रतिवाद होना चाहिए। राज्यपाल चाहे तो शपथ पत्र फाइल कर सकता है। इस पर कोई प्रतिबंध नहीं है। उन्मुक्ति का यह परिणाम नहीं है कि न्यायालय को कार्य की विधिमान्यता पर और असद्भाव के आधार पर विचार करने की शक्ति नहीं है।
- जब राज्यपाल को कृत्य पदेन सौंपे जाते हैं, जैसे- विश्वविद्यालय के कुलाधिपति का पद, तो वह यह कार्य राज्यपाल होने के नाते नहीं करता, बल्कि वह कुलाधिपति की हैसियत से कार्य करता है। वह मंत्रि-परिषद की सलाह से कार्य नहीं करता और राज्य उसके कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं है। कुलाधिपति के रूप में उसे वह उन्मुक्ति नहीं मिलती जो राज्यपाल को मिलती है।

1.10 राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति

- संविधान में सरकार का स्वरूप संसदीय है। परिणामतः राष्ट्रपति केवल नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख होता है; मुख्य शक्तियाँ प्रधानमन्त्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल में निहित होती हैं। अन्य शब्दों में, राष्ट्रपति अपनी कार्यकारी शक्तियों का प्रयोग प्रधानमंत्री के नेतृत्व वाले मंत्रिमंडल की सहायता व सलाह से करता है।
  - भारत के राष्ट्रपति की संवैधानिक स्थिति को समझने के लिए विशेष रूप से अनुच्छेद 53, 74 और 75 के प्रावधानों का सन्दर्भ प्रासंगिक है।
  - **अनुच्छेद 53** के अनुसार संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी और वह इसका प्रयोग संविधान के अनुसार स्वयं या अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करेगा।
  - **अनुच्छेद 74** के अनुसार राष्ट्रपति की सहायता तथा सलाह के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिपरिषद होगी। राष्ट्रपति संविधान के अनुसार अपने कार्य व कर्त्तव्य का निर्वहन उनकी सलाह पर करेगा।
  - **अनुच्छेद 75** के अनुसार मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होगी। यह प्रावधान संसदीय व्यवस्था का आधार है।
- संविधान निर्माताओं के मस्तिष्क में कोई संशय नहीं था कि वे ग्रेट ब्रिटेन के मॉडल पर ही सरकार के संसदीय स्वरूप की स्थापना कर रहे हैं। डॉ. अम्बेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट रूप से कहा था,"राष्ट्रपति केवल नाममात्र का प्रमुख है" एवं "उसके पास कोई प्रशासनिक शक्ति नहीं है" तथा भारत के राष्ट्रपति की स्थिति इंग्लैंड के राजा की तरह ही है। वह राज्य का प्रमुख तो है, किन्तु सरकार का नहीं। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व तो करता है, किन्तु उस पर शासन नहीं। वह राष्ट्र का प्रतीक है। प्रशासन में उसका स्थान एक औपचारिक डिवाइस (उपकरण) या एक मुहर के समान है जिसके द्वारा राष्ट्र के निर्णयों को सार्वजनिक किया जाता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- यद्यपि कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित है। किंतु, वह केवल कार्यपालिका का एक औपचारिक या संवैधानिक प्रमुख है। वास्तविक शक्ति, मंत्रिपरिषद में निहित है, जिसकी सहायता और सलाह के आधार पर राष्ट्रपति अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग करता है। कार्यपालिका की प्राथमिक ज़िम्मेदारी सरकारी नीति का निर्माण तथा विधि में उसका रूपांतरण करना है। यह अपने सभी कार्यों के लिए विधायिका के प्रति उत्तरदायी है जिसका विश्वास प्राप्त करना इसके लिए अत्यावश्यक है। इस उत्तरदायित्व का आधार अनुच्छेद 75(3) में सन्निहित है।
- राष्ट्रपति सामान्यतः मंत्रिमंडल की सलाह मानने हेतु बाध्य है। वह मंत्रियों की सलाह के विपरीत कुछ नहीं कर सकता और न ही उनकी सलाह के बिना ही कुछ कर सकता है।
- नाममात्र के प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति की भूमिका उसके अप्रत्यक्ष चुनाव में प्रदर्शित होती है। यदि उसे वयस्क मताधिकार के द्वारा निर्वाचित किया जाता तो उसे कोई वास्तविक शक्ति न दिया जाना असंगत होता और साथ ही, यह आशंका भी विद्यमान रहती कि राष्ट्रपति अपने इस अधिकार के कारण अंततः शक्ति के केंद्र के रूप में उभर सकता है। चूँकि शक्ति को वास्तविक रूप से मंत्रिपरिषद और विधायिका में निहित होना था न कि राष्ट्रपति में, अतः उसे (राष्ट्रपति को) अप्रत्यक्ष चुना जाना आवश्यक समझा गया।

42वाँ संविधान संशोधन,1976

- इस संशोधन ने भारतीय संविधान के तहत राष्ट्रपति पद के विषय में सभी संदेहों को दूर कर दिया। संशोधित रूप में अनुच्छेद 74 में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "राष्ट्रपति को सलाह देने व उसकी सहायता करने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी जिसका प्रमुख, प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सलाह के अनुसार ही कार्य करेगा"। यहाँ तक कि इस संशोधन के अंतर्गत, राष्ट्रपति एक सलाहकार या एक गाइड की भूमिका भी नहीं निभा सकता।

44वाँ संविधान संशोधन,1978

- अनुच्छेद 74 में एक परंतु इस प्रभाव के लिए जोड़ा गया कि,"राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद से ऐसी सलाह पर साधारणतः या अन्यथा पुनर्विचार की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गयी सलाह के अनुसार कार्य करेगा। परिणामतः राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर ही कार्य करना पड़ता है, किन्तु राष्ट्रपति उनको परामर्श पर पुनर्विचार करने को कह सकता है और यदि पुनर्विचार के बाद मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति की सलाह के विपरीत कार्य करने के निर्णय लेती है तो राष्ट्रपति के पास उनके निर्णय को मानने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है।
- हालाँकि, यह मानना गलत होगा कि राष्ट्रपति का पद पूर्णतः प्रभावहीन है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि असाधारण और असामान्य परिस्थितियों के कुछ मामलों में राष्ट्रपति को सीमित विवेकाधिकार प्राप्त हैं, उदाहरणार्थ- लोकसभा के विघटन में, मंत्रिमंडल की बर्खास्तगी में, लोकसभा में किसी भी दल को बहुमत न मिलने की स्थिति में या बिना किसी उत्तराधिकारी के प्रधानमन्त्री की कार्यकाल के दौरान ही मृत्यु हो जाने की स्थिति इत्यादि में। संकट के समय इनमें से कोई भी विषय देश के लिए अत्यधिक महत्व का हो सकता है और दीर्घकाल में राष्ट्र की नियति पर गहरा प्रभाव डाल सकता है। इसके अतिरिक्त, उसे राष्ट्रहित के मामलों की जानकारी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त रूप से सशक्त किया गया है। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति को संघ के मामलों में प्रशासन से संबंधित और कानून के लिए प्रस्तावों के विषय में मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों के विषय में जानकारी देने के लिए बाध्य है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संघ कार्यपालिका के सांकेतिक प्रमुख के रूप में राष्ट्रपति को किसी भी इच्छित जानकारी को मंगाने का अधिकार है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री से किसी ऐसे निर्णय का प्रतिवेदन भेजने के लिए कह सकता है, जो किसी मंत्री द्वारा लिया गया हो किन्तु पूरी मंत्रिपरिषद ने इसका अनुमोदन नहीं किया हो। यह प्रावधान मंत्रियों के मध्य सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत को क्रियान्वित करने के लिए बनाया गया है। इन सभी मामलों में, स्पष्ट है कि राष्ट्रपति, मंत्रियों की सलाह के बिना स्वयं अपनी ज़िम्मेदारी पर कार्य करता है। लेकिन इन सब से अधिक, राष्ट्रपति मंत्रियों पर एक प्रेरक प्रभाव डाल सकता है और अपने परामर्श तथा अनुभव के द्वारा उनकी सहायता कर सकता है। ब्रिटिश राजा की तरह, राष्ट्रपति की भूमिका "मंत्रियों को उनके दिए गए परामर्श के संदर्भ में परामर्श देना, प्रोत्साहित करना तथा चेतावनी देना है।"

निष्कर्ष

- हालाँकि, राष्ट्रपति का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर निर्भर करता है तथा एक सच्चरित्र एवं योग्य व्यक्ति सरकार के कामकाज पर सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है। राष्ट्रपति अपनी सलाह एवं सहायता द्वारा, अपने ज्ञान, अनुभव के प्रसार द्वारा तथा आम जनता के हितों को प्रभावित करने वाले निर्णयों पर अरुचिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाकर अपना प्रभाव स्थापित कर सकता है। लेकिन, उसे अपने मंत्रियों को किसी विशेष कार्यवाही के लिए बाध्य करने का प्रयास नहीं करना चाहिए।
- अंततः सम्पूर्ण विश्लेषण के उपरांत हम यह कह सकते हैं कि राष्ट्रपति नहीं, अपितु मंत्रिपरिषद वह प्राधिकारी है जो व्यवहारिक रूप में प्रभावशाली है। अपने सर्वश्रेष्ठ रूप में राष्ट्रपति का कार्य सलाहकारी प्रवृत्ति का होगा। वह एक शिक्षक, दार्शनिक तथा मंत्रियों के मित्र के रूप में सलाह दे सकता है, परंतु स्वयं को उनके स्वामी के रूप में स्थापित नहीं कर सकता- यह कार्य प्रधानमंत्री को सौंपा गया है। अतः राष्ट्रपति को राष्ट्रप्रमुख की और प्रधानमंत्री को राजप्रमुख की भूमिकायें प्रदान की गयी है। संविधान के निर्माताओं का अभिप्राय, राष्ट्रपति को एक ऐसे केंद्र के रूप में स्थापित किए जाने का था जहाँ से संपूर्ण प्रशासन में लाभकारी प्रभाव का प्रसार हो। स्पष्टतः उनका उद्देश्य उसे शक्ति का केंद्र बनाना नहीं था।

2. उपराष्ट्रपति

2.1 भूमिका

- भारतीय संविधान का **अनुच्छेद 63** निर्धारित करता है कि '**भारत का एक उपराष्ट्रपति होगा**'। यह पद देश का द्वितीय सर्वोच्च पद है। आधिकारिक क्रम में उसका पद राष्ट्रपति के पश्चात् है। उपराष्ट्रपति का पद, अमेरिकी उपराष्ट्रपति की तर्ज पर अपनाया गया है। वेंकैया नायडू भारत के 13वें उपराष्ट्रपति के रूप में 5 अगस्त 2017 को निर्वाचित हुए।

2.2 अर्हताएँ

उपराष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने के लिए निम्नलिखित अर्हताएँ निर्धारित की गयी हैं:

- वह भारत का नागरिक हो।
- वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।
- वह राज्यसभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो।
- वह, केंद्र सरकार या किसी राज्य सरकार या किसी स्थानीय प्राधिकरण या अन्य किसी सार्वजनिक प्राधिकरण के अंतर्गत कोई लाभ का पद धारण नहीं करता हो।

- किन्तु, एक वर्तमान राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल और संघ अथवा राज्य के मंत्री के पद 'लाभ के पद' नहीं माने जाते हैं। संसद या किसी राज्य विधानसभा का सदस्य राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के पद के लिए प्रत्याशी हो सकता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- यदि वह उपराष्ट्रपति के रूप में निर्वाचित हो जाता है, तो यह समझा जाएगा कि उसने, यथास्थिति, अपना स्थान, जिस तारीख से उसने उपराष्ट्रपति का पद धारण किया, उस तारीख को रिक्त कर दिया है; इस हेतु अलग से इस्तीफे की कोई आवश्यकता नहीं होती है।
- इसके अतिरिक्त, उपराष्ट्रपति चुनाव के नामांकन हेतु उम्मीदवार को, कम से कम 20 प्रस्तावकों तथा 20 अनुमोदकों द्वारा अनुमोदित किया जाना चाहिए।

2.3 निर्वाचन

- राष्ट्रपति की भाँति, उपराष्ट्रपति को भी जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित नहीं किया जाता बल्कि अप्रत्यक्ष निर्वाचन विधि अपनायी जाती है। वह संसद के दोनों सदनों के सदस्यों के निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। यह निर्वाचक मंडल, राष्ट्रपति के निर्वाचक मंडल से दो मामलों में भिन्न है:
  - इसमें संसद के निर्वाचित और मनोनीत दोनों सदस्य (राष्ट्रपति के चुनाव के मामले में केवल निर्वाचित सदस्य) शामिल होते हैं।
  - इसमें राज्य विधानसभाओं के सदस्य शामिल नहीं होते हैं (राष्ट्रपति के चुनाव में राज्य विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्य शामिल होते हैं)।
- किन्तु, दोनों मामलों में चुनाव प्रक्रिया समान होती है अर्थात् राष्ट्रपति के चुनाव की तरह उपराष्ट्रपति का चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत के माध्यम से और गुप्त मतदान प्रक्रिया द्वारा होता है।

2.4 पदावधि

- उपराष्ट्रपति की पदावधि, उसके पद ग्रहण करने की तिथि से लेकर 5 वर्ष तक होती है। हालाँकि, वह अपनी पदावधि में किसी भी समय अपना त्यागपत्र राष्ट्रपति को दे सकता है। उसे अपने पद से पदावधि पूर्ण होने के पूर्व भी हटाया जा सकता है। उसे हटाने के लिए महाभियोग की आवश्यकता नहीं है। उसे राज्य सभा द्वारा संकल्प पारित कर **प्रभावी बहुमत (Effective Majority)** द्वारा हटाया जा सकता है (अर्थात् सदन के कुल सदस्यों का बहुमत) तथा इसमें लोकसभा की सहमति आवश्यक है। परंतु, ऐसा कोई प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता, जब तक 14 दिन की अग्रिम सूचना न दी गई हो। ध्यान देने योग्य बात यह है कि संविधान में उसे हटाने हेतु **किसी विशेष आधार का उल्लेख नहीं** किया गया है।
- उपराष्ट्रपति 5 वर्ष की पदावधि के उपरांत भी अपने पद पर बना रह सकता है, जब तक उसका उत्तराधिकारी पदग्रहण न कर ले। वह पद पर पुनर्निर्वाचन के योग्य होता है।

2.5 पद रिक्तिता

उपराष्ट्रपति का पद निम्नलिखित कारणों से रिक्त हो सकता है:

- 5 वर्षीय पदावधि की समाप्ति होने पर।
- उसके द्वारा त्यागपत्र देने पर।
- उसे बर्खास्त करने पर।
- उसकी मृत्यु पर।
- यदि वह पद ग्रहण करने के अयोग्य हो अथवा उसका निर्वाचन अवैध घोषित हो जाए।

जब पद रिक्ति का कारण उसके कार्यकाल का समाप्त होना हो, तब उस पद को भरने हेतु उसका कार्यकाल पूर्ण होने से पूर्व नया चुनाव आयोजित किये जाने का प्रावधान है।

यदि उसका पद उसकी मृत्यु, त्यागपत्र, निष्कासन अथवा अन्य किसी कारण से रिक्त होता है, उस स्थिति में शीघ्रातिशीघ्र चुनाव करवाने चाहिए। नव निर्वाचित उपराष्ट्रपति पद ग्रहण करने की तारीख से 5 वर्ष की अवधि तक अपने पद पर बना रहता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.6 शक्तियाँ और कार्य

उपराष्ट्रपति के कार्य दोहरी प्रकृति के होते हैं:

- वह **राज्यसभा के पदेन सभापति** के रूप में कार्य करता है। इस संदर्भ में, उसकी शक्तियाँ व कार्य लोकसभा अध्यक्ष की भाँति ही होते हैं। इस संबंध में वह अमेरिकी उपराष्ट्रपति के समान ही कार्य करता है, जो सीनेट (अमेरिका के उच्च सदन) के चेयरमैन के रूप में कार्य करता है।
- जब राष्ट्रपति का पद उसके त्यागपत्र, निष्कासन, मृत्यु तथा अन्य कारणों से रिक्त होता है तो वह **कार्यवाहक राष्ट्रपति** के रूप में भी कार्य करता है। कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में अधिकतम 6 महीने की अवधि तक कार्य कर सकता है। इसके अतिरिक्त, वर्तमान राष्ट्रपति की अनुपस्थिति, बीमारी या किसी अन्य कारण से अपने कार्यों का निर्वहन करने में असमर्थ हो, तो वह राष्ट्रपति के पुनः कार्य करने तक, उसके कर्तव्यों का निर्वाह करता है।
- कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में कार्य करने के दौरान, उपराष्ट्रपति राज्यसभा के सभापति के रूप में कार्य नहीं करता है। इस अवधि में उसके कार्यों का निर्वाह, उपसभापति द्वारा किया जाता है।

2.7 भारत एवं अमेरिकी उपराष्ट्रपतियों की तुलना

- यद्यपि भारत के उपराष्ट्रपति का पद, अमेरिकी उपराष्ट्रपति मॉडल पर आधारित है, परंतु इसमें काफी भिन्नता है। अमेरिका का उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर पूर्व राष्ट्रपति के कार्यकाल की शेष अवधि तक उस पद पर बना रहता है। दूसरी ओर, भारत का उपराष्ट्रपति, राष्ट्रपति का पद रिक्त होने पर, पूर्व राष्ट्रपति के शेष कार्यकाल तक उस पद पर नहीं रहता है। वह एक कार्यवाहक राष्ट्रपति के रूप में तब तक कार्य करता है, जब तक कि नया राष्ट्रपति कार्यभार ग्रहण न कर ले।
- इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संविधान में उपराष्ट्रपति हेतु कोई विशेष कार्य नहीं सौंपा गया है तथा यह पद भारत में मुख्य रूप से राजनीतिक निरंतरता को बनाए रखने हेतु सृजित किया गया है।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के पदों की तुलना

- **निर्वाचन**

राष्ट्रपति	उपराष्ट्रपति
राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा होता है जो संसद के दोनों सदनों के और राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है।	निर्वाचक मंडल संसद के दोनों सदनों तक ही सीमित है। राज्य विधान सभाओं के सदस्य इसमें भाग नहीं लेते।

दोनों दशाओं में निर्वाचन गुप्त मतदान द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होगा।

- **अर्हताएँ**

भारत का नागरिक हो।	भारत का नागरिक हो।
35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।	35 वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो।
लोक सभा के लिए निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो।	राज्य सभा के लिए निर्वाचित होने के लिए अर्हित हो।

दोनों दशाओं में कोई लाभ का पद धारण नहीं करना चाहिए।

- **पदावधि**

पद ग्रहण करने की तारीख से 5 वर्ष।	पद ग्रहण करने की तारीख से 5 वर्ष।

Website - https://upscpdf.com

- **पद त्याग**

उपराष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग सकता है।	राष्ट्रपति को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग सकता है।

- **हटाया जाना**

महाभियोग द्वारा हटाया जा सकता है।	महाभियोग नहीं होता किंतु राज्य सभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा, जिसमें लोक सभा सहमत हो, हटाया जा सकता है।

- **पुनर्निर्वाचन**

चाहे जितनी बार निर्वाचित हो सकता है।	चाहे जितनी बार निर्वाचित हो सकता है।

- **कृत्य**

संविधान के अधीन अनेक कृत्य	केवल एक ही कृत्य है, राज्य सभा के सभापति के रूप में कृत्य करना। जब राष्ट्रपति का पद रिक्त हो तब वह राष्ट्रपति के रूप में कार्य करता है या राष्ट्रपति के कृत्यों का निर्वाहन करता है।

3. प्रधानमंत्री

- संविधान द्वारा प्रदत्त सरकार की संसदीय प्रणाली में, राष्ट्रपति, नाममात्र कार्यपालिका प्रधान की जबकि प्रधानमंत्री वास्तविक राजप्रमुख की भूमिका में होता है। इसका तात्पर्य यह है कि राष्ट्रपति राज्य का प्रमुख होता है जबकि प्रधानमंत्री सरकार का प्रमुख होता है। प्रधानमंत्री नीति आयोग, राष्ट्रीय एकता परिषद और अंतर्राज्यीय परिषद का पदेन अध्यक्ष होता है। परम्परागत रूप से, कुछ विशिष्ट मंत्रालयों/विभागों जिन्हें प्रधानमंत्री किसी अन्य को आवंटित नहीं करते हैं, उन विभागों की जिम्मेदारी स्वयं प्रधानमंत्री पर होती है।

सामान्यतया प्रधानमंत्री निम्नलिखित विभागों की जिम्मेदारी लेता है:

- मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति
- कार्मिक लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय
- परमाणु ऊर्जा विभाग तथा
- अंतरिक्ष विभाग आदि।

3.1 प्रधानमंत्री की नियुक्ति

- संविधान द्वारा प्रधानमंत्री की नियुक्ति के लिए कोई विशेष प्रक्रिया सुनिश्चित नहीं की गई है। **अनुच्छेद 75** के अनुसार, केवल इस बात का प्रावधान किया गया है कि **प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा** की जाएगी। हालाँकि, राष्ट्रपति प्रधानमंत्री के रूप में किसी को भी नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र नहीं है। सरकार की संसदीय प्रणाली की परंपराओं के अनुसार राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री के रूप में लोकसभा में बहुमत दल के नेता को नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है।
- लेकिन, जब किसी भी दल को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत प्राप्त न हो तो राष्ट्रपति अपने व्यक्तिगत विवेक के आधार पर प्रधानमंत्री का चयन और उसकी नियुक्ति कर सकता है। ऐसी स्थिति में सामान्यतः वह सबसे बड़ी पार्टी के नेता या लोकसभा में सबसे बड़े गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री के रूप में नियुक्त करता है और उसे एक निश्चित समय सीमा के अंदर सदन में विश्वास मत हासिल करने के लिए कहता है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3.2 प्रधानमंत्री की शक्तियाँ और कार्य

प्रधानमंत्री की शक्तियों और कार्यों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के तहत किया जा सकता है:

3.2.1 मंत्रिपरिषद के संबंध में

- प्रधानमंत्री द्वारा जिन व्यक्तियों की सिफारिश की जाती है, राष्ट्रपति (सिर्फ) उन्हीं को मंत्री के रूप में नियुक्त करता है।
- प्रधानमंत्री अपनी इच्छानुसार मंत्रियों को उनके विभाग आवंटित करता है और उनमें बदलाव भी कर सकता है।
- यदि प्रधानमंत्री और उसके किसी अधीनस्थ मंत्री के मध्य किसी मुद्दे पर मतभेद उत्पन्न होता है तो वह उस मंत्री को इस्तीफा देने के लिए कह सकता है या राष्ट्रपति को उसे बर्खास्त करने के लिए कह सकता है।
- प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद की बैठक की अध्यक्षता करता है और बैठक के निर्णय को विशेष रूप से प्रभावित भी करता है।
- वह सभी मंत्रियों का मार्गदर्शन, निर्देशन एवं नियंत्रण करता है और उनकी गतिविधियों में समन्वय स्थापित करता है।
- प्रधानमंत्री अपने पद से त्यागपत्र देकर मंत्रिपरिषद को समाप्त कर सकता है।

3.2.2 राष्ट्रपति के संबंध में

- प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति और मंत्रिपरिषद के मध्य संचार का प्रमुख माध्यम होता है। वह राष्ट्रपति को संघ के प्रशासनिक मामलों और विधायी प्रस्तावों से संबंधित मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों के बारे में सूचित करता है।
- वह राष्ट्रपति की इच्छानुसार, संघ के प्रशासनिक मामलों और विधायी प्रस्तावों को उसके समक्ष प्रस्तुत करता है। यदि राष्ट्रपति आवश्यक समझे तो किसी ऐसे मामले, जिस पर किसी मंत्री द्वारा निर्णय ले लिया गया हो लेकिन मंत्रिपरिषद द्वारा उस पर विचार नहीं किया गया हो, के संबंध में प्रधानमंत्री उसे रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।
- प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति को महत्वपूर्ण अधिकारियों जैसे: महान्यायवादी, नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष, निर्वाचन आयुक्तों, वित्त आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति में सलाह देता है।

3.2.3 संसद के संबंध में

- प्रधानमंत्री निचले सदन अर्थात् लोकसभा का नेता होता है। वह राष्ट्रपति को संसद के सत्र को बुलाने के लिए सलाह देता है।
- वह राष्ट्रपति को किसी भी समय लोकसभा को भंग करने के लिए कह सकता है।
- वह सदन में सरकार की नीतियों की घोषणा करता है।

3.2.4 अन्य शक्तियाँ और कार्य

- प्रधानमंत्री नीति आयोग, राष्ट्रीय एकता परिषद, अंतर्राज्यीय परिषद और राष्ट्रीय जल संसाधन परिषद का अध्यक्ष होता है।
- वह देश की विदेश नीति को आकार देने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
- वह केंद्र सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है।
- वह आपात स्थिति के दौरान राजनीतिक स्तर पर मुख्य प्रबंधक होता है।
- राष्ट्र के नेता के रूप में वह अलग-अलग राज्यों के विभिन्न वर्गों के लोगों से मिलता है और उनकी समस्याओं के बारे में उनसे ज्ञापन प्राप्त करता है। वह सत्ता में स्थापित दल का नेता होता है।
- वह प्रशासनिक सेवाओं का राजनीतिक प्रमुख होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3.3 प्रधानमंत्री का राज्यसभा का सदस्य होना

- संविधान प्रधानमंत्री को राज्यसभा का सदस्य होने से निषेध नहीं करता है। हालाँकि, संसदीय लोकतंत्र की मांग के अनुसार प्रधानमंत्री को लोकसभा, जो प्रत्यक्षतः जनता द्वारा चुनी जाती है, की सदस्यता प्राप्त कर सर्वोत्कृष्ट परंपराओं का निर्वहन करना चाहिए।
- ऐसा इसलिए क्योंकि राज्यसभा में सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होते हैं। यहाँ यह तर्क भी दिया जाता है कि संघ के प्रधानमंत्री को लोकसभा के निर्वाचित सदस्य के रूप में होना चाहिए।
- उदाहरण के लिए, ब्रिटेन में प्रधानमंत्री का हाउस ऑफ कॉमंस का सदस्य होना अनिवार्य कर दिया गया है। लेकिन भारत में किसी ऐसे व्यक्ति को भी प्रधानमंत्री नियुक्त किया जा सकता है जो संसद सभा का सदस्य न हो। ऐसी स्थिति में नियुक्त व्यक्ति को 6 माह के भीतर संसद के किसी एक सदन की सदस्यता प्राप्त करनी पड़ती है। उदाहरणस्वरूप श्रीमती इंदिरा गाँधी, पी. वी. नरसिंह राव, एच. डी. देवगौड़ा, डॉ. मनमोहन सिंह आदि नियुक्ति के समय संसद के सदस्य नहीं थे।

3.4 सरकार की प्रधानमंत्री प्रणाली

- सरकार के प्रधानमंत्री प्रणाली के स्वरूप में प्रधानमंत्री, कार्यपालिका में अधिक प्रभावी रहता है। आमतौर पर यह मामला तब नजर आता है जब सत्ता में एक दल का प्रभुत्व हो और प्रधानमंत्री उस दल का निर्विवाद नेता हो। ऐसे परिदृश्य में प्रधानमंत्री के फैसले को आमतौर पर मंत्रिमंडल मंजूरी दे देता है। इस प्रकार वास्तविक अर्थों में ये निर्णय सामूहिक निर्णय नहीं होते इस प्रणाली के लाभ-हानि निम्नलिखित हैं :

लाभ	हानि
समय पर निर्णय।	निर्णय जल्दबाजी में और राजनीतिक रूप से प्रेरित हो सकते हैं।
सरकार मजबूती से निर्णय लेती है।	विवेचना के बाद भी प्रायः निर्णय नहीं लिए जाते।
प्रशासन को स्पष्ट दिशा निर्देश प्राप्त होते हैं।	अतिरिक्त संवैधानिक प्राधिकारी, प्रभाव का इस्तेमाल कर सकते हैं।

3.5 प्रधानमंत्री पद पर गठबंधन की राजनीति का प्रभाव

- सामान्यतः, यह देखा जाता है कि गठबंधन सरकार के प्रमुख होने की स्थिति में प्रधानमंत्री के अधिकार कम हो जाते हैं। इसका कारण एक खंडित जनादेश की स्थिति में गठबंधन सरकार का गठन है। कई बार, घटक दलों के सदस्य वास्तविक प्रधानमंत्री के बजाय, अपने दल के नेता को प्रधानमंत्री मानने लगते हैं। हालाँकि, यह प्रवृत्ति प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व एवं गठबंधन की राजनीति की प्रकृति के साथ बदलती रहती है तथा यह मनोवृत्ति उस शैली पर भी महत्वपूर्ण रूप से निर्भर होती है, जिसके द्वारा गठबंधन का प्रबंधन किया जाता है। ऐसे मामलों में, प्रधानमंत्री की भूमिका, बहुमत दल के एक नेता के बजाय, गठबंधन सरकार के प्रबंधक जैसी हो जाती है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

4. केंद्रीय मंत्रिपरिषद

अनुच्छेद 74 और 75, केन्द्रीय मंत्रिपरिषद के प्रावधानों से संबंधित है। ये विस्तृत रूप से नीचे दिए गए हैं:

4.1 मंत्रिपरिषद की नियुक्ति और कार्यकाल

- राष्ट्रपति को सहायता एवं सलाह देने हेतु एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होगा। राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा। तथापि, यदि राष्ट्रपति चाहे तो वह एक बार मंत्रिपरिषद से पुनर्विचार के लिए कह सकता है। किन्तु, मंत्रिपरिषद द्वारा पुनर्विचार के बाद प्रस्तुत सलाह के अनुसार ही राष्ट्रपति कार्य करेगा।
- मंत्रियों द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सलाह की जांच किसी न्यायालय द्वारा नहीं की जा सकती।
- राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की नियुक्ति करेगा तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री की सलाह पर कार्य करेगा। प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद के मंत्रियों की सूची राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता है एवं सामान्यतः राष्ट्रपति इसका समर्थन करता है। एक व्यक्ति को मंत्री के रूप में नियुक्त किए जाने के समय यह आवश्यक नहीं है कि वह संसद के किसी भी सदन का सदस्य हो। संविधान में कहा गया है कि एक व्यक्ति जो संसद के किसी भी सदन का सदस्य नहीं है, अधिकतम 6 महीने की अवधि तक मंत्री बना रह सकता है। इस प्रकार, कोई व्यक्ति जब संसद की सदस्यता के बिना मंत्री पद प्राप्त करता है तो उसे 6 माह के अंतर्गत संसद के किसी भी सदन की सदस्यता लेनी होती है।
- प्रधानमंत्री सहित मंत्रिपरिषद के सदस्यों की कुल संख्या, लोकसभा की कुल सदस्य संख्या के 15% से अधिक नहीं होगी। इस उपबंध का समावेश 91वें संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा किया गया है।
- संसद के किसी भी सदन का, किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य, यदि दलबदल के आधार पर संसद की सदस्यता हेतु अयोग्य घोषित कर दिया जाता है, तो ऐसा सदस्य मंत्री पद हेतु भी अयोग्य होगा। इस प्रावधान को भी, 91वें संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा जोड़ा गया है।
- मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारण करेंगे।
- मंत्रिपरिषद, लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।
- राष्ट्रपति द्वारा मंत्रियों को पद एवं गोपनीयता की शपथ दिलाई जाएगी।
- मंत्रियों के वेतन एवं भत्ते, संसद द्वारा निर्धारित किए जाएंगे तथा जब तक संसद भत्ते का निर्धारण नहीं करती, तब तक वे भत्ते उसी प्रकार निर्धारित होंगे जैसा कि दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।
- एक मंत्री को जो संसद के किसी एक सदन का सदस्य है, दूसरे सदन की कार्यवाही में भाग लेने और बोलने का अधिकार है। परंतु, वह उस सदन में मत नहीं दे सकता है जिसका वह सदस्य नहीं है।

4.2 मंत्रिपरिषद की संरचना

मंत्रिपरिषद में सामान्यतः निम्नलिखित श्रेणियों के मंत्री शामिल होते हैं:

- **कैबिनेट मंत्री:** कैबिनेट मंत्री वे हैं जिनके पास केंद्र सरकार के महत्वपूर्ण मंत्रालय जैसे: रक्षा, गृह, वित्त, विदेश आदि मंत्रालय होते हैं। वे पद, वेतन और शक्तियों में सर्वोच्च होते हैं। इन्हीं मंत्रियों से मंत्रिमंडल का गठन होता है। इन्हें धुरी (मंत्रिपरिषद) के भीतर एक धुरी के रूप में वर्णित किया गया है। उनकी संख्या समय-समय पर बदलती रहती है, लेकिन शायद ही कभी बीस से अधिक होती है। कैबिनेट मंत्री सामूहिक रूप से सरकार की नीतियों के निर्माण और मंत्रिमंडल की सभी बैठकों में भाग लेने के हक़दार हैं। कभी कभी, वरिष्ठ नेताओं को बिना किसी पोर्टफोलियो के मंत्री के रूप में मंत्रिमंडल में शामिल किया जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- **राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार):** यह एक राज्य मंत्री है जो किसी कैबिनेट मंत्री के अधीन काम नहीं करता है। इन्हें मंत्रालय / विभागों के स्वतंत्र प्रभार सौंपे जाते हैं। जब उसके विभाग से संबंधित कोई विषय मंत्रिमंडल की कार्यसूची में होता है तो उसे बैठक में उपस्थित होने के लिए आमंत्रित किया जाता है।
- **राज्य मंत्री:** इस मंत्री के पास किसी विभाग का स्वतंत्र प्रभार नहीं होता और वह कैबिनेट मंत्री के अधीन कार्य करता है। जिस मंत्री के अधीन वह कार्य करता है, वही उसे कार्य आवंटित करता है।
- **उपमंत्री:** ऐसा मंत्री किसी कैबिनेट मंत्री या स्वतंत्र प्रभार वाले राज्य मंत्री के अधीन कार्य करता है। जिस मंत्री के अधीन वह कार्य करता है वही उसे कार्य आवंटित करता है।

4.3 मंत्रिपरिषद के कार्य

- मंत्रिपरिषद मुख्य रूप से राष्ट्रपति को उनके कार्यों में सहायता और सलाह देता है। मंत्रिपरिषद वास्तव में केन्द्र सरकार से जुड़े मामलों के प्रशासनिक कर्तव्य से आबद्ध है। चूँकि मंत्रालय भारत सरकार का सर्वोच्च अंग है, अतः यह देश के प्रशासन से संबंधित सभी नीतियों का निर्धारण करता है। इस पर आंतरिक और विदेश नीतियों के निर्माण का उत्तरदायित्व होता है। देश की शांति और समृद्धि काफी हद तक मंत्रालय द्वारा निर्मित नीति पर निर्भर करती है। मंत्री न केवल अपने कार्यकारी विभागों के प्रमुख होते हैं, बल्कि ये विधायिका में बहुमत दल के महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं या उन्हें विधायिका में कम से कम बहुमत का समर्थन प्राप्त होता है।
- मंत्रालय, राज्य की आर्थिक गतिविधियों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मुद्रा, बैंकिंग, वाणिज्य, व्यापार, बीमा और अन्य योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन मंत्रालय द्वारा विनियमित तथा नियंत्रित किए जाते हैं। संक्षेप में, मंत्रिपरिषद केंद्र सरकार के प्रशासनिक तंत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

5. मंत्रिमंडल (Cabinet)

- मंत्रिमंडल राजनीतिक एकरूपता के सिद्धांत पर कार्य करता है। कुछ अपवादों को छोड़ दें तो सामान्यतः प्रधानमंत्री तथा मंत्रिमंडल के सदस्य एक ही पार्टी के होते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व मंत्री को एक समान विचार रखने तथा एक नीति का प्रयोग करने हेतु बाध्य करता है। यदि मंत्रियों के मध्य मतभेद हो तो उसे मंत्रिमंडल की गोपनीय बैठकों में दूर कर लिया जाता है। वस्तुतः आम जनता के बीच वे संपूर्ण एकता प्रदर्शित करते हैं।

5.1 मंत्रिमंडल के कार्य

- **नीति निर्माण:** मंत्रिमंडल (कैबिनेट) राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय विषयों से संबंधित नीतियों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होता है। सभी नीतिगत निर्णय आम सहमति से लिए जाते हैं तथा प्रधानमंत्री उन निर्णयों के बारे में राष्ट्रपति को सूचित करता है।
- **विधायी शक्तियाँ:** सभी मंत्री संसद के सदस्य होते हैं, अतः विधि निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेते हैं। संसद में लगभग सभी विधेयक मंत्रियों के द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं तथा उन्हें प्राप्त बहुमत के कारण आसानी से पारित भी हो जाते हैं। हालाँकि मंत्रियों के द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले विधेयकों पर पहले मंत्रिमंडल द्वारा विचार करके उन पर सहमति दी जाती है। मंत्रिमंडल विधेयक में ऐसे परिवर्तनों को शामिल कर सकता है जो उसे आवश्यक लगते हैं।
- **वित्तीय शक्तियाँ:** कैबिनेट, सरकार के सभी व्ययों और इन व्ययों की पूर्ति के लिए आवश्यक राजस्व के स्रोतों के व्यवस्था करने के लिए जिम्मेदार है। वित्तमंत्री के द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला वार्षिक बजट मंत्रिमंडल के नियंत्रण में होता है। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य है कि बजट के प्रस्ताव अत्यधिक गोपनीय रखे जाते हैं तथा संसद में बजट की प्रस्तुति से केवल एक घंटे पूर्व ही वित्तमंत्री द्वारा मंत्रिमंडल को विश्वास में लिया जाता है। कैबिनेट बजट में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकती। परंतु, संसद में बजट प्रस्तावों पर चर्चा के दौरान वह परिवर्तन करने में समर्थ है। तत्पश्चात्, इस प्रकार किये गए परिवर्तनों की घोषणा वित्तमंत्री के द्वारा की जाती है। कैबिनेट आर्थिक और वित्तीय नीतियों का अनुमोदन तथा वित्त आयोग और भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत रिपोर्टों पर निर्णय लेने के लिए उत्तरदायी होती है।

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **नियुक्तियाँ करने की शक्ति:** यद्यपि राष्ट्रपति राज्य के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति की विस्तृत शक्ति धारण करता है, परंतु वास्तव में राष्ट्रपति द्वारा ये नियुक्तियाँ मंत्रिमंडल की सलाह के आधार पर की जाती हैं। मंत्रिपरिषद की सलाह राष्ट्रपति पर बाध्यकारी होती है और वस्तुतः राष्ट्रपति के सभी कार्य इसके ही द्वारा संपन्न किये जाते हैं। हालाँकि, राष्ट्रपति सिर्फ एक बार मंत्रिपरिषद से इसकी सलाह पर पुनर्विचार का आग्रह कर सकता है। पुनर्विचार के उपरांत दी गयी सलाह को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य है। (44वाँ संविधान संशोधन अधिनियम)
- मंत्रिमंडल एक निगमित निकाय है। यह न सिर्फ विभिन्न विभागों के कार्यों का समन्वय करता है अपितु, साथ ही अंतर-विभागीय विवादों का निराकरण भी करता है। **एम. वी. पाईली** ने मंत्रिमंडल को **"राष्ट्रीय नीतियों का निर्माता, उच्चतम नियुक्ति प्राधिकारी, अंतर-विभागीय विवादों का मध्यस्थ और सरकार में समन्वय का सर्वोच्च अंग"** कहा है।

5.2. मंत्रिमंडलीय समितियाँ (Cabinet Committees)

- मंत्रिमंडल पर अतिरिक्त कार्य के बोझ को कम करने के लिए मंत्रिमंडलीय समितियों का गठन किया गया। सरकार की कार्यप्रणाली के पुनर्गठन पर एन. गोपालस्वामी अयंगर की रिपोर्ट (1949) में कुछ सुनिश्चित कार्यों हेतु सचिवालय एवं यथोचित अंगों से युक्त स्थायी समितियों (स्थायी चरित्र से युक्त) के निर्माण की अनुशंसा की गयी थी। ये 'विकेन्द्रीकृत आधार पर समन्वय के आयोजन' के उपकरण थे।
- कैबिनेट समितियों को सरकार के कामकाज के सभी महत्वपूर्ण क्षेत्रों को आपस में समाहित कर लेना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि वे नियमित रूप से बैठक करती रहें ताकि जटिल समस्याओं पर निरंतर ध्यान दिया जाता रहे तथा महत्वपूर्ण नीतियों और कार्यक्रमों को लागू करने वाले कार्यक्रमों की प्रगति की निरंतर समीक्षा होती रहे।
- मंत्रिमंडलीय समितियों की संख्या और नाम सदैव अपरिवर्तित नहीं रहते क्योंकि समय समय पर कुछ विशेष समस्याओं के समाधान के लिए तदर्थ समितियों का गठन कर उन्हें कार्य सम्पन्न होने के उपरांत भंग कर दिया जाता है। किन्तु, चार ऐसी समितियाँ हैं जिनका केंद्र की प्रत्येक सरकार के दौरान अस्तित्व रहा है। ये निम्नलिखित हैं:

1. **राजनीतिक मामलों पर मंत्रिमंडलीय समिति (Cabinet Committee on Political Affairs):** इसकी अध्यक्षता प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है। इसके अन्य सदस्यों में गृह मंत्री, रक्षा मंत्री और विदेश मंत्री शामिल होते हैं। यह समिति आंतरिक विकास तथा अंतरराष्ट्रीय संबंधों से सम्बद्ध महत्वपूर्ण मामलों से संबंधित है। सभी मंत्रिमंडलीय समितियों में यह सर्वाधिक शक्तिशाली होती है। इसे प्रायः 'सुपर कैबिनेट' भी कहा जाता है।
2. **आर्थिक मामलों पर मंत्रिमंडलीय समिति (Cabinet Committee on Economic Affairs):** इसके सदस्यों में प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), वित्त मंत्री, ग्रामीण विकास मंत्री और उद्योग मंत्री शामिल होते हैं। इसका मुख्य कार्य आर्थिक क्षेत्र में सरकारी गतिविधियों का नियंत्रण एवं समन्वय तथा सामान्यतः देश की अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली का नियमन करना है।
3. **संसदीय कार्य समिति (Committee on Parliamentary Affairs):** इसके सदस्यों में सूचना एवं प्रसारण मंत्री, श्रम मंत्री, संसदीय कार्यमंत्री, विधि मंत्री तथा इसके अध्यक्ष के रूप में गृह मंत्री शामिल हैं। यह समिति संसद में किसी विधि के आसानी से पारित हो जाने के लिए सरकार के कामकाज की प्रगति को ध्यान में रखती है तथा संसद के समक्ष गैर-सरकारी विधेयकों तथा संकल्पों के आने पर सरकार के रवैये का निर्धारण करती है।
4. **नियुक्ति संबंधी मंत्रिमंडलीय समिति (Appointment Committee of the Cabinet):** नियुक्ति समिति के सदस्यों में प्रधानमंत्री (जो इसके अध्यक्ष भी हैं), गृह मंत्री और संबंधित मंत्री शामिल होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.3. सरकार की संसदीय प्रणाली के कार्यकारी सिद्धांत

5.3.1 सामूहिक उत्तरदायित्व का सिद्धांत (Principle of Collective Responsibility)

- सरकार का संसदीय स्वरूप सामूहिक उत्तरदायित्व के सिद्धांत पर आधारित है। संविधान के **अनुच्छेद 75(3)** के अनुसार **मंत्रिपरिषद सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है, राज्यसभा के प्रति नहीं**। इसका अर्थ यह है कि सभी मंत्री सामूहिक रूप से सरकार की नीतियों और निर्णयों के लिए लोकसभा के प्रति जवाबदेह हैं, भले ही वह निर्णय किसी भी मंत्रालय से संबंधित हो।
- निर्णय लिए जाने तक कोई मंत्री निर्णय के संबंध में विभिन्न मुद्दों से संबंधित अपने मतभेद जाहिर कर सकता है, परंतु यदि मंत्रिमंडल द्वारा निर्णय ले लिया जाए तो वह सभी मंत्रियों का सामूहिक निर्णय हो जाता है। यह प्रत्येक मंत्री का कर्तव्य है कि मंत्रिमंडल के निर्णयों का संसद के बाहर और भीतर समर्थन करे। यदि कोई मंत्री मंत्रिमंडल के निर्णय से सहमत नहीं है तो उसके पास त्यागपत्र देने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। इस प्रकार मंत्रिपरिषद एक टीम की तरह कार्य करती है। सरल शब्दों में कहा जाए तो **'वे साथ ही तैरते हैं और साथ ही डूबते हैं'** अर्थात् सामूहिक रूप से उत्तरदायी होते हैं।
- इसी प्रकार यदि लोकसभा मंत्रिपरिषद के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर दे तो राज्यसभा के मंत्रियों समेत सभी मंत्रियों को त्यागपत्र देना पड़ता है। वैकल्पिक रूप से मंत्रिपरिषद राष्ट्रपति को इस आधार पर लोकसभा का विघटन कर नए चुनाव करवाने की सलाह दे सकती है कि सदन मतदाताओं के दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व नहीं करता।

5.3.2 मंत्रियों का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व

- अनुच्छेद 75 में व्यक्तिगत उत्तरदायित्व का सिद्धांत भी निहित है। अनुच्छेद 75(2) के अनुसार मंत्री, राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त अपने पद को धारण करते हैं। इसका अर्थ यह है कि मंत्रिपरिषद के लोकसभा में विश्वास में रहने के बाद भी राष्ट्रपति किसी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। हालाँकि, राष्ट्रपति किसी भी मंत्री को केवल प्रधानमंत्री की सलाह पर ही पदमुक्त कर सकता है।

5.3.3 प्रधानमंत्री की भूमिका

- प्रधानमंत्री मंत्रिपरिषद रूपी मेहराब की सर्वाधिक महत्वपूर्ण शिला है। मंत्रिपरिषद के गठन, इसके अस्तित्व एवं अंत में प्रधानमंत्री की केंद्रीय भूमिका है। यदि प्रधानमंत्री त्यागपत्र दे दे या उसकी मृत्यु हो जाये तो सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद उसके साथ ही समाप्त हो जाती है। प्रधानमंत्री अपने समकक्षों में प्रथम (primus inter pares) होता है। वह मंत्रिमंडल की बैठक आहूत करता है तथा उसकी अध्यक्षता करता है। साथ ही, वह किसी भी मंत्री से त्यागपत्र मांग सकता है या राष्ट्रपति के माध्यम से उसे पद से हटा सकता है।
- संविधान के अनुच्छेद 78 के अनुसार, यह प्रधानमंत्री का कर्तव्य है कि वो राष्ट्रपति को मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों से अवगत करवाये तथा संघ के मामलों के प्रशासन से संबंधित जानकारी उसके समक्ष प्रस्तुत करे। इसी प्रकार प्रधानमंत्री, मंत्रिपरिषद तथा संसद के बीच की मुख्य कड़ी है।

किचन कैबिनेट (Kitchen Cabinet)

- यह कैबिनेट कुछ महत्वपूर्ण मंत्रियों को मिलाकर बनती है जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री होता है। यह औपचारिक रूप से निर्णय लेने वाली उच्चतम संस्था होती है। 'आंतरिक कैबिनेट' या किचन कैबिनेट कहलाने वाला यह छोटा निकाय सत्ता का प्रमुख केंद्र बन गया है।
- इस अनौपचारिक निकाय में प्रधानमंत्री अपने दो से चार प्रभावशाली, पूर्ण विश्वासी सहयोगी रखता है जिनसे वह हर समस्या की चर्चा करता है। यह प्रधानमंत्री को महत्वपूर्ण राजनैतिक तथा प्रशासनिक मुद्दों पर सलाह देती है और महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सहायता करती है। इसमें न केवल कैबिनेट मंत्री शामिल होते हैं अपितु इसके बाहर के, जैसे प्रधानमंत्री के मित्र व पारिवारिक सदस्य भी शामिल होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

6. महान्यायवादी (Attorney General)

- महान्यायवादी, देश का सर्वोच्च विधि अधिकारी होता है। वह राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है। उसमें उन योग्यताओं का होना आवश्यक है जो उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए आवश्यक होती है। दूसरे शब्दों में, वह भारत का नागरिक हो और वह किसी उच्च न्यायालय में 5 वर्षों तक न्यायाधीश रह चुका हो अथवा किसी उच्च न्यायालय में ही 10 वर्षों तक वकालत कर चुका हो या राष्ट्रपति के मतानुसार, वह न्यायिक मामलों का प्रख्यात विधिवेत्ता हो।
- महान्यायवादी का कार्यकाल **निश्चित नहीं** है। वह अपने पद पर राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत बना रहता है। इसका तात्पर्य यह कि राष्ट्रपति के द्वारा वह किसी भी समय हटाया जा सकता है। वह राष्ट्रपति को अपना त्यागपत्र सौंप कर कभी भी अपने पद को रिक्त कर सकता है। पारम्परिक रूप में, सरकार (मंत्रिपरिषद) त्यागपत्र दे दे या बदल जाए तो उसे त्यागपत्र देना होता है क्योंकि इसकी नियुक्ति सरकार की सिफारिश पर होती है।

6.1 महान्यायवादी के कर्तव्य

भारत सरकार के सर्वोच्च कानूनी अधिकारी के रूप में महान्यायवादी के निम्नलिखित कर्तव्य हैं:

- भारत सरकार को विधि संबंधी किसी ऐसे विषय पर सलाह देना जो राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए हों।
- राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए अन्य विधिक कर्तव्यों का पालन करना।
- संविधान या किसी अन्य विधि द्वारा प्रदान किए गये कृत्यों का निर्वहन करना।

राष्ट्रपति द्वारा महान्यायवादी को निम्नलिखित कार्य सौंपे जाते हैं:

- भारत सरकार से संबंधित सभी मामलों में उच्चतम न्यायालय में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना।
- संविधान के अनुच्छेद 143 के तहत, राष्ट्रपति के द्वारा उच्चतम न्यायालय में संदर्भित मामलों के संदर्भ में भारत सरकार का प्रतिनिधित्व करना (उच्चतम न्यायालय से राष्ट्रपति की परामर्श लेने की शक्ति)।
- भारत सरकार से संबंधित किसी भी मामले में किसी उच्च न्यायालय में सुनवाई के लिए उपस्थित रहना।

6.2 अधिकार एवं मर्यादाएँ

- अपने सरकारी कर्तव्यों के निर्वहन में, महान्यायवादी को भारत के राज्यक्षेत्र के भीतर किसी भी न्यायालय में सुनवाई का अधिकार है। उसे संसद के दोनों सदनों में बोलने या कार्यवाही में भाग लेने का या दोनों सदनों की संयुक्त बैठक में मताधिकार के बगैर भाग लेने का अधिकार है। वह किसी संसदीय समिति का सदस्य (मताधिकार बगैर) बन सकता है। वह एक संसद सदस्य की तरह सभी भत्ते एवं विशेषाधिकार प्राप्त करता है। महान्यायवादी की निम्नलिखित सीमाएँ इस प्रकार हैं:
  - वह भारत सरकार के विरुद्ध कोई सलाह नहीं दे सकता तथा उसके विरुद्ध वाद नहीं ले सकता।
  - जिस मामले में उसे भारत सरकार की ओर से पेश होना है, उस पर वह कोई टिप्पणी नहीं कर सकता है।
  - वह भारत सरकार की अनुमति के बिना आपराधिक मामलों में किसी व्यक्ति का बचाव नहीं कर सकता है।
  - वह किसी परिषद या कंपनी में भारत सरकार की अनुमति के बिना निदेशक का पद ग्रहण नहीं कर सकता है।

इंग्लैंड में अटॉर्नी जनरल का पद राजनीतिक और विधिक दोनों का मिश्रण है। अटॉर्नी जनरल मंत्रिमंडल का सदस्य होता है। भारत में महान्यायवादी मंत्रिपरिषद् का सदस्य नहीं होता है।

- हालाँकि, वह सरकारी कर्मचारी की श्रेणी में नहीं आता है और उसे निजी विधिक कार्यवाही से रोका नहीं जा सकता है। भारत के महान्यायवादी की कार्यालयी जिम्मेदारियों के निर्वहन में उसकी सहायता के लिये सॉलिसिटर जनरल और अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल के पदों का प्रावधान भी किया गया है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

8. राज्य कार्यपालिका

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. राज्यपाल 3
1.1 नियुक्ति 3
1.1.1. निर्वाचन के स्थान पर राज्यपाल की नियुक्ति की पद्धति को अपनाने के कारण 4
1.1.2. केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के कारण राज्यपाल की पदमुक्ति से संबंधित उत्पन्न विवाद 4
1.2 राज्यपाल पद हेतु निर्धारित अर्हताएं एवं शर्तें 5
1.3 राज्यपाल की शक्तियां एवं कार्य 6
1.3.1 कार्यकारी शक्तियां 6
1.3.2 विधायी शक्तियां 6
1.3.3 वित्तीय शक्तियां 8
1.3.4 न्यायिक शक्तियां 8
1.3.5 क्षमादान की शक्तियां 8
1.4 राज्यपाल का विवेकाधिकार 9
1.5 राज्यपाल का विशेष उत्तरदायित्व 9
1.6 परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार 10
1.7 राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन 10
1.8 राज्यपाल के संबंध में गठित विभिन्न आयोग एवं न्यायिक निर्णय 11
1.8.1 प्रशासनिक सुधार आयोग 11
1.8.2 भगवान सहाय समिति 12
1.8.3 राजमन्नार समिति 12
1.8.4 सरकारिया आयोग 13
1.8.5 संविधान की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग 14
1.8.6 पुंछी आयोग 14
1.9 राष्ट्रपति शासन से संबंधी कुछ नवीनतम विवाद 15
1.9.1 अरुणाचल प्रदेश विवाद 15
1.9.2 उत्तराखंड विवाद 15
1.10 राज्यपाल की स्थिति 16
1.11 वर्तमान में राज्यपाल पद की प्रासंगिकता 17
2. मुख्यमंत्री 17
2.1 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियां 17
2.1.1 मंत्रिपरिषद के सन्दर्भ में 17
2.1.2 राज्यपाल के सन्दर्भ में 18
2.1.3 राज्य विधानमंडल के सन्दर्भ में 18
3. मंत्रिपरिषद 19
3.1 मंत्रियों से संबंधित अन्य उपबंध 19
4. राज्य में मुख्य सचिव का पद 19
5. महाधिवक्ता (Advocate general) 20

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

भारत में प्रशासन की विकेन्द्रीकृत व्यवस्था को अपनाया गया है। राज्य कार्यपालिका का गठन संघीय कार्यपालिका की तर्ज पर किया गया है। इसके अंतर्गत राज्य का राज्यपाल, मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद, महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) आदि सम्मिलित होते हैं। संविधान के छठे भाग के अनुच्छेद 153 से 167 तक राज्य कार्यपालिका का वर्णन किया गया है।

1. राज्यपाल

- राज्यपाल राज्य का कार्यकारी प्रमुख होता है तथा उसकी स्थिति केंद्र में राष्ट्रपति के अनुरूप होती है। नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख (संवैधानिक मुखिया) होने के बावजूद राज्यपाल के पास राज्य सरकार को सलाह देने, सावधान करने और प्रोत्साहित करने के अधिकार प्राप्त होते हैं। राज्यपाल की भूमिका मंत्रिपरिषद के एक मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक की होती है। इस भूमिका के अंतर्गत वह संविधान के एक प्रहरी और केंद्र और राज्य के बीच एक जीवंत कड़ी के रूप में कार्य करता है।
- संविधान में **अनुच्छेद 153** के तहत प्रत्येक राज्य के लिए एक राज्यपाल का प्रावधान किया गया है। हालांकि, **सातवें संविधान संशोधन अधिनियम (1956)** द्वारा इसमें संशोधन करते हुए यह प्रावधान जोड़ा गया कि 'एक ही व्यक्ति को दो या अधिक राज्यों का राज्यपाल नियुक्त किया जा सकता है'।

1.1 नियुक्ति

- **अनुच्छेद 155 के अनुसार**, राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति के मुहर लगे आज्ञापत्र के माध्यम से होती है और वह **राष्ट्रपति के प्रसादपर्यंत** पद धारण करता है। व्यावहारिक रूप से, राज्यपाल केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त होता है। सामान्यतः राज्यपाल का कार्यकाल 5 वर्ष का होता है, परन्तु उसे राष्ट्रपति के द्वारा कभी भी पद से हटाया जा सकता है।
- प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग ने इस पद को अधिक सशक्त बनाने के लिए अनुशंसाएं की। पुंछी आयोग ने इस संबंध में अनुशंसा की कि राज्यपाल के पद के साथ "राजनीतिक फुटबॉल" की तरह होने वाले व्यवहार को रोका जाना चाहिए तथा इस पद के कार्यकाल को नियत किया जाना चाहिए ताकि इसके राजनीतिकरण को रोका जा सके।
- संविधान निर्माताओं ने राज्यपाल के पद की एक गैर-राजनीतिक पद के रूप में परिकल्पना की थी, जो केंद्र और राज्य के बीच समन्वय के लिए कड़ी का कार्य करे। परन्तु व्यवहार में यह प्रयोग में नहीं लाया गया है तथा इसके विपरीत इसका प्रयोग अपने चहेते लोगों यथा:- पूर्व नौकरशाहों एवं राजनीतिज्ञों को संरक्षण देने के रूप में किया गया। इस सन्दर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि राज्यपाल के पद का प्रयोग राजनेताओं और नौकरशाहों की सेवानिवृति के पश्चात् पुरस्कार के रूप में किया जाता है।
- तमिलनाडु सरकार द्वारा गठित राजमन्नार समिति ने राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में निम्नलिखित सुझाव दिए:
  - राज्यपाल के रूप में किसी व्यक्ति की नियुक्ति के लिए सम्बंधित राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श अवश्य किया जाना चाहिए।
  - यदि मुख्यमंत्री इस नियुक्ति से असहमत हो तो उस व्यक्ति को नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए।
- इन दोनों सुझावों को **केंद्र-राज्य सम्बन्धों** पर गठित **सरकारिया आयोग** और **पुंछी आयोग** का भी समर्थन प्राप्त हुआ। हालांकि, व्यवहार में इनका अनुसरण शायद ही कभी किया गया हो।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.1.1. निर्वाचन के स्थान पर राज्यपाल की नियुक्ति की पद्धति को अपनाने के कारण

- संविधान के मसौदे में, संविधान निर्माताओं ने प्रत्येक राज्य के राज्यपाल के लिए निर्वाचन का प्रावधान किया था। यह निर्णय संघ की एक इकाई के रूप में राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता देने हेतु किया गया था। हालांकि संविधान सभा ने निर्वाचित राज्यपाल के विचार को त्याग दिया तथा संविधान में राज्यपाल की नियुक्ति की पद्धति को अपनाने का प्रावधान किया गया। इस तर्क के पीछे निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये गये:
  - सरकार की संसदीय प्रणाली में लोकप्रिय निर्वाचित राज्यपाल प्रतिकूल भूमिका निभा सकता है। यदि राज्यपाल का निर्वाचन प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा होता है तो वह जनता का प्रत्यक्ष प्रतिनिधि बन जायेगा और अपनी शक्तियों का प्रयोग वास्तविक प्रमुख की तरह करेगा न कि नाममात्र प्रमुख की तरह।ऐसी स्थिति में राज्यपाल और प्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित मंत्रिपरिषद में प्रतिद्वंदिता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।
  - दूसरी तरफ, यदि राज्यपाल को जनता द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन के स्थान पर राज्य विधानमंडल द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित किया जाये तो इस स्थिति में राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के बीच प्रतिद्वंदिता की संभावना के अधिक अवसर उत्पन्न नहीं होंगे। इसका कारण, उसी विधानमंडल के मंत्रिपरिषद द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति किया जाना है। लेकिन, इससे राज्यपाल के उन राजनीतिक दलों की कठपुतली बन जाने का खतरा उत्पन्न हो जायेगा जिन्होंने उसके निर्वाचन का समर्थन किया है।
  - निर्वाचित राज्यपाल, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित हो या फिर अप्रत्यक्ष रूप से, दोनों ही परिस्थितियों में उसका केंद्र के प्रतिनिधि के रूप में कार्य करना संभव नहीं होता क्योंकि दोनों ही मामलों में राज्यपाल जनता का एक प्रतिनिधि है जोकि राज्य की जनता से अपने अधिकार प्राप्त करता है। राज्य और संघ के बीच मतभेद की स्थिति में, निर्वाचित राज्यपाल की स्थिति में केंद्र सरकार के एक उपयुक्त साधन के रूप में कार्य करने की संभावना नहीं है। दूसरी ओर, राज्यपाल राज्य के क्षेत्र में केंद्र के किसी भी रूप में विस्तार के अधिकार के क्रियान्वयन में व्यवधान उत्पन्न कर सकता है। यह आपातकालीन शक्तियों के विचार से भी सुसंगत नहीं है, जिसके तहत केंद्र अत्यधिक प्रभावशाली हो जाता है और संघीय प्रणाली अस्थायी रूप से बाधित हो जाती है।

1.1.2. केन्द्र में सत्ता परिवर्तन के कारण राज्यपाल की पदमुक्ति से संबंधित उत्पन्न विवाद

संवैधानिक प्रावधान

- अनु. 156 के अंतर्गत राज्यपाल का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित किया गया है एवं वह राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त पद धारणा करता है।
- यहाँ 'प्रसादपर्यंत' का अर्थ है- वह अपने पद पर राष्ट्रपति की इच्छा के अनुरूप ही रह सकता है अर्थात् राष्ट्रपति, जब चाहें उसे, उसके पद से हटा सकता है।

विवाद का कारण

- राष्ट्रपति द्वारा 'प्रसादपर्यंत' सिद्धांत का वास्तविक प्रयोग केन्द्रीय मंत्रिमंडल के परामर्श के आधार पर ही किया जाता है जो राज्यपाल की पदमुक्ति से संबंधी विवाद के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारण है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- केन्द्र में गठित नई सरकार अपनी पूर्ववर्ती सरकार द्वारा नियुक्त राज्यपालों पर या तो इस्तीफा देने के लिए दबाव बनाती है या उन्हें राष्ट्रपति के माध्यम से बर्खास्त कर देती है। इस कार्यवाही के लिए निम्नलिखित स्वार्थ उत्तरदायी होते हैं:
  - अपने दल के या कृपापात्र लोगों को विशेषकर पूर्व नौकरशाहों एवं राजनीतिज्ञों को, राज्यपाल के पद के रूप में पुरस्कार दिया जा सके।
  - साथ ही, जब राज्य में केन्द्र के विपरीत अर्थात विपक्षी दलों की सरकार हो तो उन्हें अस्थिर किया जा सके।
- संवैधानिक रूप से उल्लिखित नहीं होने के बावजूद यह मान्य सिद्धांत है कि राज्यपाल को भ्रष्टाचार या संविधान के अतिक्रमण के आधार पर ही हटाया जाना चाहिए। किंतु, व्यवहार में केन्द्र की कोई भी सरकार शायद ही इसका अनुसरण करती हो।

2010 में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

- पूर्व मुख्य न्यायाधीश के.जी. बालाकृष्णन की अध्यक्षता में पांच सदस्यीय खंडपीठ ने निर्णय दिया कि राज्यपाल को केवल इस आधार पर इस्तीफा देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है या हटाया जा सकता है कि:
  - राज्यपाल की विचारधारा एवं नीतियाँ, केन्द्र में सत्तारूढ़ दल की विचारधारा के साथ समानता नहीं रखती।
  - साथ ही, इस आधार पर भी नहीं हटाया जा सकता कि केंद्र सरकार का अब संबंधित राज्यपाल में विश्वास नही रह गया है।
  - इसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि राज्यपाल को हटाने के पूर्व उसको हटाने से संबंधित तथ्यों एवं कारणों को स्पष्ट रूप से राष्ट्रपति को बताना होगा।

विश्लेषण एवं निष्कर्ष

- 2010 के सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के बावजूद, यह देखा गया है कि केंद्र में गठित वर्तमान सरकार एवं इसकी पूर्ववर्ती सरकारों ने भी अपने राजनीतिक उद्देश्यों एवं महत्वाकांक्षाओं को पूर्ण करने के लिए इस संवैधानिक पद का दुरूपयोग किया है।

1.2 राज्यपाल पद हेतु निर्धारित अर्हताएं एवं शर्तें

अनुच्छेद 157 प्रावधान करता है कि किसी व्यक्ति को राज्यपाल के रूप में नियुक्त होने के लिए निम्नलिखित दो अर्हताएं धारण करना आवश्यक है:

- उसे भारत का नागरिक होना चाहिए।
- वह 35 वर्ष की आयु पूर्ण कर चुका हो।

राज्यपाल के पद हेतु संविधान में निम्नलिखित अनिवार्य शर्तें (अनु. 158) निर्धारित की गयी हैं:

- राज्यपाल को संसद और राज्य विधानमंडल का सदस्य नहीं होना चाहिए।
- राज्यपाल को किसी लाभ के पद पर नहीं होना चाहिए।
- राज्यपाल बिना किराया दिए, अपने शासकीय निवासों के उपयोग का हक़दार होगा और ऐसी उपलब्धियों और भत्तों और विशेषाधिकारों का भी, जो संसद, विधि द्वारा अवधारित करे, को प्राप्त करने का हक़दार होगा।
- उसके कार्यकाल के दौरान उसके वेतन और भत्ते में कटौती नहीं की जा सकती है।
- यदि एक ही व्यक्ति को दो या अधिक राज्यों के राज्यपाल के रूप में नियुक्त होता है, तो उसे देय परिलब्धियाँ और भत्ते भारत के राष्ट्रपति द्वारा तय मानकों के अनुसार वे राज्य मिलकर प्रदान करेंगे।

VISION IAS

संबंधित राज्य के उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश, राज्यपाल को पद की शपथ दिलाता है।

- सम्बन्धित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की अनुपस्थिति में, उच्च न्यायालय के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीश द्वारा शपथ की प्रक्रिया पूरी की जाती है।
- राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल को एक राज्य से दूसरे राज्य में स्थानांतरित किया जा सकता है। वह कभी भी राष्ट्रपति को संबोधित करते हुए अपना त्यागपत्र सौंप सकता है। राज्यपाल को हटाने की प्रक्रिया में राज्य विधानमंडल की कोई भूमिका नहीं होती है।

1.3 राज्यपाल की शक्तियां एवं कार्य

राज्यपाल की शक्तियों एवं उसके कार्यों को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत समझ सकते हैं:

1. कार्यकारी शक्तियां
2. विधायी शक्तियां
3. वित्तीय शक्तियां
4. न्यायिक शक्तियां
5. क्षमादान की शक्तियां

1.3.1 कार्यकारी शक्तियां

- **अनुच्छेद 154** में वर्णित किया गया है कि राज्य की समस्त कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होती है और वह इनका प्रयोग संवैधानिक प्रावधानों के तहत स्वयं अथवा अपने अधीनस्थ अधिकारियों के माध्यम से करेगा।
- किसी राज्य के सभी औपचारिक कार्यकारी कार्य राज्यपाल के नाम पर किये जाते हैं। वह, उसके नाम से जारी किये गए आदेश और अन्य प्रपत्र के प्रमाणित होने, के सम्बन्ध में नियम बना सकता है।
- राज्यपाल, राज्य के मुख्यमंत्री, अन्य अधीनस्थ मंत्रियों और राज्य के महाधिवक्ता की नियुक्ति करता है। मंत्री तथा महाधिवक्ता राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करते हैं।
- राज्यपाल, राज्य निर्वाचन आयुक्त को नियुक्त करता है और उसकी सेवा शर्तें और कार्यावधि तय करता है। हालांकि, राज्य निर्वाचन आयुक्त को हटाने की प्रक्रिया उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने की प्रक्रिया के समान है।
- वह राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों को नियुक्त करता है। हालांकि, उन्हें हटाने का अधिकार भारत के राष्ट्रपति को प्राप्त है न कि राज्यपाल को।
- वह मुख्यमंत्री से राज्य के किसी भी प्रशासनिक मामले या किसी विधायी प्रस्ताव की जानकारी प्राप्त कर सकता है।
- वह **अनुच्छेद 356** के तहत राष्ट्रपति से राज्य में **संवैधानिक आपातकाल या राष्ट्रपति शासन** के लिए सिफारिश कर सकता है।
- वह राज्य के विश्वविद्यालयों का कुलाधिपति होता है तथा वह राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलपतियों की नियुक्ति करता है।

1.3.2 विधायी शक्तियां

- राज्य का राज्यपाल विधानसभा के सत्र को आहूत, सत्रावसान या विधानसभा को विघटित कर सकता है।
- राज्य विधानमंडल में किसी विधेयक के पारित होने के पश्चात वह राज्यपाल के समक्ष लाया जाता है। राज्यपाल के पास विधेयक के संबंध में निम्नलिखित विकल्प होते हैं - वह
  - विधेयक को स्वीकार कर सकता है, या
  - अनुमति रोक सकता है, या
  - विधेयक को (धन विधेयक को छोड़कर) विधानमंडल के पास पुनर्विचार के लिए लौटा सकता है, या
  - विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रख सकता है।

VISION IAS

- यदि किसी विधेयक में राज्य के उच्च न्यायालय को प्रदत्त शक्तियों को कम करने संबंधी प्रावधान शामिल हों तो राज्यपाल उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए सुरक्षित रखने के लिए बाध्य होगा। इसके अतिरिक्त, यदि विधेयक अधिकारातीत अर्थात् संवैधानिक उपबन्धों के विरुद्ध हो, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के विरुद्ध हो, देश के व्यापक हित के विरुद्ध हो, राष्ट्रीय महत्व का हो या संविधान के अनुच्छेद 31(a) के तहत किसी सम्पत्ति के अनिवार्य अधिग्रहण से संबंधित हो, तो ऐसे मामलों में भी राज्यपाल विधेयक को सुरक्षित रख सकता है।
- राज्यपाल की राष्ट्रपति के विचार हेतु विधेयक को आरक्षित रखने की शक्ति को किसी न्यायालय में प्रश्नगत नहीं किया जा सकता।
- राज्यपाल, आंग्ल-भारतीय समुदाय के एक व्यक्ति को राज्य विधानसभा का सदस्य नियुक्त कर सकता है।
- द्विसदनीय विधानमंडल वाले राज्यों में विधानपरिषद के कुल सदस्यों के छठे भाग को वह नामित कर सकता है। राज्यपाल इस शक्ति का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के सम्बन्ध में करेगा जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला, सहकारी आन्दोलन और सामाजिक सेवा के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है ।
- **अनुच्छेद 213 के तहत** जब राज्य विधानमंडल का सत्र नहीं चल रहा हो तो वह औपचारिक रूप से अध्यादेश जारी कर सकता है। राज्य विधानमंडल के पुनः सत्र में आने के छह हफ्ते के भीतर इन्हें स्वीकृति मिलना आवश्यक है। इस अवधि के बाद स्वीकृति न मिलने की स्थिति में वह प्रभाव में नहीं रहेगा।
- राज्यपाल किसी भी समय किसी अध्यादेश को वापस ले सकता है।
- विधानमंडल के सदस्यों की निरर्हता के मुद्दे पर निर्वाचन आयोग से विमर्श करने के पश्चात् वह इसका निर्णय करता है।
- राज्यपाल, राज्य वित्त आयोग, राज्य लोक सेवा आयोग और नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट को राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत करता है।

अनुच्छेद 213: विधान मण्डल के सत्र में ना होने की स्थिति में अध्यादेश प्रख्यापित करने की राज्यपाल की शक्ति -

(1) राज्य विधानमंडल के सत्र में ना होने या विधान परिषद् वाले राज्य में विधान-मण्डल के दोनों सदनों के सत्र में ना होने की स्थिति में, यदि किसी समय राज्यपाल को यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तत्काल कार्रवाई करना उसके लिए आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हों। अतः जब राज्य विधायिका विधि निर्माण की स्थिति में नहीं हो तो राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान की गयी है।

परन्तु राज्यपाल, राष्ट्रपति के अनुदेशों के बिना, कोई ऐसा अध्यादेश प्रख्यापित नहीं करेगा। यदि-

(क) वैसे उपबन्ध अन्तर्विष्ट करने वाले विधेयक को विधान-मण्डल मे पुरःस्थापित किए जाने के लिए राष्ट्रपति की पूर्व मंजूरी की अपेक्षा इस संविधान के अधीन है, या

(ख) वह वैसे उपबन्ध अन्तर्विष्ट करने वाले विधेयक को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखना आवश्यक समझता है, या

(ग) वैसे उपबन्ध अन्तर्विष्ट करने वाला राज्य के विधान-मण्डल का अधिनियम इस संविधान के अधीन तब तक अविधिमान्य होता है जब तक राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखे जाने पर उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त नहीं हो गयी होती।

(2) इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश की शक्ति और प्रभाव राज्य के विधान-मण्डल के ऐसे अधिनियम के समान होता है जिसे राज्यपाल ने अनुमति दे दी है,

VISION IAS

किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेश-

(क) राज्य की विधान सभा के समक्ष और विधान परिषद वाले राज्य में दोनों सदनों के समक्ष रखा जाएगा। विधान-मण्डल के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले विधान सभा उसको अस्वीकृत करने का संकल्प पारित कर देती है और यदि विधान परिषद है तो वह उससे सहमत हो जाती है तो, यथास्थिति, संकल्प के पारित होने पर या विधान परिषद द्वारा संकल्प से सहमत होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा, और

(ख) राज्यपाल द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकेगा।

स्पष्टीकरण - यदि विधान परिषद वाले राज्यों में विधानमण्डल के सदन, भिन्न-भिन्न तिथियों को पुनः समवेत किए जाते हैं तो वहां छह सप्ताह की अवधि की गणना पश्चात्वर्ती तिथि से की जाएगी।

(3) यदि और जहां तक इस अनुच्छेद के अधीन अध्यादेश कोई ऐसा उपबन्ध करता है जो राज्य के विधान-मण्डल के ऐसे अधिनियम में जिसे राज्यपाल ने अनुमति दे दी है, अधिनियमित किए जाने पर विधिमान्य नहीं होता तो और वहां तक वह अध्यादेश शून्य होगा।

1.3.3 वित्तीय शक्तियां

- राज्यपाल यह सुनिश्चित करता है कि राज्य-बजट या वार्षिक वित्तीय विवरण को राज्य विधानमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।
- कोई धन विधेयक राज्य विधानमंडल में राज्यपाल की पूर्व सहमति के बाद ही प्रस्तुत किया जा सकता है।
- किसी तरह के अनुदान की मांग राज्यपाल की सहमति के बिना नहीं की जा सकती है।
- वह किसी अप्रत्याशित व्यय के वहन के लिए राज्य की आकस्मिकता निधि से अग्रिम ले सकता है।
- पंचायतों और नगरपालिकाओं की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने के लिए राज्यपाल प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् एक राज्य वित्त आयोग का गठन करता है।

1.3.4 न्यायिक शक्तियां

- सम्बंधित राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल से परामर्श लिया जाता है।
- वह राज्य उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के साथ विचार करके जिला न्यायाधीशों की नियुक्ति, स्थानान्तरण और प्रोन्नति कर सकता है।
- वह राज्य न्यायिक आयोग से जुड़े व्यक्तियों (जिला न्यायाधीशों के अतिरिक्त) की नियुक्ति भी करता है। इन नियुक्तियों में वह राज्य उच्च न्यायालय और राज्य लोक सेवा आयोग के साथ विचार करता है।

1.3.5 क्षमादान की शक्तियां

- **अनुच्छेद 161**, राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध ठहराए गये किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति, प्रदान करता है।

हालांकि राज्यपाल की क्षमादान की शक्तियां निम्नलिखित मामले में राष्ट्रपति की शक्तियों से भिन्न हैं -

- **मृत्युदण्ड के विषय में** राष्ट्रपति के पास मृत्युदंड की सजा को क्षमा करने का अनन्य अधिकार हैं जबकि राज्यपाल को यह शक्ति प्राप्त नहीं है। हालाँकि मृत्युदण्ड को निलंबित करने, परिहार करने एवं लघुकरण करने की शक्ति राज्यपाल को प्राप्त है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **सैन्य न्यायालय के विषय में** राज्यपाल और राष्ट्रपति की क्षमादान की शक्तियां सैन्य न्यायालय द्वारा प्रदत्त सजा के मामले में भी भिन्न हैं, जहाँ राष्ट्रपति को क्षमा करने, लघुकरण, परिहार, निलंबित करने का अधिकार है, वहीं राज्यपाल के पास ऐसा कोई अधिकार नहीं है।

1.4 राज्यपाल का विवेकाधिकार

राज्यपाल के विवेकाधीन कृत्य:

- **अनुच्छेद 163** के तहत दो प्रकार की परिस्थितियों में राज्यपाल से मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना अर्थात् अपने विवेक से कार्य करने की अपेक्षा की गयी है:
  - जो संविधान और संसदीय लोकतंत्र की प्रकृति से प्रत्यक्ष रूप से प्रदत्त हैं।
  - जहां संविधान ने राज्यपाल पर अभिव्यक्त रूप से विशेष उत्तरदायित्व डाला है।

नोट: इसके अतिरिक्त राज्यपाल कुछ अन्य विशेष परिस्थितियों में भी अपने विवेकाधिकार से कार्य करता है। इस बारे में आगे चर्चा की गयी है।

संविधान द्वारा प्रदत्त

प्रथम प्रकार के विवेकाधिकार के तहत निम्नलिखित परिस्थितियों को सम्मलित किया जा सकता है:

- मुख्यमंत्री को चुनना,
- सरकार को विधान सभा में अपने बहुमत को सिद्ध करने के लिए कहना,
- मुख्यमंत्री को पदच्युत करना,
- विधान सभा का विघटन करना,
- राष्ट्रपति शासन की सिफारिश करना (अनु. 356),
- राष्ट्रपति के विचार के लिए विधेयक आरक्षित करना (अनु. 200),
- पुनर्विचार के लिए विधेयक लौटाना (अनु. 200)
- वह प्रशासनिक और विधायी मामलों पर राज्य के मुख्यमंत्री से जानकारी प्राप्त कर सकता है।
- असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम के राज्यपाल द्वारा खनिज उत्खनन की रॉयल्टी के रूप में जनजातीय जिला परिषद को देय राशि का निर्धारण।

राज्यपाल द्वारा अपने विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायपूर्ण और पक्षपात रहित रीति से किया जाना चाहिए। उसका उद्देश्य संविधान और उसके आदर्श एवं संस्थाओं का संरक्षण होना चाहिए। राज्यपाल को राजनीति से प्रेरित होकर किसी दल, समूह या व्यक्ति के हित में काम नहीं करना चाहिए। यह विवेकाधिकार राज्य के संवैधानिक प्रमुख में निहित किया गया है और इसके साथ यह अपेक्षा की गयी है कि वह शक्ति का प्रयोग समझबूझ से और उत्तरदायित्वपूर्ण रीति से करेगा। इस शक्ति के साथ कर्तव्य भी जुड़ा हुआ है। यह किसी अधिनायक या निरंकुश शासक की बंधनहीन शक्ति नहीं है जिसका वह अपनी इच्छानुसार प्रयोग करे। यह शक्ति संविधान की और उत्तरदायी सरकार की विरासत की रक्षा के लिए दी गई शक्ति है।

1.5 राज्यपाल का विशेष उत्तरदायित्व

अनुच्छेद 371 से 371 (j) के तहत राष्ट्रपति के निर्देश पर राज्यपाल को कुछ विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। ऐसे मामलों में राज्यपाल, मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद से परामर्श लेने अथवा किन्हीं विशेष परिस्थितियों में लिए गए परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं है। वह अंततः स्वविवेक के आधार पर कार्य करता है। ये विशेष मामले इस प्रकार हैं:

- अनुच्छेद-371(2) के अनुसार, राष्ट्रपति महाराष्ट्र और गुजरात के राज्यपाल को क्रमशः विदर्भ, मराठवाड़ा एवं शेष महाराष्ट्र तथा सौराष्ट्र, कच्छ एवं शेष गुजरात के विकास के लिए पृथक विकास बोर्ड की स्थापना हेतु विशिष्ट उत्तरदायित्व।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- अनुच्छेद 371-A के तहत नागालैंड के राज्यपाल का त्वेनसांग नागा पहाड़ियों पर आतंरिक अशांति के चलते :-
  - कानून एवं व्यवस्था के सम्बन्ध में,
  - त्वेनसांग जिले के लिए एक परिषद की स्थापना एवं
  - इस जिले और शेष नागालैंड के मध्य वित के उचित एवं समतापूर्ण आबंटन के सम्बन्ध में विशिष्ट उत्तरदायित्व।
- अनुच्छेद 37I-C के अनुसार, मणिपुर के राज्यपाल को भी पहाड़ी क्षेत्रों से निर्वाचित राज्य व्यवस्थापिका की सभाओं की समुचित कार्यवाही सुनिश्चित करने हेतु विशेष उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं।
- अनुच्छेद 371-F, सिक्किम की जनता के विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ शांति सुनिश्चित करना।
- अनुच्छेद 371-H, अरुणाचल प्रदेश में क़ानून और व्यवस्था के संबंध में।
- अनुच्छेद 371-J, कर्नाटक - हैदराबाद-कर्नाटक क्षेत्र के लिए एक पृथक विकास बोर्ड की स्थापना।

1.6 परिस्थितिजन्य विवेकाधिकार

राज्यपाल भी राष्ट्रपति की तरह परिस्थितिजन्य निर्णय में विवेकाधिकार का प्रयोग करता है। निम्नलिखित राजनीतिक परिस्थितियों में वह अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करता है:

- जब किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो, तो राज्यपाल उस स्थिति में नया मुख्यमंत्री नियुक्त कर सकता है। सदन में सरकार द्वारा बहुमत खो देने, विधानसभा चुनाव में किसी भी दल को पूर्ण बहुमत न मिलने की स्थिति में या कार्यकाल के दौरान अचानक मुख्यमंत्री का निधन हो जाने एवं उसके निश्चित उत्तराधिकारी न होने पर मुख्यमंत्री की नियुक्ति के मामले में राज्यपाल अपने विवेक का प्रयोग करेगा।
- सदन में बहुमत खोने के बाद भी त्यागपत्र नहीं देने वाली मंत्रिपरिषद या अविश्वास प्रस्ताव के आधार पर पराजित मंत्रिपरिषद को वह बर्खास्त कर सकता है।

राज्यपाल को निम्नलिखित परिस्थितियों में मंत्रिपरिषद की सलाह के बिना अपने विवेक से कार्य करना चाहिए,

- जहां सलाह में पक्षपात अंतर्निहित है,
- जहां विनिश्चय अयुक्तिसंगत और अनुचित है,
- जहां मंत्रिपरिषद सलाह देने की हकदार नहीं है,
- जहां औचित्य की मांग है कि राज्यपाल अपने विवेक के अनुसार कार्य करें।

1.7 राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन

समानता

- जहां राष्ट्रपति केंद्र में संवैधानिक प्रमुख की भूमिका का निर्वहन करता हैं। वहीं राज्यपाल, राज्य में संवैधानिक प्रमुख की हैसियत से कार्य करता है।
- कार्यपालिका संबंधी सभी निर्णय केंद्र एवं राज्य में क्रमशः राष्ट्रपति एवं राज्यपाल के नाम पर लिए जाते हैं। किंतु, इसका वास्तविक प्रयोग मंत्रिपरिषद के द्वारा किया जाता है।

- राष्ट्रपति, अनुच्छेद 123 के तहत अध्यादेश को प्रख्यापित कर सकता है जिसका प्रभाव संसद के द्वारा निर्मित विधि के समान होता है। वहीं राज्यपाल, अनुच्छेद 213 के तहत अध्यादेश को प्रख्यापित कर सकता है जिसका प्रभाव राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधान के समान होता है।
- सभी विधेयक (चाहे धन विधेयक हो या साधारण विधेयक) राष्ट्रपति एवं राज्यपाल की सहमति से ही कानून का रूप लेते हैं।
- सभी प्रकार के धन विधेयक लोकसभा में राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से जबकि विधानसभा में राज्यपाल की पूर्व सहमति से ही प्रस्तुत किये जाते हैं।

असमानता

- राज्य में राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियां राष्ट्रपति की अपेक्षा अधिक व्यापक है।
- क्षमादान संबंधी शक्तियों में असमानता:
  - राष्ट्रपति की क्षमादान शक्ति (दंड का प्रविलंबन, विराम, परिहार, क्षमा) केंद्रिय विधि तक विस्तारित है। जबकि, राज्यपाल की क्षमादान शक्ति, राज्य विधि तक विस्तारित है।
  - राष्ट्रपति, मृत्युदंड की सजा को क्षमा कर सकता है। जबकि, राज्यपाल मृत्युदंड की सजा को क्षमा नहीं कर सकता है।
  - राष्ट्रपति को 'कोर्ट मार्शल' के तहत सजा पाए व्यक्ति के दंड को कम करने, परिवर्तन करने या माफ करने का अधिकार है। जबकि, राज्यपाल को इस प्रकार की कोई शक्ति प्राप्त (कोर्ट मार्शल के मामले में) नहीं है।
- राष्ट्रपति को जहां लोकसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय के दो सदस्यों को मनोनित करने का अधिकार है। वहीं, राज्यपाल को राज्य विधानसभा में आंग्ल-भारतीय समुदाय के एक सदस्य के मनोनयन का अधिकार है।
- राष्ट्रपति जहां राज्यसभा में 12 गणमान्य लोगों को मनोनित करता है। वहीं, राज्यपाल को राज्य विधानपरिषद (जहां द्विसदनीय विधानमंडल हो) के 1/6 सदस्यों को नामनिर्दिष्ट करने की शक्ति है।

1.8 राज्यपाल के संबंध में गठित विभिन्न आयोग एवं न्यायिक निर्णय

1.8.1 प्रशासनिक सुधार आयोग

राज्यपाल की नियुक्ति तथा भूमिका के सम्बन्ध में प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा निम्नलिखित प्रमुख सिफ़ारिशें की गयी:

- ऐसे व्यक्ति को राज्यपाल नियुक्त किया जाना चाहिए, जो दलीय पूर्वाग्रहों से मुक्त हो और जिसका सार्वजनिक जीवन एवं प्रशासन के विषय में लम्बा अनुभव हो।
- कार्यकाल की समाप्ति पर वह पुनः राज्यपाल नियुक्त किये जाने के योग्य नहीं होना चाहिए।
- सेवानिवृति के बाद न्यायाधीशों को राज्यपाल के रूप में नियुक्त नहीं किया जाना चाहिए। लेकिन एक न्यायाधीश, जो सेवानिवृत्त होने के बाद सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करते हुये राजनीतिक पद प्राप्त करता है अथवा निर्वाचित पद पर है, तो उसे राज्यपाल की नियुक्ति के लिए अयोग्य नहीं माना जाना चाहिए।
- राज्यपाल की नियुक्ति के सन्दर्भ में मुख्यमंत्री से परामर्श की स्वस्थ परम्परा को सुदृढ़ता के साथ विकसित किया जाये।
- राज्यपाल द्वारा स्वविवेक की शक्तियों के प्रयोग के विषय में दिशा-निर्देश को केन्द्र की स्वीकृति पर राष्ट्रपति के नाम से जारी किया जाना चाहिए।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष पाक्षिक रिपोर्ट के साथ-साथ आवश्यकता होने पर तदर्थ रिपोर्ट भी प्रस्तुत की जानी चाहिए। ऐसी रिपोर्ट बनाते समय राज्यपाल को स्वविवेक और स्वनिर्णय के आधार पर कार्य करना चाहिए। राष्ट्रपति के विचारार्थ विधेयकों को सुरक्षित रखने के विषय में भी स्वनिर्णय का प्रयोग करना चाहिए।
- मंत्रिपरिषद के बहुमत खो देने की स्थिति में राज्यपाल को मंत्रिपरिषद को विघटित करने से पूर्व विशेष सावधानी अपनानी चाहिए।
- किसी बड़े नीति निर्माण सम्बन्धी विषय पर मंत्रिमण्डल के सदन में पराजित होने की स्थिति में यदि हारने वाला मुख्यमंत्री विधानसभा भंग करने की सलाह देता है, ताकि वह मतदाताओं से निर्णय ले सके, तो राज्यपाल को उसकी सलाह मान लेनी चाहिए।
- अपने संवैधानिक उत्तरदायित्वों को प्रभावी तौर पर पूरा करने के लिए राज्यपाल को अनुच्छेद 167 के प्रावधान के अनुकूल सूचना प्राप्त करनी चाहिए।

1.8.2 भगवान सहाय समिति

प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अपने प्रतिवेदन में राष्ट्रपति के नाम से उन निर्देशों को जारी करने की सिफ़ारिश की गयी थी, जिनके अनुसार राज्यपाल स्वविवेक शक्तियों का प्रयोग करें। 1970 में राज्यपाल सम्मेलन में इस सिफ़ारिश को स्वीकार करते हुए इन निर्देशों को निर्धारित करने हेतु जम्मू कश्मीर के तत्कालीन राज्यपाल भगवान सहाय की अध्यक्षता में 5 सदस्यों की समिति गठित की गयी। समिति के अन्य सदस्य थे: बी. गोपाल रेड्डी, अलीयावर जंग, विश्वनाथन तथा एम. एम. धवन। इस समिति ने निम्नलिखित प्रमुख सिफ़ारिशें दी:

- किसी मुख्यमंत्री द्वारा विधानसभा का विश्वास मत हासिल करने के विषय में विधानसभा का अधिवेशन बुलाने से इन्कार करने की स्थिति में राज्यपाल, मंत्रिपरिषद को बर्ख़ास्त कर सकता है।
- मंत्रिपरिषद को विधानसभा में बहुमत प्राप्त है या नहीं, इसका निर्धारण विधानसभा के द्वारा किया जाना चाहिए। यदि कोई मुख्यमंत्री विधानसभा द्वारा बहुमत के प्रश्न को निर्धारित करने से इन्कार करता है तो यह माना जाना चाहिए कि मंत्रिपरिषद को बहुमत प्राप्त नहीं है।
- मुख्यमंत्री के त्यागपत्र या बर्ख़ास्तगी के बाद राज्य में वैकल्पिक सरकार बनाने की सम्भावना न होने की स्थिति में राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को विधानसभा भंग करने की रिपोर्ट दी जानी चाहिए।
- विधानसभा के मनोनीत सदस्य अथवा किसी ऐसे व्यक्ति को जो राज्य विधानसभा का सदस्य न हो, तो उसे मुख्यमंत्री पद की शपथ नहीं दिलाना चाहिए।
- राष्ट्रपति सचिवालय में एक विशेष कक्ष की स्थापना की जानी चाहिए और इस कक्ष द्वारा विभिन्न राज्यों में समय-समय पर घटित होने वाली राजनीतिक और संवैधानिक घटनाओं के सम्बन्ध में आधिकाधिक सूचनाएँ एकत्र की जानी चाहिए। इस कक्ष को विशेष मामलों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति की अनुमति से समस्त जानकारी राज्यपाल को दी जानी चाहिए, जिससे राज्यपाल को किसी निर्णय में आसानी हो।
- राज्यपाल अपने राज्य का संवैधानिक अध्यक्ष होता है, न कि राष्ट्रपति का अभिकर्ता और संविधान द्वारा राज्यपाल के कर्तव्य को निर्धारित किया गया है।

1.8.3 राजमन्नार समिति

तमिलनाडु सरकार द्वारा 1970 में केंद्र-राज्य संबंधों में सुधार करने एवं उत्पन्न विवादों के सफलतापूर्वक समाधान के लिए राजमन्नार समिति का गठन किया।
इस समिति की प्रमुख सिफ़ारिशें निम्नलिखित हैं:

- अंतर्राज्यीय परिषद का गठन किया जाये।
- राज्यपाल पद पर रह चुके व्यक्तियों को इसी पद पर दूसरे कार्यकाल हेतु पुनर्नियुक्ति के अथवा सरकार के अधीन किसी अन्य पद के, लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाना चाहिए। राज्यपाल को अपने कार्यकाल में पद से तब तक नहीं हटाया जाना चाहिए, जब तक उच्चतम न्यायालय द्वारा जाँच के बाद उसके द्वारा दुर्व्यवहार या उसकी अक्षमता सिद्ध नहीं हो जाए।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- राज्यपाल की नियुक्ति राज्य मंत्रिपरिषद के परामर्श के आधार पर ही की जानी चाहिए तथा इसके लिए एक वैकल्पिक व्यवस्था यह हो सकती है कि राज्यपाल की नियुक्ति इस प्रयोजन के लिए गठित एक उच्च अधिकार प्राप्त निकाय की सलाह के आधार पर की जाए।
- संविधान में राष्ट्रपति को राज्यपालों के लिए निर्देश देने का अधिकार प्रदान करने संबंधी विशेष प्रावधान शामिल किया जाना चाहिए। ये लिखित निर्देश, केन्द्र सरकार द्वारा राज्यपाल को निर्देश देने के विषय में अथवा उसे केन्द्र सरकार से परामर्श करने के विषय में निर्दिष्ट करें। इन निर्देशों के द्वारा उन सिद्धान्तों को भी स्पष्ट किया जाना चाहिए, जिनके सन्दर्भ में राज्यपाल से कार्य करने की अपेक्षा की गयी है। इन कार्यों में राज्य के प्रमुख के रूप में राज्यपाल की संवैधानिक शक्तियों के क्रियान्वयन का अवसर शामिल है।
- संविधान में वर्णित यह प्रावधान कि 'मंत्रिपरिषद का अस्तित्व, राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त होगा' को समाप्त किया जाना चाहिए।
- मुख्यमंत्री के सन्दर्भ में राज्यपाल के लिए निम्नलिखित निर्देश निर्धारित किये जाने चाहिए:
  - राज्यपाल बहुमत दल के नेता को ही मुख्यमंत्री नियुक्त करे।
  - किसी एक दल को बहुमत प्राप्त न होने की स्थिति में, राज्यपाल विधानसभा का अधिवेशन आहूत करे और अधिवेशन में चुने गए व्यक्ति को मुख्यमंत्री नियुक्त करे।
  - मुख्यमंत्री द्वारा किसी मंत्री को पदमुक्त करने की सलाह को राज्यपाल द्वारा मानना चाहिए।
  - यदि राज्यपाल को यह प्रतीत होता है कि मुख्यमंत्री ने विधानसभा में बहुमत खो दिया है, तो ऐसी स्थिति में राज्यपाल को तत्काल विधानसभा का अधिवेशन बुलाकर मुख्यमंत्री को बहुमत साबित करने का निर्देश देना चाहिए। मुख्यमंत्री के बहुमत साबित करने में असफल होने पर ही राज्यपाल को उसे बर्ख़ास्त करना चाहिए।

1.8.4 सरकारिया आयोग

बदले हुए सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य में, केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूद व्यवस्थाओं की कार्यप्रणाली की समीक्षा की दृष्टि से, केंद्र सरकार द्वारा गृह मंत्रालय की अधिसूचना के तहत न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया की अध्यक्षता (सदस्य- श्री बी. शिवरमन और डॉ. एस. आर. सेन) में 1983 में एक आयोग गठित किया गया। समिति ने अनेक अध्ययन, विचार-विमर्श और विस्तृत वार्ता के बाद जनवरी, 1988 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें राज्यपाल से संबंधित कुछ प्रमुख सिफारिशें की गयी। समिति ने कहा कि राज्यपाल की नियुक्ति के समय कुछ विशेष पहलुओं को ध्यान में रखना चाहिए, जैसे :

- वह राज्य से बाहर का व्यक्ति हो;
- वह विगत कुछ वर्षों से सक्रिय राजनीति से जुड़ा हुआ नहीं हो;
- वह राज्य की स्थानीय राजनीति एवं दलीय राजनीति में संलग्न न हो;
- संबंधित तथ्यों और विवरणों के साथ राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति को सौंपे गए प्रतिवेदन के आधार पर ही अनुच्छेद 356 का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- अनुच्छेद 356 का अत्यंत चरम स्थितियों में बहुत संयम से और केवल अंतिम उपाय के रूप में ही प्रयोग किया जाना चाहिए।
- जब तक संसद द्वारा घोषणा का अनुमोदन न कर दिया जाए, विधानसभा का विघटन नहीं होना चाहिए।
- राज्यपाल की नियुक्ति के समय राज्य के मुख्यमंत्री से प्रभावी सलाह लेने की प्रक्रिया को संविधान में शामिल किया जाना चाहिए।
- राज्यपाल के चयन में अल्पसंख्यक वर्ग के व्यक्तियों को समुचित अवसर दिया जाना चाहिए।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.8.5 संविधान की समीक्षा हेतु राष्ट्रीय आयोग

- इस आयोग द्वारा 31 मार्च, 2002 को अपनी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की गयी।
- संवैधानिक प्रावधानों का पालन न करने वाले राज्यों को 'राज्य का शासन संवैधानिक प्रावधानों के अनुरूप नहीं चलाया जा रहा है' के रूप में चेतावनी दी जानी चाहिए। अनुच्छेद 356 के अंतर्गत कार्रवाई करने से पहले, राज्य से प्राप्त किसी भी स्पष्टीकरण को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
- राज्यपाल के उस प्रतिवेदन के संबंध में जानकारी को मीडिया में पूर्ण और विस्तृत रूप में प्रसारित किया जाना चाहिए जिसके आधार पर अनुच्छेद 356 (1) के अंतर्गत उद्घोषणा की गयी है।
- संसद समय-समय पर उद्घोषणा को बनाये रखने की आवश्यकता की समीक्षा कर सके, अतः अनुच्छेद 352 के अंतर्गत की गई आपात की उद्घोषणा से संबंधित रक्षोपायों को अनुच्छेद 356 में भी सम्मिलित किया जाना चाहिए।

1.8.6 पुंछी आयोग

- भारत सरकार ने दो दशक पूर्व सरकारिया आयोग द्वारा अंतिम बार केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित मुद्दे पर विचार के बाद भारत की राजनीति और अर्थव्यवस्था में आए परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए केन्द्र-राज्य संबंधों से संबंधित नए मुद्दों पर विचार करने के लिए 27 अप्रैल, 2007 को भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति मदन मोहन पुंछी की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया था।
- आयोग ने केन्द्र और राज्यों के बीच मौजूद व्यवस्थाओं के प्रकार्य, विधायी संबंधों, प्रशासनिक संबंधों, राज्यपालों की भूमिका, आपातकालीन प्रावधानों, वित्तीय संबंधों, आर्थिक और सामाजिक नियोजन, पंचायती राज संस्थानों, अंतर्राज्य नदी जल सहित संसाधनों को साझा करना इत्यादि शामिल करके सभी क्षेत्रों में अधिकारों, प्रकार्यों और जिम्मेदारियों के संबंध में न्यायालयों द्वारा की गई विभिन्न उद्घोषणाओं की जांच और समीक्षा की। 30 मार्च, 2010 को सरकार को प्रस्तुत की गई सात खंडों की रिपोर्ट में आयोग ने 273 सिफारिशों की थीं।
- पुंछी आयोग ने स्थानीय स्तर पर **केवल प्रभावित हिस्से में आपात स्थिति** लागू करने की अनुशंसा की अर्थात् केवल एक जिले में या उसके कुछ भागों में। इस प्रकार का आपात भी तीन महीने से अधिक अवधि तक जारी नहीं रहना चाहिए।
- पुंछी आयोग ने इस अनुच्छेद का उपयोग करने के संबंध में एस.आर. बोम्मई वाद (1994) में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए दिशानिर्देशों का समावेश करने के लिए अनुच्छेद 356 में उपयुक्त संशोधनों की भी अनुशंसा की।

अनुच्छेद 356 से संबंधित सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय

एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ

- अनुच्छेद 356 का प्रयोग अत्यंत अनिवार्य परिस्थितियों तथा बहुत कम मामलों में किया जाना चाहिए। राजनीतिक लाभ के लिए इसका प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
- सरकार की बहुमत का परीक्षण सदन में किया जाना चाहिए। यह राज्यपाल की स्वेच्छा पर आधारित नहीं होना चाहिए।
- न्यायालय मंत्रिपरिषद द्वारा दी गई सलाह पर प्रश्न नहीं उठा सकता है, किन्तु वह राष्ट्रपति शासन लागू करने के लिए दी गयी सलाह के आधार का परीक्षण कर सकता है और दुर्भावनापूर्ण आशय पाए जाने पर सुधारात्मक कदम उठा सकता है।
- अनुच्छेद 356 का प्रयोग प्रशासकीय तंत्र की विफलता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए बल्कि संवैधानिक मशीनरी के विफल हो जाने की स्थिति में ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

बूटा सिंह वाद

- इस वाद में आरोप यह था कि 2005 में बिहार के राज्यपाल बूटा सिंह ने अपनी **व्यक्तिगत संतुष्टि** के आधार पर विधानसभा के विघटन की अनुशंसा की थी। उनके अनुसार **कुछ दल अनैतिक साधनों के माध्यम से बहुमत प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे।**
- इसमें निर्णय दिया गया की राज्यपाल का प्रतिवेदन यथारूप ग्रहण नहीं किया जा सकता है और राष्ट्रपति शासन लागू करने के आधार के रूप में उपयोग किए जाने से पहले मंत्रिपरिषद द्वारा इसे सत्यापित किया जाना चाहिए।
- सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि यदि अन्य दलों या विधायकों के समर्थन से किसी राजनीतिक दल ने सरकार बनाने का दावा किया है और राज्यपाल के समक्ष संबंधित दल ने बहुमत का प्रमाण प्रस्तुत किया है तो वह अपने **व्यक्तिगत** आकलन के कारण इस आधार पर दावे की उपेक्षा नहीं कर सकता है कि भ्रष्ट साधनों के माध्यम से बहुमत जुटाया गया है।

1.9 राष्ट्रपति शासन से संबंधी कुछ नवीनतम विवाद

1.9.1 अरुणाचल प्रदेश विवाद

- अरुणाचल प्रदेश में जारी राजनीतिक अस्थिरता के वातावरण में, जनवरी 2016 में केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की सिफारिश की थी जिसे राष्ट्रपति द्वारा भी स्वीकृति प्रदान कर दी गयी। अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल ज्योति प्रसाद राजखोवा ने राष्ट्रपति शासन लगाने के लिए 15 जनवरी को राष्ट्रपति को भेजे गए अपने रिपोर्ट में राजभवन के बाहर 'मिथुन' (एक बाईसन) की बलि और पूर्व मुख्यमंत्री नबाम तुकी के एक उग्रवादी संगठन NSCN-K से संपर्क को इसका कारण बताया था।
- कांग्रेस पार्टी द्वारा इसके विरुद्ध सर्वोच्च न्यायालय में याचिका दायर करते हुए पूर्ववर्ती सरकार को पुनः बहाल करने की मांग की। उच्चतम न्यायालय ने इस मामले को संविधान पीठ को सौंपते हुए राज्यपाल के स्वनिर्णय के अधिकारों के संवैधानिक दायरे में होने के संबंध में समीक्षा शुरू की।
- अरूणाचल प्रदेश मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने तत्कालीन राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्नचिन्ह उठाते हुए एवं उनके निर्णयों को निरस्त करते हुए पहली बार किसी राज्य के पूर्ववर्ती सरकार को पुनः बहाल कर दिया एवं राज्यपाल के संबंध में निम्नलिखित महत्वपूर्ण निर्णय दिए:-
  - जब तक राज्य की निवर्तमान सरकार राज्यपाल के विचार में बहुमत या सदन का विश्वास ना खो दे तब तक उसे विधानसभा की सत्र को एकतरफा ढंग से बुलाने एवं किसी मुद्दे पर संदेश भेजने का अधिकार नहीं है अर्थात् उसका यह एकतरफ लिया गया निर्णय या विवेकाधिकार शक्ति असंवैधानिक है।
  - वह, विधानसभा अध्यक्ष को हटाने संबंधी निर्णय नहीं ले सकता।
  - राज्यपाल, राज्य मंत्रिपरिषद के 'परामर्श' के अनुसार कार्य करने हेतु बाध्य हैं। जहां तक उसके विवेकाधीन शक्ति का प्रश्न है, वह **'संवैधानिक दायरे'** के अधीन होनी चाहिए।

1.9.2 उत्तराखंड विवाद

- मार्च, 2016 को तत्कालीन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने संविधान के अनुच्छेद 356 के तहत प्रदत्त अधिकार का उपयोग कर उत्तराखंड में राष्ट्रपति शासन लगाये जाने संबंधी प्रस्ताव को स्वीकृति प्रदान कर दी। राज्य के अस्थिर राजनीतिक घटनाक्रम को ध्यान में रखते हुए राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति शासन लगाए जाने की सिफारिश की गयी थी।
- तत्कालीन मुख्यमंत्री हरीश रावत को सदन में बहुमत साबित करने के लिए 28 मार्च तक का समय दिया गया था लेकिन इससे एक दिन पहले ही राज्यपाल द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट के आधार राष्ट्रपति ने राज्य में राष्ट्रपति शासन लगाने की अनुमित दे दी थी।
- बजट सत्र के दौरान विवाद तब उत्पन्न हुआ जब भाजपा ने आरोप लगाया कि बजट एवं विनियोग विधेयक पारित ही नहीं हुआ है क्योंकि कांग्रेस के पास बहुमत ही नहीं थी।

- मुख्यमंत्री पर विधायकों की खरीद-फरोख्त का आरोप भी लगाया गया।
- उत्तराखंड में राष्ट्रपति शासन लगाए जाने के बाद कांग्रेस ने नैनीताल हाई कोर्ट में इसे चुनौती देते हुए एक याचिका दायर की, जिसे न्यायाधीश यू.सी. ध्यानी की पीठ द्वारा सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया।

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय

उत्तराखंड में राष्ट्रपति शासन लागू किए जाने की औचित्य की जांच करने हेतु गठित संवैधानिक पीठ ने निम्न निर्णय दिया:

- राज्यपाल को यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि वह **राज्य का लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं** है।
- राज्यपाल उत्तरदायी शासन की शक्तियों को ग्रहण नहीं कर सकता है एवं वह मुख्यमंत्री तथा मंत्रिपरिषद के परामर्श के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता है।
- यदि राज्यपाल को लगता है कि राज्य सरकार बहुमत खो चुकी है तो उसे सदन में बहुमत का परीक्षण करने का प्रस्ताव देना चाहिए। इसके पश्चात ही, राष्ट्रपति को रिपोर्ट भेजना चाहिए।
- इस बात से सहमत होने के बावजूद कि लोकतंत्र में सदन में बहुमत सिद्ध करना सर्वाधिक औचित्यपूर्ण तरीका है, राज्यपाल सहित कोई भी अन्य अधिकारी सदन के अध्यक्ष को यह निर्देश नहीं दे सकता कि सदन की प्रक्रिया का संचालन कैसे हो।
- सर्वोच्च न्यायालय ने तत्कालीन हरीश रावत की सरकार को सदन में बहुमत परीक्षण का मौका दिया जिसमें वह सफल रहें एवं राष्ट्रपति शासन को वापस लेना पड़ा।
- उत्तराखंड मामले में सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय **एस. आर. बोम्मई बनाम भारत संघ वाद 1994 में दिए गए फैसले पर ही मुहर** है जिसमें सदन में ही बहुमत सिद्ध करने की अनुशंसा की गई है।

1.10 राज्यपाल की स्थिति

- भारतीय संविधान में केंद्र के समान राज्यों को भी सरकार का संसदीय स्वरुप प्रदान किया गया है। राष्ट्रपति के समान, राज्य स्तर पर राज्यपाल अपनी शक्तियों और कार्यों का निर्वहन मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद के परामर्श पर करता है, सिर्फ उन मामलों को छोड़कर जिसमें वह अपने विवेक का प्रयोग कर सकता है।
- 42वें संविधान संशोधन के पश्चात्, मंत्रिपरिषद की सलाह राष्ट्रपति के लिए बाध्यकारी है, लेकिन इस तरह का कोई प्रावधान राज्यपाल के संबंध में नहीं है। राज्यपाल नाममात्र का कार्यकारी प्रमुख है, वास्तविक कार्यकारी शक्ति मुख्यमंत्री के नेतृत्व वाली मंत्रिपरिषद में निहित होती है। हालांकि राज्यपाल को विवेकाधीन शक्तियों एवं परिस्थितिजन्य विवेकाधीन शक्तियों के रूप में अनेक विशेष शक्तियां प्राप्त है।
- संवैधानिक रूप से राज्यपाल राज्य का प्रमुख होता है, लेकिन व्यावहारिक रूप में वह केंद्र के एजेंट के रूप में कार्य करता है। इस दृष्टिकोण से, राज्य प्रशासन के सन्दर्भ में राज्यपाल की भूमिका वास्तविक प्रमुख से कम और नाममात्र प्रमुख से अधिक दृष्टिगत होती है।
- आदर्श रूप में, राज्यपाल के पद की परिकल्पना केंद्र और राज्य के बीच में **'सहकारी संघवाद'** की एक कड़ी के रूप में की गयी थी। वह राज्य स्तर पर राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत कर सकता है तथा राज्य से सम्बंधित मुद्दों को केंद्र के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है।
- परन्तु व्यवहार में, यह **'सौदेबाजी संघवाद'** का पद बन गया - एक ऐसा तंत्र जिसके माध्यम से केंद्र द्वारा राज्यों से सौदेबाजी/मोल-भाव की जाती है।
- राज्यपाल कार्यालय द्वारा 1967 तक अर्थात् केंद्र और राज्य में एक ही दल की सरकार होने की स्थिति में सहयोगात्मक संघवाद को बढ़ावा दिया गया। हालांकि, बाद में इस पद का प्रयोग बार-बार राजनीति से प्रेरित हो कर किया जाने लगा। कुछ विशेषज्ञ इसे संविधान के सबसे ज्यादा दुरूपयोग किये गये पद के रूप में देखते हैं।

VISION IAS

1.11 वर्तमान में राज्यपाल पद की प्रासंगिकता

- यद्यपि इस पद को समाप्त करने का सुझाव दिया गया है, परन्तु राज्यपाल का पद हमारी संघीय व्यवस्था में प्रासंगिक बना हुआ है। राज्यों में संवैधानिक शासन बनाए रखने में राज्यपाल ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस संवैधानिक पद की गरिमा और स्वतंत्रता को बनाए रखने हेतु राष्ट्रपति पद के समान राज्यपाल के लिए भी कार्यकाल की निश्चित अवधि तथा उसे पदमुक्त करने के संबंध में महाभियोग की प्रक्रिया निर्धारित करने की आवश्यकता है।
- राज्यपाल राज्यस्तरीय कार्यों और गतिविधियों में एक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करता है। प्राकृतिक आपदाओं के प्रकोप, सांप्रदायिक दंगों की स्थिति आदि में राज्यपाल का महत्व और बढ़ जाता है। पुंछी आयोग ने भी विशेष रूप से आंतरिक सुरक्षा के सन्दर्भ में इसके महत्व पर बल दिया है।

2. मुख्यमंत्री

- राज्य का मुख्यमंत्री सरकार का प्रमुख होता है तथा वह वास्तविक कार्यपालिकीय अधिकारी भी होता है। राज्य में मुख्यमंत्री का पद, केंद्र में प्रधानमंत्री के पद के समान होता है।
- **अनुच्छेद 164** के अनुसार, मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। परन्तु, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि राज्यपाल किसी को भी मुख्यमंत्री नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है। साधारणतया, राज्य विधानसभा में बहुमत दल के नेता को ही राज्यपाल उस राज्य का मुख्यमंत्री नियुक्त करता है।
- राज्यपाल ही मुख्यमंत्री को **पद एवं गोपनीयता** की शपथ दिलाता है। किसी मामले में, यदि किसी भी दल को विधानसभा में बहुमत प्राप्त नहीं हो तो ऐसी परिस्थिति में राज्यपाल सबसे बड़े दल या गठबंधन के नेता को मुख्यमंत्री नियुक्त करता है और उसे एक निश्चित अवधि में सदन में अपना बहुमत सिद्ध (विश्वास मत प्राप्त) करने को कहता है।

2.1 मुख्यमंत्री के कार्य एवं शक्तियां

मुख्यमंत्री के कार्यों एवं शक्तियों का विवेचन निम्नलिखित बिन्दुओं के तहत किया जा सकता है:

2.1.1 मंत्रिपरिषद के सन्दर्भ में

राज्य मंत्रिपरिषद के मुखिया के रूप में मुख्यमंत्री निम्नलिखित शक्तियों का प्रयोग करता है:

- राज्यपाल केवल उन व्यक्तियों को ही मंत्री नियुक्त करता है जिनकी सिफारिश मुख्यमंत्री ने की हो।
- वह मंत्रियों के विभागों का वितरण और फेरबदल करता है।
- मतभेद होने पर वह किसी भी मंत्री को त्यागपत्र देने के लिए कह सकता है या राज्यपाल को उसे बर्खास्त करने का परामर्श दे सकता है।
- मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद की बैठक की अध्यक्षता कर इसके निर्णयों को प्रभावित करता है।
- वह सभी मंत्रियों को उनके कार्यों में सहयोग, नियंत्रण, निर्देश और मार्गदर्शन देता है।
- चूंकि मुख्यमंत्री, मंत्रिपरिषद का प्रमुख होता है, अत: उसके त्यागपत्र या मृत्यु से मंत्रिपरिषद स्वतः ही विघटित हो जाती है। इस प्रकार, वह अपने पद से त्यागपत्र देकर सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद् को समाप्त कर सकता है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2.1.2 राज्यपाल के सन्दर्भ में

मुख्यमंत्री, राज्यपाल और मंत्रिपरिषद के मध्य संवाद के एक कड़ी के रूप में कार्य करता है। अतः मुख्यमंत्री का यह कर्तव्य है कि वह:

- राज्य के कार्यों के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक मामलों सम्बन्धी मंत्रिपरिषद के सभी निर्णयों के विषय में राज्यपाल को सूचित करे।
- राज्य के कार्यों के प्रशासन संबंधी और विधान विषयक प्रस्थापनाओं संबंधी जो जानकारी राज्यपाल मांगे, वह प्रदान करे।
- यदि किसी मुद्दे पर मंत्री द्वारा निर्णय ले लिया हो किन्तु मंत्रिपरिषद ने उस पर विचार नहीं किया है तो राज्यपाल द्वारा अपेक्षा किये जाने पर उस मुद्दे को मंत्रिपरिषद के समक्ष विचार के लिए रखे।
- वह राज्य के महत्वपूर्ण अधिकारियों, जैसे- महाधिवक्ता, राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों, राज्य निर्वाचन आयुक्त आदि की नियुक्ति के संबंध में राज्यपाल को परामर्श देता है।

2.1.3 राज्य विधानमंडल के सन्दर्भ में

- राज्यपाल को, विधानमंडल का सत्र आहूत करने एवं सत्रावसान के सम्बन्ध में सलाह देता है।
- वह राज्यपाल को किसी भी समय विधानसभा विघटित करने की सिफारिश कर सकता है।
- राज्य का मुख्यमंत्री ही राज्य विधानसभा के पटल पर सरकार की नीतियों की घोषणा करता है।

उपर्युक्त वर्णित कार्यों एवं शक्तियों के अतिरिक्त, मुख्यमंत्री के कुछ अन्य कार्य और शक्तियां भी हैं जो निम्नलिखित हैं:

- वह राज्य योजना बोर्ड का अध्यक्ष होता है।
- वह सम्बंधित क्षेत्रीय परिषद के क्रमवार उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। प्रत्येक क्षेत्रीय परिषद में शामिल किए गए राज्यों के मुख्यमंत्री, रोटेशन से एक समय में एक वर्ष की अवधि के लिए उस के उपाध्यक्ष के रूप में कार्य करते हैं। क्षेत्रीय परिषदों की अध्यक्षता केन्द्रीय गृह मंत्री द्वारा की जाती है।
- मुख्यमंत्री अंतर्राज्यीय परिषद, राष्ट्रीय विकास परिषद और नीति आयोग के गवर्निंग काउंसिल का सदस्य होता है। इन निकायों की अध्यक्षता प्रधानमन्त्री द्वारा की जाती है।
- वह राज्य सरकार का मुख्य प्रवक्ता होता है।
- राज्य के नेता के रूप में, वह जनता के विभिन्न वर्गों से मिलता है और उनसे उनकी समस्याओं आदि के सम्बन्ध में ज्ञापन प्राप्त करता है।
- आपातकाल के दौरान राजनीतिक स्तर पर वह मुख्य प्रबन्धक होता है।

यद्यपि राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, परंतु राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियां राज्य प्रशासन में मुख्यमंत्री की कुछ शक्तियों, प्राधिकार, प्रभाव, प्रतिष्ठा, भूमिका आदि में कटौती कर सकती हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3. मंत्रिपरिषद

अनुच्छेद 163 वर्णित करता है कि राज्यपाल को सहायता और सलाह देने के लिए मंत्रिपरिषद होगी।

- राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों एवं विशेष उत्तरदायित्वों को छोड़कर अन्य विषयों में सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रिपरिषद होगी, जिसका प्रधान, मुख्यमंत्री होगा।
- विवेकाधीन शक्तियों के सम्बन्ध में राज्यपाल का विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं।
- इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

3.1 मंत्रियों से संबंधित अन्य उपबंध

- मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाएगी तथा अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राज्यपाल, मुख्यमंत्री की सलाह पर करेगा। मंत्री, राज्यपाल के प्रसाद पर्यंत अपना पद धारण करेंगे।
- मंत्रिपरिषद के आकार के विषय में निर्धारित किया गया है कि किसी राज्य की मंत्रिपरिषद में मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों की कुल संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की कुल संख्या के **पंद्रह प्रतिशत** से अधिक नहीं होगी, परंतु किसी राज्य में मुख्यमंत्री सहित मंत्रियों की संख्या बारह से कम नहीं होगी। इस प्रावधान को 91वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 द्वारा जोड़ा गया है।
- मंत्रिपरिषद राज्य की विधान सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगी।
- किसी मंत्री द्वारा अपना पद ग्रहण करने से पहले, राज्यपाल तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए प्रारुप के अनुसार उसको पद की और गोपनीयता की शपथ दिलाएगा।
- कोई मंत्री, जो निरंतर छह मास की किसी अवधि तक राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं है, उस अवधि की समाप्ति पर मंत्री नहीं रहेगा।
- मंत्रियों के वेतन और भत्ते ऐसे होंगे, जो उस राज्य का विधानमंडल, विधि द्वारा, समय-समय पर अवधारित करे और जब तक उस राज्य का विधानमंडल इस प्रकार अवधारित नहीं करता है, तब तक ऐसे होंगे, जो दूसरी अनुसूची में विनिर्दिष्ट हैं।

4. राज्य में मुख्य सचिव का पद

- राज्य में मुख्य सचिव का पद, राज्य की प्रशासनिक सेवा में सर्वाधिक वरिष्ठ प्रशासनिक पद है। इस पद पर सामान्यतः अखिल भारतीय सेवा के अधिकारी नियुक्त किये जाते है।
- इसका चयन मुख्यमंत्री द्वारा किया जाता है जबकि नियुक्ति राज्यपाल के द्वारा की जाती है। इसका निश्चित कार्यकाल नहीं होता।
- मुख्य सचिव, राज्य की प्रशासनिक कार्यपालिका का प्रमुख होता है तथा राज्य सरकार के प्रमुख कार्यकारी के रूप में इन्हे स्वीकार किया जाता है। इसका कार्य विभिन्न विभागों के मध्य समन्वय स्थापित करना है। यह मुख्यमंत्री के सलाहकार तथा मंत्रिमंडल के सचिव के रूप में कार्य करता है।
- मुख्य सचिव, राज्य सिविल सेवा बोर्ड के पदेन अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। यह बोर्ड राज्य में कार्यरत अखिल भारतीय सेवाओं और राज्य सिविल सेवा के अधिकारियों की पोस्टिंग एवं स्थानांतरण संबंधी अनुशंसा करता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5. महाधिवक्ता (Advocate general)

अनुच्छेद 165 के तहत वर्णित किया गया है कि प्रत्येक राज्य का महाधिवक्ता होगा जिसकी नियुक्ति राज्यपाल द्वारा की जाएगी।

- महाधिवक्ता के पद पर नियुक्त व्यक्ति के लिए उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने की अर्हता धारण करना अनिवार्य है।
- महाधिवक्ता राज्य का सर्वोच्च विधि अधिकारी होता है। उसका कर्तव्य होगा कि वह उस राज्य की सरकार को विधि संबंधी ऐसे विषयों पर सलाह दे और विधिक स्वरूप के ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करे, जो राज्यपाल उसको समय-समय पर निर्देशित करे या सौंपे और उन कृत्यों का निर्वहन करे, जो उसको इस संविधान अथवा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा या उसके अधीन प्रदान किए गए हों।
- महाधिवक्ता, राज्यपाल के प्रसादपर्यंत पद धारण करेगा और ऐसा पारिश्रमिक प्राप्त करेगा, जो राज्यपाल अवधारित करे।
- महाधिवक्ता को उस राज्य की विधान सभा की कार्यवाही में भाग लेने अथवा बोलने का अधिकार है हालांकि उसे मतदान का अधिकार नहीं होगा। इसकी सहायता हेतु कई राज्यों में अपर महाधिवक्ता भी नियुक्त किये गए है।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

9. मंत्रालयों का संघटनात्मक ढांचा एवं कार्य आबंटन

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. केन्द्रीय मंत्रालयों की संरचना 3

2. विभागों की आतंरिक संरचना 4

2.1 डेस्क अधिकारी प्रणाली (Desk Officer System) 4

2.2 संबद्ध (संलग्न) या अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate Offices) 4

3. भारत सरकार के प्रमुख मंत्रालय 5

3.1 संसदीय कार्य मंत्रालय (Ministry of Parlimentary Affairs) 5

3.2 गृह मंत्रालय (Ministry of Home Affairs) 6

3.3 रक्षा मंत्रालय (Ministry of Defence) 7

3.4 वित्त मंत्रालय (Ministry of Finance) 7

3.5 मानव संसाधन विकास मंत्रालय (Ministry of Human Resource Development) 7

4. मंत्रिमंडल सचिवालय (Cabinet Secretariat) 8

5. मौजूदा संरचना के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष (Strengths and Weaknesses of the Existing Structure) 8

5.1 सकारात्मक पक्ष (Strengths) 9

5.2 नकारात्मक पक्ष (Weaknesses) 9

6. सरकार की संरचना में सुधार के लिये अनुशंसाएँ 10

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संविधान के अनुच्छेद 77 के खंड (3) द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुए राष्ट्रपति ने 'भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम' {The Government of India (Allocation of Business) Rules} बनाए हैं। इस खंड में प्रावधान है कि राष्ट्रपति भारत सरकार के कार्य को अधिक सुविधाजनक बनाने और कार्यों का विभिन्न मंत्रियों के मध्य आबंटन के लिए नियम बनायेंगे। ये नियम निर्धारित करते हैं कि भारत सरकार का कार्य इन नियमों की पहली अनुसूची में विहित मंत्रालयों, विभागों, सचिवालयों और कार्यालयों द्वारा संपादित किया जाएगा।
- इस प्रकार, कार्य आबंटन नियम वस्तुतः भारत सरकार के कार्यों को विभागों के मध्य ऐसे कार्यों के कार्यात्मक विभाजन (बंटवारे) को निर्दिष्ट करते हुए भारत सरकार के संरचनात्मक आधार को निर्मित करते हैं। इस प्रकार इन नियमों के अंतर्गत भारत सरकार के विभिन्न विभागों के कार्यकलापों और विषयों की एक विस्तृत सूची बनाई गई है। यह सूची संलग्न एवं अधीनस्थ कार्यालयों और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों सहित अन्य संगठनों, को भी सूचीबद्ध करती है।
- इस विस्तृत सूची का लाभ यह है कि यह अलग-अलग विभागों के कार्य क्षेत्रों का स्पष्टत: विभाजन करती है, जिससे उनके उत्तरदायित्व के संबंध में कोई अस्पष्टता नहीं रहती है। कार्य आबंटन सूची को विभिन्न संशोधनों द्वारा अद्यतित रखा गया है।

1. केन्द्रीय मंत्रालयों की संरचना

केन्द्र सरकार के मंत्रालयों की संरचना त्रि-स्तरीय है:

- **राजनीतिक स्तर:** प्रत्येक विभाग का राजनीतिक अध्यक्ष एक मंत्री होता है। विभागीय कार्यों में उसकी सहायता हेतु राज्य मंत्री, उप-मंत्री एवं संसदीय सचिव होते हैं। ये सभी, संसद के सदस्य भी होते हैं। मंत्री के प्रमुख कार्यों में, अपने विभाग से संबंधित नीतियों के निर्माण, क्रियान्वयन तथा निष्पादन पर निगरानी रखना आदि सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त एक मंत्री अपने विभाग द्वारा किए गए समस्त कार्यों के प्रति उत्तरदायी होता है।
- **सचिवालय:** सचिवालय संपूर्ण प्रशासनिक क्रियाकलापों का संचालन एवं नियंत्रण करता है। सचिव, सचिवालय का प्रमुख होता है। इसका प्रमुख कार्य मंत्री को विभाग से संबंधित समस्त क्रियाकलापों तथा नीतियों पर परामर्श देना है। अतः वह मंत्री के प्रमुख परामर्शदाता के रूप में भी कार्य करता है। सचिव भारतीय प्रशासनिक सेवा का वरिष्ठ सदस्य होता है। अधिकारी वर्ग के अंतर्गत सचिव, उप-सचिव तथा अवर सचिव होते हैं। विभाग का आकार बड़ा होने की स्थिति में संयुक्त सचिव अथवा अतिरिक्त सचिव भी होते हैं। अधीनस्थ कर्मचारियों के अंतर्गत अनुभाग अधिकारी, सहायक तथा लिपिक वर्ग के कार्मिक सम्मिलित होते हैं।
- **विभाग अथवा कार्यकारी संगठन:** नीति-निर्माण के संबंध में सचिवालय का कार्य जहां केवल परामर्श देना है वहीं निर्मित नीतियों के कार्यान्वयन का दायित्व विभिन्न संगठनों का होता है। इसे विभाग अथवा मंत्रालय का कार्यकारी संगठन कहा जाता है। विभाग, मंत्रालय का कार्यात्मक तंत्र होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

2. विभागों की आतंरिक संरचना

प्रत्येक विभाग आबंटित विषयों के संबंध में सरकार की नीतियों को तैयार करने तथा उन नीतियों के कार्यान्वयन और समीक्षा करने हेतु भी उत्तरदायी है।

- आबंटित कार्यों के कुशल निपटान के लिए, प्रत्येक विभाग को विंग (Wings), प्रभागों (Divisions), शाखाओं (Branches) और अनुभागों (Sections) में बांटा गया है।
- सामान्यतया प्रत्येक विभाग का नेतृत्व भारत सरकार के एक सचिव (Secretary) द्वारा किया जाता है, जोकि उक्त विभाग का प्रशासनिक प्रमुख होता है और विभाग के नीति और प्रशासन संबंधी सभी मामलों पर संबंधित मन्त्री का मुख्य सलाहकार होता है।
- **विंग:** सामान्यत: प्रत्येक विभाग में कार्यों को विंग में बांटा जाता है और प्रत्येक विंग का प्रभारी विशेष सचिव (Special Secretary) / अपर सचिव (Additional Secretary) / संयुक्त सचिव (Joint Secretary) होता है। इस स्तर के पदाधिकारी को अपने विंग के अधीन आने वाले कार्यों के संबंध में स्वतंत्र कार्यपद्धति और जिम्मेदारी के अधिकतम अवसर प्राप्त होते हैं और विभाग के समग्र प्रशासन के लिए सचिव का संपूर्ण उत्तरदायित्व होता है।
- **प्रभाग:** एक विंग सामान्यतः कई प्रभागों में बंटा होता है और प्रत्येक प्रभाग का प्रभारी अधिकारी, निदेशक (Director) /संयुक्त निदेशक (Joint Director) /उप-सचिव (Deputy Secretary) स्तर का अधिकारी होता है।
- **शाखायें:** एक प्रभाग कई शाखाओं में बंटा हो सकता है और अवर सचिव (Under Secretary) या समकक्ष अधिकारी इसका प्रभारी होता है।
- **अनुभाग:** अनुभाग पूर्णतः स्पष्ट कार्य क्षेत्रों के साथ विभाग की सबसे छोटी संगठनात्मक इकाई होती है। सामान्यतया इसमें एक अनुभाग अधिकारी की देखरेख में कुछ सहायक और क्लर्क कार्य करते हैं। आम तौर पर, विभिन्न मामलों का प्रारम्भिक प्रबंधन (नोटिंग और ड्राफ्टिंग सहित) सहायकों और क्लर्कों द्वारा होता है, जिन्हें संबंधित सहायक (dealing hands) कहा जाता है।

2.1 डेस्क अधिकारी प्रणाली (Desk Officer System)

जहाँ उपर्युक्त प्रणाली एक विभाग के संगठन में अपनायी जाने वाली सामान्य प्रणाली है, वहीं इसके कुछ अपवाद भी हैं जिनमें, डेस्क अधिकारी प्रणाली सबसे अधिक उल्लेखनीय है। इस प्रणाली में एक विभाग के सबसे निचले स्तर पर कार्य का विभाजन विशिष्ट कार्यात्मक डेस्कों में किया जाता है और प्रत्येक डेस्क पर उचित रैंक के दो पदाधिकारियों की नियुक्ति होती है, जैसे- अवर सचिव (Under Secretary) या अनुभाग अधिकारी (Section Officer)। प्रत्येक डेस्क पदाधिकारी अपने अधीन आने वाले मामलों को स्वयं निपटाता है और उन्हें पर्याप्त आशुलिपिकीय (stenographic) और लिपिकीय (clerical) सहायता प्रदान की जाती है।

2.2 संबद्ध (संलग्न) या अधीनस्थ कार्यालय (Subordinate Offices)

प्रत्येक विभाग में एक या अधिक संलग्न या अधीनस्थ कार्यालय हो सकते हैं। इन कार्यालयों की निम्नलिखित भूमिका होती है:

- **संलग्न कार्यालय** जिस विभाग से संबद्ध होते हैं, वे उससे जुड़ी नीतियों के कार्यान्वयन में अपेक्षित व्यापक कार्यकारी निर्देश देने के लिए उत्तरदायी होते हैं। वे तकनीकी सूचना के संग्रह केंद्र के रूप में भी कार्य करते हैं तथा संबंधित मामलों के तकनीकी पहलुओं के संबंध में विभाग को सलाह भी देते हैं।
- **अधीनस्थ कार्यालय** आम तौर पर विशेष अध्ययन वाले दफ्तरों (field establishments) अथवा ऐसी एजेंसियों के रूप में कार्य करते हैं जो सरकारी नीतियों को व्यापक रूप से लागू करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। ये सम्बद्ध कार्यालयों के निर्देशन में कार्य करते हैं अथवा यदि अपेक्षित कार्यकारी निर्देशन पर्याप्त न हो तो ये कार्यालय सीधे ही विभाग के अधीन भी कार्य करते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3. भारत सरकार के प्रमुख मंत्रालय

3.1 संसदीय कार्य मंत्रालय (Ministry of Parliamentary Affairs)

- सरकार की संसदीय प्रणाली में संसद के समय एवं संसाधनों का एक विस्तृत भाग दैनिक कार्यों पर व्यय होता है। इन संसदीय कार्यों के कुशलतापूर्वक निर्वहन की जिम्मेदारी संसदीय कार्य मंत्रालय को सौंपी गयी है। संसदीय कार्य मंत्रालय, केन्द्रीय सरकार का एक महत्वपूर्ण मंत्रालय है। यह संसद में सरकारी कार्य के संबंध में सरकार एवं संसद के दोनों सदनों के मध्य एक महत्वपूर्ण समन्वय कड़ी के रूप में कार्य करता है। मई, 1949 में एक विभाग के रूप में इसकी स्थापना की गई थी परन्तु वर्तमान में यह एक पूर्ण मंत्रालय है।
- भारत के संविधान के अनुच्छेद 77(3) के अधीन बनाए गए भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम, 1961 के अधीन इस मंत्रालय को सौंपे गए कार्य निम्नलिखित हैं:
  - यह मंत्रालय, संसदीय कार्य से संबंधित मंत्रिमंडल की समिति को सचिवालय सम्बन्धी सहायता प्रदान करता है जो कि अन्य बातों के साथ-साथ संसद के दोनों सदनों के सत्रावसान तथा गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों और संकल्पों पर सरकार के अभिमत की सिफारिश करती है।
  - यह मंत्रालय सरकार के मंत्रालयों/विभागों से, संसद में लम्बित विधेयकों, पुर:स्थापित किए जाने वाले नए विधेयकों और अध्यादेशों के प्रतिस्थापक विधेयकों के संबंध में, निकट सम्पर्क बनाए रखता है।
  - यह मंत्रालय विधेयकों की प्रगति पर निरंतर निगरानी रखता है। यह निगरानी विधेयकों के मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदन की अवस्था से लेकर विधेयक के संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित होने तक रखी जाती है। संसद में विधेयकों के पारित होने संबंधी कार्रवाई के सुचारू रूप से पूरा होने को सुनिश्चित करने के लिए इस मंत्रालय के अधिकारी विधेयक प्रस्तुत करने वाले मंत्रालयों/विभागों तथा विधि और न्याय मंत्रालय, जोकि विधेयकों का प्रारूपण तैयार करता है, के अधिकारियों से सतत सम्पर्क बनाए रखते हैं।
  - यह मंत्रालय संसद सदस्यों की परामर्शदात्री समितियाँ गठित करता है तथा सत्रावधि और अन्त:सत्रावधि- दोनों ही के दौरान इनकी बैठकें आयोजित करने के लिए व्यवस्था करता है।
  - यह मंत्रालय संसद में मंत्रियों द्वारा दिए गए आश्वासनों के शीघ्र और उपयुक्त कार्यान्वयन के लिए अन्य मंत्रालयों के साथ कार्रवाई करता है।
  - प्रजातंत्र की जड़ों को मजबूत करने तथा विद्यार्थी समुदाय में अनुशासन और सहनशीलता जैसी स्वस्थ आदतों को विकसित करने और संसद के कार्य संचालन की पूर्ण जानकारी देने के लिए यह मंत्रालय राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली सरकार के विद्यालयों; पूरे देश के केन्द्रीय विद्यालयों; जवाहर नवोदय विद्यालयों और विश्वविद्यालयों/कॉलेजों में युवा संसद प्रतियोगिताओं का आयोजन करता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3.2 गृह मंत्रालय (Ministry of Home Affairs)

गृह मंत्रालय (MHA) को अनेक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपे गये हैं, उनमें से प्रमुख हैं:

- आंतरिक सुरक्षा,
- अर्ध-सैनिक बलों का प्रबंधन,
- सीमा प्रबंधन,
- केन्द्र-राज्य संबंध,
- संघ शासित प्रदेशों का प्रशासन,
- आपदा प्रबंधन।

हालांकि भारत के संविधान की सातवीं अनुसूची के सूची II (राज्य-सूची) की प्रविष्टियां 1 और 2 के तहत, 'लोक व्यवस्था' और 'पुलिस' के संबंध में राज्यों का उत्तरदायित्व निर्धारित किया गया हैं, परन्तु संविधान का अनुच्छेद 355 संघ को यह निर्देश देता है, कि वह बाह्य आक्रमण और आंतरिक अशांति से प्रत्येक राज्य की संरक्षा करे और प्रत्येक राज्य की सरकार का संविधान के उपबंधों के अनुसार चलाया जाना सुनिश्चित करें।

भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम, 1961 के तहत गृह मंत्रालय के निम्नलिखित विभाग हैं: -

- **आंतरिक सुरक्षा विभाग (Department of Internal Security)**: यह विभाग भारतीय पुलिस सेवा, केंद्रीय पुलिस बल, आंतरिक सुरक्षा और कानून-व्यवस्था, उग्रवाद, आतंकवाद, नक्सलवाद, विदेशी एजेंसियों की प्रतिकूल गतिविधियों, पुनर्वास, वीजा देना और अन्य आप्रवासी मामलों, सुरक्षा मंजूरी, आदि से संबंधित कार्यों को संभालता है।
- **राज्य विभाग (Department of States)**: केन्द्र-राज्य संबंध, अंतर्राज्यीय संबंध, संघ शासित प्रदेशों का प्रशासन, स्वतंत्रता सेनानियों की पेंशन, मानवाधिकार, जेल सुधार, पुलिस सुधार, आदि से संबंधित कार्य इसी के अधीन आते हैं।
- **गृह विभाग (Department of Home)**: यह विभाग राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति द्वारा कार्यभार ग्रहण करने की अधिसूचना, प्रधानमंत्री, मंत्री, राज्यपाल की नियुक्ति/पदत्याग की अधिसूचनाएँ, राज्य सभा और लोकसभा के लिए नाम-निर्देशन,जनगणना, जन्म और मृत्यु का पंजीकरण आदि से संबंधित मामलों की देख-रेख करता है।
- **जम्मू-कश्मीर कार्य विभाग (Department of Jammu and Kashmir (J&K) Affairs)** जम्मू-कश्मीर राज्य की सन्दर्भ में संवैधानिक उपबंधों, विदेश मंत्रालय से संबंधित मामलों को छोड़ कर जम्मू-कश्मीर से संबंधित सभी विषय इस विभाग के अंतर्गत आते हैं।
- **सीमा प्रबंधन विभाग (Department of Border Management)**: तटीय सीमाओं सहित अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं का प्रबंधन, सीमा सुरक्षा को सुदृढ़ करना और संबंधित अवसंरचनाओं का सृजन, सीमा क्षेत्र विकास आदि मामले इसके तहत आते हैं; तथा
- **राजभाषा विभाग (Department of Official Language)**, यह विभाग संविधान के राजभाषा से संबंधित उपबंधों और राजभाषा अधिनियम,1963 के उपबंधों के कार्यान्वयन से संबंधित मामलों को संभालता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3.3 रक्षा मंत्रालय (Ministry of Defence)

रक्षा मंत्रालय (सचिवालय) में 4 विभाग शामिल हैं यथा:

1. रक्षा विभाग (Department of Defence: DoD),
2. रक्षा उत्पादन विभाग (Department of Defence Production: DDP),
3. पूर्व सेनानी कल्याण विभाग (Department of Ex-Servicemen Welfare: DESW), और
4. रक्षा अनुसंधान एवं विकास विभाग (Department of Defence Research & Development: DDR&D) एवं
5. वित्तीय प्रभाग (Finance Division)।

- उपरोक्त प्रथम 4 विभागों में से प्रत्येक का प्रमुख एक सचिव होता है। रक्षा मंत्रालय के वित्तीय प्रभाग (फाइनेंस डिवीज़न) का प्रमुख सचिव (डिफेंस फाइनेंस) / वित्तीय सलाहकार (रक्षा सेवा) होता है। फाइनेंस डिवीज़न का प्रमुख रक्षा बजट से जुड़े व्ययों के प्रस्तावों पर वित्तीय नियंत्रण रखने, और रक्षा व्यय के लेखांकन (accounting) एवं आंतरिक लेखा परीक्षा के लिए जिम्मेदार होता है।

3.4 वित्त मंत्रालय (Ministry of Finance)

वित्त मंत्रालय में पाँच विभाग शामिल हैं, यथा:

1. आर्थिक कार्य विभाग (Department of Economic Affairs)
2. व्यय विभाग (Department of Expenditure)
3. राजस्व विभाग (Department of Revenue)
4. निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग; (Department of Investment and Public Asset Management (DIPAM;दीपम)* और
5. वित्तीय सेवा विभाग (Department of Financial Services)

*विनिवेश विभाग की स्थापना 10 दिसम्बर, 1999 को एक अलग विभाग के रूप में की गई थी और बाद में 06 सितम्बर, 2001 को इसे विनिवेश मंत्रालय बना दिया गया था। 27 मई, 2004 से विनिवेश विभाग वित्त मंत्रालय के अधीन एक विभाग था। 14 अप्रैल, 2016 से विनिवेश विभाग का नाम बदलकर **निवेश और लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग (दीपम)** कर दिया गया है।

3.5 मानव संसाधन विकास मंत्रालय (Ministry of Human Resource Development)

- भारत में शिक्षा राज्य और केन्द्र दोनों का सम्मिलित दायित्व है। इसके लिए हर राज्य में एक शिक्षा विभाग है और देश के सभी राज्यों के शिक्षा विभागों के समन्वय से शिक्षा नीतियाँ और शिक्षा व्यवस्थाएँ लागू करने के लिए केन्द्र सरकार का मानव संसाधन विकास मंत्रालय है।
- यह मंत्रालय मुख्यत: दो स्तरों पर काम करता है, पहला है स्कूली शिक्षा औ दूसरा है उच्चतर शिक्षा। इसके माध्यम से यह देश के सामाजिक-आर्थिक ढांचे के संतुलन में एक महत्वपूर्ण और उपचारात्मक भूमिका निभाता है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय दो विभागों के माध्यम से कार्य करता है:
  - स्कूली शिक्षा और साक्षरता विभाग (Department of School Education and Literacy)
  - उच्चतर शिक्षा विभाग (Department of Higher Education)

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

4. मंत्रिमंडल सचिवालय (Cabinet Secretariat)

- भारतीय संविधान के अंतर्गत मंत्रिमंडल को वास्तविक कार्यपालिका के रूप में स्थापित किया गया है। केंद्र सरकार के समस्त प्रशासन का उत्तरदायित्व मंत्रिमंडल का है। मंत्रिमंडल सचिवालय संघीय मंत्रिमंडल की स्टाफ एजेंसी के रूप में कार्य करता है। इसका राजनीतिक प्रमुख प्रधानमंत्री तथा प्रशासनिक प्रमुख मंत्रिमंडल सचिव होता है। इसे 'भारत सरकार (कार्य आबंटन) नियम, 1961' के अंतर्गत एक विभाग का दर्जा प्रदान किया गया है।
- मंत्रिमंडल सचिवालय के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के सफलता पूर्वक संचालन के लिए सचिव से अवर सचिव स्तर के अनेक अधिकारी कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त प्रधानमंत्री को सलाह देने हेतु विभिन्न विषयों से संबंधित विशिष्ट अधिकारी भी होते हैं। मंत्रिमंडल सचिवालय के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं -
  - मंत्रिमंडल की बैठक की कार्यसूची बनाना एवं इसके लिए आवश्यक सूचना और सामग्री उपलब्ध करना।
  - विभिन्न मंत्रालयों के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए और मंत्रालयों के बीच मतभेदों को दूर करते हुए सरकार की निर्णय निर्माण प्रक्रिया में सहायता करना।
  - सचिवालय की स्थाई/तदर्थ समितियों के माध्यम से परस्पर सहमति बनाना।
  - सभी मंत्रालयों/विभागों की गतिविधियों के मासिक सारांश के माध्यम से राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और मंत्रियों को सूचित करना।
  - मंत्रिमंडलीय समितियों को सचिवालय सहायता प्रदान करना।
  - सरकार के कार्यों से संबंधित नियम तैयार करना एवं राष्ट्रपति के अनुमोदन से केंद्र सरकार के मंत्रालयों के कार्यों का बँटवारा करना।
  - विभिन्न मंत्रियों की नियुक्ति एवं त्यागपत्र, मंत्रियों को विभागों के बंटवारे, मंत्रालयों के गठन एवं पुनर्गठन से संबंधी विषयों का निपटारा करना।
- मंत्रिमंडलीय सचिवालय को अंतर मंत्रालयी समन्वय को प्रोत्साहन देने के लिए एक उपयोगी तंत्र के रूप में देखा जाता है, क्योंकि मंत्रिमंडलीय सचिव नागरिक सेवाओं के प्रमुख भी होते हैं। विभिन्न विभागों के सचिव मंत्रिमंडलीय सचिव को समय-समय पर विकास संबंधी जानकारी देना आवश्यक समझते हैं। उनके लिए कार्यकरण नियमावली के अनुसार भी मंत्रिमंडल सचिव को नई गतिविधियों के संबंध में जानकारी देना आवश्यक है।

5. मौजूदा संरचना के सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष (Strengths and Weaknesses of the Existing Structure)

भारत सरकार की मौजूदा संरचना एक लंबी समयावधि में विकसित हुई है। इसमें कुछ निहित शक्तियाँ हैं, जिसने इसे समय की कसौटी पर बनाये रखने में मदद की है। हालांकि, इसमें कमजोरियाँ भी हैं, जिसने व्यवस्था को धीमा, बोझिल और अनुत्तरदायी बनाया है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.1 सकारात्मक पक्ष (Strengths)

- **जाँची-परखी पद्धति**: इन संरचनात्मक इकाईयों ने उन नियमों और स्थापित मानदंडों का, जिनसे राष्ट्र निर्माण में और एक समावेशी राज्य के निर्माण में सहयोग मिला है, अनुपालन किया है। इनसे संकट काल के साथ-साथ सामान्य समय के दौरान भी स्थिरता सुनिश्चित हुई है। इन्होने अधिकार-प्राप्त आयोगों, सांविधिक बोर्डों, स्वायत्त सोसायटियों और संस्थानों के माध्यम से, विशेष रूप से अनुसंधान, विज्ञान और प्रौद्योगिकी से संबंद्ध क्षेत्रों में, नूतन पद्धतियाँ कायम की हैं।
- **स्थिरता**: स्थायी सिविल सेवकों के रूप में सरकारी स्टाफ़ प्रणाली के कारण एक निर्वाचित सरकार से दूसरी सरकार को शक्ति के हस्तांतरण के दौरान निरंतरता और स्थिरता स्थापित हुई है, जिससे भारतीय लोकतंत्र को परिपक्व बनाने में योगदान मिला है।
- **संविधान के प्रति प्रतिबद्धता - राजनीतिक निष्पक्षता**: सुस्पष्ट रूप से निर्धारित नियमों और प्रक्रियाओं ने सिविल सेवकों की निष्पक्षता कायम रखी है, जिससे सरकारी कार्यक्रमों व सेवाओं के राजनीतिकरण पर अंकुश लगा है। इससे, संविधान में अन्तर्निहित सिद्धांतों के आधार पर संस्थानों का विकास करने में मदद मिली है।
- **नीति निर्माण और इसके कार्यान्वयन में संयोजन**: भारत सरकार के ढाँचे से एक ऐसी स्टाफ पद्धति स्थापित करने में मदद मिली है जिससे नीति निर्माण और कार्यान्वयन के मध्य संयोजन प्रोत्साहित होता है। इससे भारत सरकार और राज्य सरकारों दोनों की प्रणाली को मदद मिली है और सहकारी संघवाद की अवधारणा सुदृढ़ हुई है।
- **राष्ट्रीय दृष्टिकोण**: भारत सरकार और साथ ही संलग्न व अधीनस्थ कार्यालयों में कार्यरत सरकारी सेवकों के मध्य संकीर्ण सीमाओं को पार करके एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास हुआ है। इससे राष्ट्रीय एकीकरण को मजबूत करने में सहयोग मिला है।

5.2 नकारात्मक पक्ष (Weaknesses)

- **दैनिक कार्यों पर अनुचित जोर**: भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालय प्रायः उन पर लादे गए नेमी कार्यों (routine work) की मात्रा के बहुत अधिक होने के कारण अपने नीति विश्लेषण और नीति निर्माण कार्यों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थ रहते हैं। इसके फलस्वरूप राष्ट्रीय प्राथमिकताओं पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता। पुनः इससे केन्द्रीकरण की भी एक प्रणाली विकसित हुई है। प्रायः राज्य और स्थानीय शासनों द्वारा किये जा सकने अथवा आउटसोर्स किये जा सकने वाले कार्यों को भी संघ सरकार द्वारा अपने पास बनाए रखा गया है।
- **मंत्रालयों/विभागों का अति विस्तार**: कभी-कभी गठबंधन राजनीति की अनिवार्यताओं के कारण बड़ी संख्या में मंत्रालयों/विभागों के सृजन से कार्य का तर्कसंगत नहीं विभाजन हुआ है तथा निकटत: संबंद्ध विषयों के प्रति भी एकीकृत दृष्टिकोण में कमी आई है।
- **अत्यधिक स्तरों के साथ एक विस्तारित पदानुक्रम**: भारत सरकार की एक विस्तारित ऊर्ध्वाधर संरचना है, जिसकी वजह से विभिन्न मुद्दों की बहुत से स्तरों पर जाँच की जाती है, जिससे प्रायः एक ओर निर्णय निर्माण में देरी होती है और तो दूसरी ओर जवाबदेही में कमी आती है।
- **जोखिम से सुरक्षा**: बहुस्तरीय संरचना का एक नकारात्मक परिणाम यह है कि विपरीत प्रत्यायन और निर्णय-निर्माण में जोखिम से बचने की प्रवृत्ति देखी गई है। विद्यमान संरचना निर्णय लेने के स्थान पर केवल एक सलाहकार के रूप में फाइलों को संचालन के माध्यम से परामर्शों पर अधिकाधिक बल देती है। इससे कार्यों में अनावश्यक बहुलता होती है, देरी और अकुशलता पैदा होती है।
- **टीम वर्क का अभाव**: वर्तमान कठोर पदानुक्रम संरचना, एक टीम वर्क की भावना के विकसित होने की स्थिति को क्षीण करती है जो वर्तमान संदर्भ में अत्यावश्यक है। वर्तमान में अंतर-विषयक दृष्टिकोण उभरती चुनौतियों पर प्रभावी ढंग से प्रतिक्रिया करने के लिए जरूरी है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **कार्यों का बिखराव**: प्रचालन स्तर पर भी, कार्यों को विभाजित और उपविभाजित करने की एक सामान्य प्रवृत्ति है, जिससे सेवाएँ प्रदान करने में देरी होती है, अकुशलता आती है और समय अधिक लगता है।
- **परिकल्पित स्वायत्तता में कमी**; कुछ समितियों और बोर्डों के मामलों को छोड़कर, उनके गठन के समय परिकल्पित स्वायत्तता में पर्याप्त कमी आई है।

6. सरकार की संरचना में सुधार के लिये अनुशंसाएँ

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग का स्पष्ट मत है, कि भारत सरकार का पुनर्गठन निम्नलिखित कोर सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए तथा इनके अनुसार ही इसके कार्य संचालित होने चाहिए:

- केंद्र सरकार को प्रमुख रूप से निम्नलिखित **कोर क्षेत्रों** पर ध्यान देना चाहिए:
  - रक्षा, अंतर्राष्ट्रीय संबंध, राष्ट्रीय सुरक्षा, न्याय और कानून का शासन
  - प्रत्येक नागरिक के लिए उत्तम कोटि की शिक्षा और स्वास्थ्य देखभाल की सुलभता के जरिए मानव विकास
  - अवस्थापना तथा संधारणीय प्राकृतिक संसाधन विकास
  - सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक न्याय
  - आर्थिक प्रबंधन तथा राष्ट्रीय आर्थिक नियोजन
  - अन्य क्षेत्रकों के संबंध में राष्ट्रीय नीतियाँ
- कार्यों को राज्य और स्थानीय शासन पर विकेंद्रीकृत करने के लिए **सहायिकता के सिद्धांत** (principle of subsidiarity) का पालन किया जाना चाहिए।

सहायिकता का सिद्धांत (principle of subsidiarity)

- इसकी कल्पना एक ऐसे सिद्धांत के रूप में की गयी कि एक केंद्रीय प्राधिकारी का कार्य सहायक होना चाहिए जो केवल ऐसे कार्यों का निष्पादन करे जिन्हें मात्र स्थानीय स्तर पर निष्पादित नहीं किया जा सकता।
- इसके अंतर्गत सभी कार्य संभव अधिशासन के लघुतम यूनिट पर नागरिकों के निकटतम आयोजित किये जाने चाहिए और ऊपर की ओर केवल तभी प्रत्यायित किये जाने चाहिए जबकि स्थानीय यूनिट कार्य निष्पादित नहीं कर सकता हो।

- **परस्पर जुड़े हुए विषयों पर एक साथ विचार किया जाना चाहिए।** सरकार में मंत्रालयों और विभागों की पुनर्संरचना करते समय, कार्यात्मक विशेषज्ञता और एकीकृत दृष्टिकोण अपनाने के साथ-साथ एक सर्वमान्य समन्वय आवश्यक है। इसके अंतर्गत सभी सरकारी कार्यों का एक गहन विश्लेषण करना और उसके बाद मंत्रालय से जुड़े कतिपय प्रमुख वर्गों का सामूहीकरण किया जाना सम्मिलित है।
- **नीति निर्माण कार्य एवं कार्यान्वयन कार्य का पृथक्करण** : मंत्रालयों द्वारा नीति निर्माण कार्यों पर अधिक बल दिए जाने की आवश्यकता है तथा कार्यान्वयन कार्यों का प्रत्यायोजन प्रचालन इकाईयों और स्वतंत्र संगठनों/एजेंसियों को कर दिया जाए। यह इसलिए भी जरूरी है क्योंकि वर्तमान में नीति निर्माण एक विशेषज्ञतापूर्ण कार्य है जिसके लिए व्यापक परिप्रेक्ष्य, कार्यक्षेत्र की वैचारिक समझ और बाह्य परिवेश की उचित समझ आवश्यक है। दूसरी ओर नीतियों के कार्यान्वयन के लिए विषय के गहन ज्ञान और प्रबंधकीय दक्षताओं की आवश्यकता होती है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **समन्वित कार्यान्वयन**: नीति निर्माण की तरह कार्यान्वयन के स्तर पर भी बेहतर समन्वय जरुरी है। ऊर्ध्वाधर विभागों के विस्तार से यह एक असंभव कार्य हो जाता है, सिवाय उन मामलों के जहाँ अधिकार प्राप्त आयोगों, सांविधिक निकायों, स्वायत्त सोसाइटी आदि की स्थापना की गई है। महत्वपूर्ण क्षेत्रकों में ऐसे और अधिक अंतर-विषयक निकायों की काफी संभावना है।
- **संरचनाओं को सरल बनाना - स्तरों की संख्या में कमी लाना और उन्हें टीम कार्य के लिए प्रोत्साहित करना:** किसी संगठन की संरचना, सरकारी संगठनों सहित, उन विशिष्ट उद्देश्यों हेतु उपयुक्त बनाने के लिए तैयार की जानी चाहिए, जिसकी प्राप्ति की जानी है। भारत सरकार में पारस्परिक दृष्टिकोण एकसमान ऊर्ध्वाधर पदानुक्रम अपनाने का रहा है (जैसा कि कार्यालय प्रक्रिया नियमावली में निर्धारित है)। टीम-वर्क पर बल देते हुए सरल एवं क्षैतिज संगठनों का निर्माण करने की आवश्यकता है।
- **सुपरिभाषित उत्तरदायित्व:** वर्तमान बहुस्तरीय संगठनात्मक संरचना के कारण अलग-थलग निर्णय निर्माण के साथ गैर निष्पादन की प्रवृति में वृद्धि हुई है। बड़ी संख्या में फाइलों पर परामर्श प्राप्त करने की प्रकृति से प्रसारित उत्तरदायित्व की स्थिति देखने को मिलती है। संगठनात्मक जिम्मेदारियों के स्पष्ट सीमांकन से, एक बेहतर निष्पादन प्रबंधन पद्धति विकसित करने में भी सहायता मिल सकती है।
- **समुचित प्रत्यायोजन (Appropriate delegation):** समुचित प्रत्यायोजन के अभाव से अनावश्यक विलम्ब होता है, कार्यकुशलता में कमी आती है और अधीनस्थ कर्मचारियों के मनोबल में ह्रास होता है।
- **प्रचालन इकाईयों का महत्व:** सरकारी संगठनों की प्रवृत्ति वस्तुतः प्रचालन स्तरों पर अंशों और प्राधिकारों, जनशक्ति और संसाधनों के साथ शीर्ष पर हावी होने की है, जिनका नागरिकों के जीवन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। नागरिकों की जरूरतों के अनुरुप सरकारी स्टाफ ढाँचे का युक्तिकरण अति आवश्यक है।

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

VISIONIAS

www.visionias.in

Classroom Study Material

भारतीय संविधान एवं शासन

10. केंद्रीय विधायिका

VISION IAS

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विषय सूची

1. संसद का गठन 5

1.1. राष्ट्रपति: संसद के एक अंग के रूप में 5

1.2. राज्यसभा 5

1.3. लोकसभा 8

2. निर्वाचन व्यवस्था 8

2.1. लोकसभा 8

2.2. राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन 9

3. कार्य संचालन 9

3.1. दोनों सदनों की अवधि 9

3.2. संसद के सत्र 10

3.3. गणपूर्ति या कोरम 11

4. संसद की सदस्यता 11

4.1. अर्हताएं 11

4.2. निरर्हताएं 11

5. संसद के पीठासीन अधिकारी 15

5.1. लोक सभा अध्यक्ष 15

5.2. प्रोटेम स्पीकर (सामयिक अध्यक्ष) 17

5.3. उपाध्यक्ष 17

5.4.राज्य सभा का सभापति 17

6. संसदीय सचिव 18

7. लोकसभा महासचिव 19

8. संसद में नेता 20

8.1. सदन का नेता 20

8.2. विपक्ष का नेता 20

8.3. व्हिप (WHIP) 20

9. संसदीय कार्यवाही के साधन 22

9.1. प्रश्न काल 22

9.2. शून्य काल 23

9.3. प्रस्ताव 23

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

9.4. संकल्प (Resolution) 25
9.4.1 प्रस्ताव और संकल्प के बीच अंतर 25
9.5. औचित्य प्रश्न 26
10. संसद में विधायी प्रक्रिया 26
10.1. साधारण विधेयक 26
10.1.1 प्रथम पाठन 26
10.1.2 द्वितीय पाठन 27
10.1.3 तृतीय पाठन 27
10.1.4 दूसरे सदन में विधेयक 27
10.1.5 राष्ट्रपति की स्वीकृति 28
10.1.6 दोनों सदनों की संयुक्त बैठक 28
10.1.6 दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के संबंध में सीमाएं 28
10.1.7 संयुक्त बैठक के संबंध में अन्य प्रावधान 28
10.2. धन विधेयक 29
10.3. बजट 31
10.4. वित्त विधेयक 32
10.5. भारत सरकार के खाते 32
10.5.1 भारत की संचित निधि 32
10.5.2 भारत की आकस्मिकता निधि 33
10.5.3 लोक लेखा 33
10.5.4 भारित व्यय 33
10.6. संविधान संशोधन विधेयक 33
11. संसद की समितियां 36
11.1. कार्यपालिका पर संसदीय वाचडॉग की तरह कार्य करने वाली कुछ स्थायी समितियां 37
12. संसदीय विशेषाधिकार 40
12.1. सामूहिक विशेषाधिकार 40
12.2. व्यक्तिगत विशेषाधिकार 41
12.3. विशेषाधिकारों का हनन एवं सदन की अवमानना 41
12.4. सदन की अवमानना या विशेषाधिकार के उल्लंघन के मामले में सजा 41
13. राज्यसभा की भूमिका 42
13.1. राज्यसभा में राज्यों के प्रतिनिधित्व की समानता 43
13.2. राज्यसभा की लोकसभा से तुलना 44
13.2.1 लोकसभा के संबंध में समान शक्तियाँ 44

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

13.2.2 लोकसभा के साथ असमान स्थिति 44
13.2.3 राज्य सभा की विशेष शक्तियां 45

14. संसद की संप्रभुता 47

15. संसद के कार्य तथा इसकी भूमिका 47

16. संसद की दक्षता को बढ़ाना 48

16.1. भारतीय संसद से संबंधित विभिन्न मुद्दे 48

16.2. सांसदों की भूमिका को प्रभावित करने वाले कारक 49

16.3. संसद के खराब कामकाज का प्रभाव 49

16.4. सुझाव 49

17. संसदीय गरिमा का ह्रास 49

18. दलबदल विरोधी कानून की समीक्षा 50

18.1. दलबदल विरोधी कानून के लाभ एवं हानि 51

18.2. दलबदल विरोधी कानून में सुधार हेतु विभिन्न निकायों/समितियों की सिफारिशें 51

19. संसद में विपक्ष की भूमिका 52

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

संसद केंद्र सरकार का विधायी अंग है। संसदीय प्रणाली (जिसे सरकार का 'वेस्टमिंस्टर मॉडल' भी कहते हैं) अपनाने के कारण भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में संसद एक विशिष्ट व केंद्रीय स्थान रखती है। संविधान के भाग V में संसद के गठन, संरचना, अवधि, अधिकारियों, प्रक्रिया, विशेषाधिकार व शक्ति आदि के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है।

1. संसद का गठन

भारत की संसद के तीन अंग हैं:

- भारत के राष्ट्रपति
- उच्च सदन या काउंसिल ऑफ़ स्टेट्स या राज्यसभा (द्वितीय सदन)
- निम्न सदन या हाउस ऑफ़ द पीपल या लोकसभा (प्रथम सदन या लोकप्रिय सदन)

नोट: हाउस ऑफ़ द पीपल और काउंसिल ऑफ़ स्टेट के लिए हिंदी नामों क्रमशः लोकसभा और राज्यसभा को अपनाया गया है।

1.1. राष्ट्रपति: संसद के एक अंग के रूप में

- भारतीय संविधान में अमेरिकी प्रणाली के स्थान पर ब्रिटिश प्रणाली को अपनाया गया है। ब्रिटिश संसद, हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स (उच्च सदन), हाउस ऑफ़ कॉमन्स (निम्न सदन) और क्राउन (राजा या रानी) से मिलकर बनी है। ब्रिटिश क्राउन के समान भारत का राष्ट्रपति भी दोनों में से किसी भी सदन का सदस्य नहीं होता है। हालाँकि, वह संसद का अभिन्न अंग होता है और निम्नलिखित कार्य संपन्न करता है:
  - दोनों सदनों से पारित कोई भी विधेयक बिना राष्ट्रपति की सहमति के क़ानून नहीं बन सकता है।
  - वह दोनों सदनों के सत्र को आहूत या सत्रावसान करता है।
  - समय-समय पर वह दोनों सदनों को संबोधित करता है।
  - अध्यादेश जारी करता है, आदि।
- सरकार की संसदीय पद्धति में विधायी व कार्यकारी अंगों में परस्पर निर्भरता पर जोर दिया जाता है। वहीं दूसरी ओर अमेरिका में राष्ट्रपति प्रणाली को अपनाया गया है, जहाँ विधायी और कार्यकारी अंगों के विभाजन पर जोर दिया गया है।

1.2. राज्यसभा

- किसी भी संघीय शासन में संघीय विधायिका के उच्च सदन को संवैधानिक बाध्यता के चलते राज्य हितों की संघीय स्तर पर रक्षा करने के लिए बनाया जाता है। इसी सिद्धांत के चलते राज्य सभा का गठन हुआ है। भारत में द्वितीय सदन का प्रारम्भ 1918 के मोन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड प्रतिवेदन से हुआ।
- **संरचना:** राज्यसभा में अधिकतम 250 सदस्य होते हैं जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। शेष (238 सदस्य) राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से परोक्ष निर्वाचन के माध्यम से चुने जाते हैं। निर्वाचित सदस्य विभिन्न राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से, उन राज्यों की जनसंख्या के अनुपात में चुने जाते हैं। प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधित्व हेतु कम से कम एक सदस्य अवश्य निर्वाचित होता है। वर्तमान में, राज्यसभा में राष्ट्रपति द्वारा नामांकित 12 सदस्यों सहित कुल 245 सदस्य हैं जिसमें से राज्यों से 229 तथा संघ शासित क्षेत्रों से 4 सदस्य शामिल हैं।
- **सदस्यों का मनोनयन:** राष्ट्रपति, राज्यसभा में 12 ऐसे सदस्यों को मनोनीत करता है, जिन्हें कला, साहित्य, विज्ञान और समाज सेवा विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव हो। ऐसे को मनोनीत करने का उद्देश्य है कि प्रख्यात व्यक्ति चुनावी प्रक्रिया का सामना किए बिना राज्यसभा की सदस्यता प्राप्त कर सकें।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **राज्यों का प्रतिनिधित्व :** संविधान के अनुसार विभिन्न राज्यों और संघ शासित क्षेत्रों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात के आधार पर 238 स्थानों का प्रावधान किया गया है। राज्यों के प्रतिनिधि राज्य की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जाते हैं।
- **संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** संसद द्वारा निर्धारित रीति से संघ शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों को चुना जाता है। इसके तहत संघ राज्य क्षेत्र का प्रत्येक प्रतिनिधि एक निर्वाचक मंडल द्वारा चुना जाता है। यह चुनाव भी आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। सात संघ शासित प्रदेशों में से सिर्फ दिल्ली और पुदुचेरी को ही राज्यसभा में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया है। अन्य पांच संघ शासित प्रदेशों की जनसंख्या काफी कम होने के कारण उन्हें प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है।
- इस प्रकार राज्यसभा संघ की इकाई के रूप में देश के संघीय चरित्र को दर्शाती है। राज्यसभा के लिए सीटों का वितरण संविधान की चौथी अनुसूची में वर्णित है। हालाँकि, यह अमेरिका के द्वितीय सदन में अपनाये गये राज्यों की समानता के सिद्धांत के अनुरूप नहीं है। जहाँ नागालैंड के लिए 1 सीट है वहीं उत्तर प्रदेश को 31 सीटें दी गयी हैं। अमेरिका में, सीनेट में प्रत्येक राज्य के दो प्रतिनिधि होते हैं चाहे उनका क्षेत्रफल या जनसंख्या कुछ भी हो। अमेरिका की सीनेट के 100 सदस्य हैं। ऑस्ट्रेलिया में सीनेट के 60 सदस्य हैं, वहाँ प्रत्येक राज्य से 10 सदस्य चुने जाते हैं। "केंद्र-राज्य संबंधों पर पूंछी आयोग" सहित विभिन्न समितियों/आयोगों ने अमेरिकी सीनेट के समान सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व देने की सिफारिश की है।
- **अवधि:** राज्य सभा एक स्थायी सदन है और भारत के संविधान के अनुच्छेद 83(1) के अनुसार राज्य सभा का विघटन नहीं होगा। परन्तु उसके सदस्यों में से यथा संभव निकटतम एक-तिहाई सदस्य, प्रत्येक द्वितीय वर्ष सेवानिवृत्त हो जाएंगे और उन्हें प्रतिस्थापित करने के लिए उतने ही सदस्य निर्वाचित किए जाएंगे।

राज्य	सीटों की संख्या
आंध्र प्रदेश	11
अरुणाचल प्रदेश	1
असम	7
बिहार	16
छत्तीसगढ़	5
गोवा	1
गुजरात	11
हरियाणा	5
हिमाचल प्रदेश	3
जम्मू और कश्मीर	4

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

झारखंड	6
कर्नाटक	12
केरल	9
मध्य प्रदेश	11
महाराष्ट्र	19
मणिपुर	1
मेघालय	1
मिजोरम	1
नागालैंड	1
राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली	3
ओडिशा	10
पुदुचेरी	1
पंजाब	7
राजस्थान	10
सिक्किम	1
तमिलनाडु	18
तेलंगाना	7
त्रिपुरा	1
उत्तराखंड	3
उत्तर प्रदेश	31
पश्चिम बंगाल	16

तालिका: 1 राज्य सभा का संघटन

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

1.3. लोकसभा

- लोकसभा भारतीय संसद का निम्न सदन तथा लोकप्रिय सदन है। संविधान के अनुच्छेद 81 में इसकी संरचना का वर्णन है। इसके सदस्यों का निर्वाचन सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार द्वारा प्रत्यक्ष रूप से किया जाता है।
- **संरचना:** संविधान द्वारा लोकसभा की अधिकतम सदस्य संख्या 552 तय की गयी है। इसमें राज्यों से अधिकतम 530 प्रतिनिधि तथा संघ शासित क्षेत्रों से अधिकतम 20 प्रतिनिधि हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त आंग्ल-भारतीय समुदाय से 2 सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया जा सकता है, यदि इस समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व लोकसभा में न हो।
- **राज्यों का प्रतिनिधित्व :** राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन जनता द्वारा प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से प्रत्यक्ष रूप से सार्वभौमिक व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत के आधार पर होता है। 18 वर्ष से अधिक आयु का प्रत्येक भारतीय नागरिक, जो किसी अन्य कारण से अयोग्य घोषित ना हो, इस तरह के चुनाव में मतदान करने योग्य है।
- **संघ राज्य क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व:** संघ शासित क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन संसद द्वारा निर्मित विधि के आधार पर निर्धारित होता है। तदनुसार, संसद ने संघ राज्य क्षेत्र (लोकसभा के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन) अधिनियम, 1965 पारित किया है जिसके तहत प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा इन सदस्यों का चयन होता है।
- **मनोनीत सदस्य:** राष्ट्रपति आंग्ल-भारतीय समुदाय से 2 सदस्यों को मनोनीत कर सकते हैं; यदि उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि इस समुदाय का लोकसभा में पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है।

2. निर्वाचन व्यवस्था

2.1. लोकसभा

प्रादेशिक निर्वाचन : लोकसभा के प्रत्यक्ष चुनाव के उद्देश्य से भारत के राज्यक्षेत्र को उपयुक्त प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाना चाहिए। संविधान में दो मामलों में प्रतिनिधित्व की एकरूपता प्रदान की गयी है:

- **विभिन्न राज्यों के बीच:** प्रत्येक राज्य के लिए लोकसभा के सीटों का आवंटन ऐसी रीति से किया जाएगा कि सीटों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या के बीच का अनुपात यथासंभव एक समान हो। (यह प्रावधान 60 लाख से कम जनसंख्या वाले राज्यों पर लागू नहीं होगा)।
- **एक ही राज्य में विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों के बीच:** प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों की संख्या से अनुपात समस्त राज्य में यथासंभव एक समान हो।

प्रत्येक जनगणना के पश्चात् पुनः समायोजन: प्रत्येक जनगणना के पश्चात्, लोकसभा में प्रत्येक राज्य की सीटों को पुनःआबंटित तथा राज्य के प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र को पुनः समायोजित किया जाएगा। इसके संबंध में प्राधिकारी की नियुक्ति और नियम बनाने की शक्ति संसद को प्रदान की गयी है।

संविधान के अनु. 82 के तहत, संसद प्रत्येक जनगणना के पश्चात् एक परिसीमन अधिनियम अधिनियमित कर सकती है। अधिनियम के अस्तित्व में आने के बाद, केंद्र सरकार एक परिसीमन आयोग का गठन करती है। यह परिसीमन आयोग, परिसीमन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों का निर्धारण करता है।

Website - https://upscpdf.com

- 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 के द्वारा 1971 की जनगणना के आधार पर प्रत्येक राज्य के लिए आवंटित स्थानों की संख्या को 2000 ई. तक के लिए निश्चित कर दिया गया था। इसे 84वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001 द्वारा 2026 तक के लिए बढ़ा दिया गया है।
- इसके अलावा लोकसभा में प्रत्येक राज्य को आवंटित स्थानों की संख्या को बिना परिवर्तित किये प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के युक्तिकरण का अधिकार भी दिया गया है।
- 87वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2003 के अनुसार 2001 की जनगणना के आधार पर प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों को युक्तियुक्त बनाने की अनुमति प्रदान की गयी है।

परिसीमन आयोग के आदेश **बाध्यकारी** प्रकृति के होते हैं तथा इसे किसी भी न्यायालय के समक्ष प्रश्नगत नहीं किया जा सकता है। भारत के राष्ट्रपति द्वारा यह आदेश एक निश्चित तिथि से निर्दिष्ट किया जाता है। इसके आदेश की प्रतियाँ लोकसभा और संबंधित विधानसभा में प्रस्तुत की जाती हैं, लेकिन इसमें किसी भी तरह के परिवर्तन की संभावना नहीं होती है। अब तक परिसीमन आयोग को 4 बार 1952, 1963, 1973 और 2002 में गठित किया गया है।

अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों का आरक्षण: प्रत्येक राज्य में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए सीटों के आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इस प्रकार, अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए उस राज्य में आरक्षित सीटों की संख्या उनके जनसंख्या के अनुपात में रखी गयी है। वर्तमान में लोकसभा में अनुसूचित जातियों के लिए 84 और अनुसूचित जनजातियों के लिए 47 सीटों को आरक्षित किया गया है।

2.2. राज्यसभा के सदस्यों का निर्वाचन

- राज्यों के प्रतिनिधि राज्य की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जाते हैं। यह पद्धति छोटे दलों को भी प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए अपनायी गयी है। राज्यसभा चुनाव के लिए खुले मतदान का प्रयोग किया जाता है। इस सन्दर्भ में राज्य का निवासी होना अनिवार्य नहीं है।
- उच्चतम न्यायालय के अनुसार, अमेरिकी सीनेट के समान राज्यसभा एक संघीय सदन नहीं है। इसके सदस्य राज्य सिद्धांत के बजाय पार्टी सिद्धांत के आधार पर मतदान करते हैं।

लोकसभा में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली नहीं अपनाने के कारण

- देश में कम साक्षरता दर होने के कारण इस प्रणाली को समझने में मतदाताओं को होने वाली समस्या (इसकी गूढ़ प्रकृति के कारण) के कारण इसे नहीं अपनाया गया।
- सरकार की संसदीय प्रणाली में आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली उपयुक्त नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि यह विधायिका को कई छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँट देती है। इसी तरह से इसके द्वारा संसद भी कई छोटे समूहों में बंट जायेगी, जिससे सरकार के अस्थायी होने की संभावना बढ़ जाएगी।

3. कार्य संचालन

3.1. दोनों सदनों की अवधि

- राज्यसभा एक स्थायी सदन है और इसका विघटन नहीं होता है। इसके एक तिहाई सदस्य संसद द्वारा बनाए गए प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर सेवानिवृत्त हो जाते हैं। संसद ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के अनुसार राज्यसभा के सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्ष निश्चित किया है। सदस्यों के सेवानिवृत्ति का आदेश राज्यसभा आदेश, 1952 के माध्यम से राष्ट्रपति द्वारा दिया जाता है। पहले बैच के सदस्यों के सेवानिवृत्ति का निर्धारण लॉटरी के माध्यम से किया गया था।
- लोकसभा का सामान्य कार्यकाल 5 वर्ष है, लेकिन राष्ट्रपति पहले भी इसका विघटन कर सकते हैं। इसके अलावा लोकसभा के सामान्य कार्यकाल को आपातकाल के दौरान संसद द्वारा बनायी गयी विधि के तहत एक बार में एक वर्ष के लिए बढ़ाया जा सकता है। हालाँकि, आपातकाल की घोषणा की समाप्ति के बाद इस विस्तार को छह महीने की अवधि के बाद जारी नहीं रखा जा सकता हैं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

3.2. संसद के सत्र

- **आहूत करना:** संसद के प्रत्येक सदन को राष्ट्रपति द्वारा समय-समय पर आहूत किया जाता है। लेकिन संसद के दोनों सत्रों के बीच अधिकतम अंतराल 6 माह से ज्यादा नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, दो अधिवेशनों (दोनों सत्रों) का अंतराल 6 माह से अधिक नहीं होना चाहिए। सामान्यतः वर्ष में तीन सत्र होते हैं:
  - **बजट सत्र** (फरवरी से मई तक),
  - **मानसून सत्र** (जुलाई से सितम्बर तक) और
  - **शीतकालीन सत्र** (नवम्बर से दिसम्बर तक)

  संसद के एक सत्र की अवधि सदन की पहली बैठक से सत्रावसान तक होती है। सत्र के दौरान सदन प्रत्येक दिन अपना कार्य करता है। सदन के सत्रावसान और दूसरे सत्र के प्रारम्भ होने की मध्यावधि को **'अवकाश'** कहते हैं। सदन के सत्र को विघटन या सत्रावसान के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है।
- **स्थगन:** सत्र के दौरान कई बैठकें होती हैं। प्रत्येक बैठक के दो हिस्से होते हैं: सुबह की बैठक (11 बजे से 1 बजे तक) और दोपहर के भोजन के बाद बैठक (2 बजे से 6 बजे तक)। स्थगन के द्वारा सदन को एक निश्चित समय के लिए - कुछ घंटे, कुछ दिन या कुछ सप्ताह के लिए निलंबित किया जा सकता है।
- **अनिश्चित काल के लिए स्थगन (Adjournment Sine Die)** का तात्पर्य है कि अनिश्चित अवधि के लिए सदन को स्थगित कर दिया जाना। अनिश्चित काल के लिए सदन को स्थगित करने का अधिकार सदन के पीठासीन अधिकारी के पास होता है।
- **सत्रावसान:** सत्रावसान (राष्ट्रपति द्वारा किया जाता है) द्वारा सदन के सत्र को समाप्त कर दिया जाता है। यद्यपि, इंग्लैंड में सत्रावसान की तारीख से सभी लंबित कार्य समाप्त हो जाते हैं, परंतु भारत में, अनु. 107(3) के तहत सभी लंबित विधेयक स्वतः समाप्त होने से बच जाते हैं। परंतु सत्रावसान के प्रभाव से सभी लंबित नोटिसों, प्रस्तावों और संकल्पों की समाप्ति हो जाती है।
- **लेम-डक सत्र:** यह नई लोकसभा के चुनाव के उपरांत निवर्तमान लोकसभा के अंतिम सत्र को दर्शाता है। लोकसभा के निवर्तमान सदस्य जो नई लोकसभा में निर्वाचित होकर नहीं आ पाते हैं, उन्हें लेम-डक के नाम से जाना जाता है।
- **विघटन:** जैसा कि पहले बताया गया है, केवल लोकसभा का ही विघटन होता है। लोकसभा का विघटन वस्तुतः लोकसभा के जीवनकाल की समाप्ति है। लोकसभा का विघटन दो विधियों से हो सकता है:
  - प्रत्येक 5 वर्ष की अवधि की समाप्ति पर या आपातकाल के दौरान बढ़ाई गयी अवधि की समाप्ति पर स्वतः विघटन।
  - राष्ट्रपति के द्वारा अनु. 85 (2) के तहत शक्ति का प्रयोग कर।

अपनी शक्तियों के प्रयोग के तहत राष्ट्रपति द्वारा मंत्रिपरिषद् की सलाह पर विघटन और सत्रावसान किया जाता है। जबकि, लोकसभा और राज्यसभा की दैनिक बैठकों को स्थगित करने का अधिकार क्रमशः अध्यक्ष और सभापति को प्राप्त है।

लोकसभा के विघटन से इस सदन के समक्ष उपस्थित सभी मामले (विधेयक, प्रस्ताव, संकल्प, नोटिस, याचिकाएँ आदि) समाप्त हो जाते हैं। इन मामलों को फिर से लाने के लिए नई गठित लोकसभा में पुनः प्रस्तुत करना होता है। हालाँकि, कुछ लम्बित विधेयकों और सभी लम्बित आश्वासनों की सरकार द्वारा बनायी गयी एक समिति के माध्यम से जांच कर उन्हें समाप्त नहीं होने दिया जाता है। विधेयकों की समाप्ति (व्यपगत) के संबंध में स्थिति कुछ इस प्रकार है:

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- लोकसभा में लंबित कोई विधेयक (लोकसभा में आरंभ या राज्यसभा से प्रेषित) समाप्त हो जाता है।
- लोकसभा द्वारा पारित और राज्यसभा में विचाराधीन विधेयक समाप्त हो जाता है।
- कोई विधेयक दोनों सदनों की असहमति के कारण यदि पारित नहीं हो पाया हो और यदि राष्ट्रपति द्वारा लोकसभा के विघटन से पूर्व संयुक्त बैठक की अधिसूचना जारी नहीं की गयी हो तो वह समाप्त हो जाता है।
- राज्यसभा में लंबित कोई ऐसा विधेयक जो लोकसभा द्वारा पारित न हो, समाप्त नहीं होता है।
- दोनों सदनों से पारित कोई विधेयक राष्ट्रपति के पास विचाराधीन हो, तो समाप्त नहीं होता है।
- ऐसा विधेयक जो दोनों सदनों से पारित हो लेकिन राष्ट्रपति द्वारा पुनर्विचार के लिए लौटा दिया गया हो, समाप्त नहीं होता है।

3.3. गणपूर्ति या कोरम

यह सदस्यों की वह न्यूनतम संख्या है जिनकी उपस्थिति के बाद ही सदन का कार्य संपादित होता है। यह कुल सदस्यों (पीठासीन अधिकारी सहित) का दसवां हिस्सा होता है। तात्पर्य यह कि किसी कार्य को संपादित करने के लिए लोकसभा में कम से कम 55 और राज्यसभा में कम से कम 25 सदस्य अवश्य उपस्थित होने चाहिए।

4. संसद की सदस्यता

4.1. अर्हताएं

किसी भी व्यक्ति को संसद सदस्य चुने जाने के लिए, उसे:

(a) भारत का नागरिक होना चाहिए;

(b) राज्यसभा के लिए न्यूनतम आयु 30 वर्ष और लोकसभा के लिए न्यूनतम आयु 25 वर्ष होनी चाहिए;

(c) संविधान की तीसरी अनुसूची के तहत निर्वाचन आयोग द्वारा निर्धारित किसी प्राधिकारी के सामने शपथ या प्रतिज्ञान लेना चाहिए।

संसद विधि द्वारा कुछ अन्य अतिरिक्त योग्यताओं का निर्धारण कर सकती है (अनु. 84)। फलस्वरूप, जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 के तहत संसद ने निम्नलिखित अतिरिक्त योग्यताओं का निर्धारण किया है:

(a) उसे किसी संसदीय निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक निर्वाचक के रूप में पंजीकृत होना चाहिए।

(b) उसे किसी राज्य या संघ शासित प्रदेश में अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति का सदस्य होना चाहिए, यदि वह उनके लिए आरक्षित सीट से चुनाव लड़ना चाहता है।

राज्यसभा की सदस्यता हेतु किसी व्यक्ति को उस राज्य विशेष का निवासी होना आवश्यक नहीं है।

4.2. निरर्हताएं

संविधान के अनु. 102 के तहत कोई व्यक्ति संसद सदस्य नहीं बन सकता यदि:

- वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर, जिसको धारण करने वाले का निरर्हित न होना संसद ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है।
- वह विकृत चित्त हो और सक्षम न्यायालय द्वारा ऐसी घोषणा की गयी हो।
- वह घोषित दिवालिया हो।
- वह भारत का नागरिक न हो, या उसने स्वेच्छापूर्वक किसी विदेशी राष्ट्र की नागरिकता अर्जित कर ली हो, या वह किसी विदेशी राष्ट्र के प्रति निष्ठा स्वीकार करता हो;
- वह संसद द्वारा बनाई किसी विधि द्वारा अयोग्य घोषित किया गया हो।

संसद ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत निम्नलिखित निरर्हताएं निर्धारित की हैं:

- वह चुनावी अपराध या चुनाव में भ्रष्ट आचरण के तहत दोषी करार न दिया गया हो।
- उसे किसी अपराध में दो वर्ष या उससे अधिक की सजा न हुई हो। परन्तु, प्रतिबंधात्मक निषेध विधि के अंतर्गत किसी व्यक्ति का बंदीकरण निरर्हता नहीं है।
- वह निर्धारित समय के अंदर चुनावी खर्च का ब्यौरा देने में असफल न रहा हो।
- वह ऐसे निगम में लाभ के पद या निदेशक या प्रबंध निदेशक के पद पर न हो, जिसमें सरकार का 25 प्रतिशत हिस्सा हो।
- उसे भ्रष्टाचार या निष्ठाहीन होने के कारण सरकारी सेवाओं से बर्खास्त न किया गया हो।
- उसे विभिन्न समूहों में शत्रुता बढ़ाने या रिश्वतखोरी के लिए दंडित न किया गया हो।
- उसे छूआछूत, दहेज व सती प्रथा जैसे सामाजिक अपराधों का प्रसार और इनमें संलिप्त न पाया गया हो।

किसी सदस्य में उपरोक्त निरर्हताओं संबंधी प्रश्न पर राष्ट्रपति का फैसला अंतिम होगा, यद्यपि राष्ट्रपति को निर्वाचन आयोग से राय लेकर उसी के तहत कार्य करना चाहिए।

- अनु. 102 (1) के तहत, कोई व्यक्ति, संसद के किसी भी सदन के सदस्य होने या चुने जाने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जाएगा यदि वह संसद द्वारा बनाए गए किसी क़ानून के तहत अयोग्य घोषित कर दिया जाता है।
- अनु. 191 के तहत ऐसा ही प्रावधान राज्य विधानपरिषद/विधानसभा के लिए भी किया गया है।
- हालाँकि, न्यायालय ने यह स्पष्ट किया है कि कोई व्यक्ति चाहे वह सदस्य हो या गैर-सदस्य तब तक अयोग्य नहीं हो सकता जब तक उसे सजा ना मिली हो।

दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता

- संविधान यह उल्लेख करता है कि 10वीं अनुसूची के प्रावधानों के तहत दल परिवर्तन के आधार पर किसी भी व्यक्ति को संसद की सदस्यता से निरर्ह (अयोग्य) घोषित किया जाएगा। किसी सदस्य को 10वीं अनुसूची के तहत निम्नलिखित कारणों से अयोग्य घोषित किया जाता है:
  (a) यदि वह स्वेच्छा से उस राजनीतिक दल की सदस्यता को छोड़ देता है जिसके टिकट पर उसने संसद सदस्यता प्राप्त की है।
  (b) यदि वह राजनीतिक दल के निर्देशों के विपरीत मत देता है या मतदान में अनुपस्थित रहता है।
  (c) यदि कोई व्यक्ति किसी राजनीतिक दल से निष्कासित कर दिया जाता है और पीठासीन अधिकारी इसकी पुष्टि करते हुए उसे निरर्ह घोषित करता है।
  (d) यदि कोई निर्दलीय सदस्य किसी राजनीतिक दल की सदस्यता ग्रहण करता है।
  (e) यदि किसी सदन का मनोनीत सदस्य स्थान ग्रहण के छह माह के पश्चात् किसी राजनीतिक दल की सदस्यता धारण करे।

लोक सभा ने दल परिवर्तन से संबंधित मुद्दों पर विचार करने के लिए एक समिति गठित की थी। किंतु उसके प्रतिवेदन को भुला दिया गया। 1984 में जब कांग्रेस को अभूतपूर्व विजय प्राप्त हुई तब राजीव गांधी ने विपक्ष से परामर्श करके दल परिवर्तन की समस्या को रोकने के लिए विधि बनाने पर विचार किया। इसके परिणामस्वरूप् वह विधेयक आया जो पारित होकर संविधान 52वां संशोधन अधिनियम बना। इस अधिनियम द्वारा अनु. 101, 102 और 191 में परिवर्तन किए गए और 10वीं अनुसूची जोड़ी गई। ये संशोधन 1 मार्च 1985 से लागू हुए।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अपवाद (दल बदल विरोधी क़ानून के तहत)

- यदि एक राजनीतिक दल का किसी अन्य दल में विलय हो जाता है और कोई सदस्य नए राजनीतिक दल का सदस्य बन जाता है या कोई सदस्य विलय को स्वीकार नहीं करके पृथक् गुट के रूप में कार्य करने का विनिश्चय करता है, तो इन दोनों दशाओं में निरर्हता लागू नहीं होगी। हालांकि विलय के लिए विधान-दल के **दो तिहाई** सदस्यों की सहमति आवश्यक है।
- दल परिवर्तन की विधि लोक सभा या विधान सभा के अध्यक्ष या उपाध्यक्ष को या राज्य सभा के उपसभापति को या विधान परिषद् के सभापति या उप सभापति पर लागू नहीं होगी, यदि वह उस पद पर निर्वाचित होने के पश्चात् अपने राजनीतिक दल की सदस्यता छोड़ देता है और पद पर न रह जाने के पश्चात् अपने राजनीतिक दल में पुनः लौट आता है।

हालांकि विभाजन अपवाद नहीं है:

- संविधान के 52वें संशोधन से यह उपबंध किया गया था कि यदि कोई व्यक्ति अपने मूल राजनीतिक दल को, अन्य सदस्यों के साथ छोड़ देता है और ऐसे सदस्यों की संख्या उस विधायी दल की संख्या के एक तिहाई से कम नहीं है तब यह माना जाएगा कि मूल राजनीतिक दल का विभाजन हो गया है। ऐसा विभाजन वैध माना जाएगा। विभाजन करके दल से जो समूह बाहर आएगा उसके सदस्य निरर्हित नहीं होंगे।
- इस प्रकार विधि थोक में दल पविर्तन की अनुमति देती थी किंतु, फुटकर दलबदल पर रोक लगाती थी। कुछ छोटे राज्यों में जहां सदस्यों की संख्या कम थी वहां विभाजन को अपवाद मानने के कारण एक बाजार बन गया जहां सदस्यों की निष्ठा पद या नकदी के बदले क्रय की जाने लगी।
- निर्वाचन सुधार समिति ने 1990 में दिए गए अपने प्रतिवेदन में, भारत के विधि आयोग ने अपने 170वें प्रतिवेदन में (1999) और संविधान के कार्यकरण का पुनर्विलोकन करने के लिए नियुक्त राष्ट्रीय आयोग ने 2002 में अपने प्रतिवेदन में यह सिफारिश की थी कि दसवीं अनुसूची का पैरा 3 जिसमें दल विभाजन को छूट दी गई है, निरसित कर दिया जाए।
- 91वें संशोधन ने 2003 से विभाजन को अमान्य घोषित कर दिया। पैरा 3 निरसित कर दिया गया है। दल का विभाजन करके बाहर जाने वाला सदस्य निरर्हित हो जाएगा।

इस संबंध में निर्णय कौन करेगा?

- कोई सदस्य निरर्हित हो गया है या नहीं इस प्रश्न का निर्णय उस सदन का सभापति या अध्यक्ष करेगा। यह विनिश्चय अंतिम होगा।

न्यायालयों की भूमिका

- न्यायालय इस बात की परीक्षा कर सकते हैं कि क्या प्राधिकारी का कार्य शक्ति बाह्य है। कोई भी कार्य निम्नलिखित कारणों से **शक्ति बाह्य** हो सकता है:

  (i) वह विधि के किसी आज्ञापक उपबंध (mandatory Provision) का उल्लंघन करता है।

  (ii) वह असद्भावपूर्वक किया गया है और इसलिए दूषित है।

  (iii) वह शक्ति का आभासी प्रयोग है।

  (iv) वह बाहरी या असंगत कारणों पर आधारित है।

  (v) वह नैगर्सिक न्याय के नियमों का उल्लघंन करता है।

अध्यक्ष/सभापति अधिकरण है

- किहोतो होलोहन मामले में न्यायालय ने यह संप्रेक्षण किया कि 10वीं अनुसूची के अधीन अध्यक्ष या सभापति अधिकरण के रूप में कार्य करता है। इस हैसियत में वह उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता के अधीन है। इस उपबंध का एक मुख्य दोष यह है कि सामान्यतः प्रत्येक अध्यक्ष राजनीतिक पूर्वग्रह से ग्रस्त होता है। अध्यक्ष की पदावधि सदन के बहुमत पर आश्रित होती है इसलिए पूर्वग्रह का संदेह निराधार नहीं कहा जा सकता।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

नियम बनाने की शक्ति

- अध्यक्ष और सभापति को 10वीं अनुसूची को प्रभावी करने के लिए नियम बनाने की शक्ति दी गई है।

दल-बदल क़ानून के लाभ

- राजनीतिक स्थिरता लाता है।
- दल में अनुशासन को बढ़ावा देता है।
- मतदाताओं के साथ विश्वास के सेतु को सुदृढ़ करता है।

आलोचना

- यह सांसदों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को कम कर देता है ।
- यह पार्टी व्हिप के द्वारा जनता के प्रति सांसदों की जवाबदेहिता को कम कर देता है।
- भारतीय कानूनों में अभी भी कई ऐसी खामियां हैं जिसके कारण अभी तक दल बदल पर पूरी तरह से रोक नहीं लग पायी है।

सुधार के लिए सुझाव

- बांग्लादेश में, इस तरह के मामले को अध्यक्ष द्वारा तटस्थ निकाय के सम्मुख भेज दिया जाता है।
- केन्या में, उच्च न्यायालय में अपील के माध्यम से अध्यक्ष के निर्णय को बदला जा सकता है।
- सिंगापुर में, अंतिम निर्णय पूरी संसद द्वारा लिया जाता है।
- **दिनेश गोस्वामी समिति** के अनुसार, निर्वाचन आयोग की सलाह पर मामले का निर्णय राष्ट्रपति या राज्यपाल के द्वारा किया जाना चाहिए।
- दल के भीतर असंतोष को दल बदल के रूप में नहीं लिया जाना चाहिए।
- अध्यक्ष पद की व्यवस्था ब्रिटेन के तर्ज पर की जानी चाहिए।
- अंततः यह एक साधारण विधि का मामला नहीं है जहाँ मनुष्य इसके प्रावधानों का निर्णय करे। यह नैतिकता का विषय अधिक है।

सदन के अधिकारियों (अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, और उपसभापति) के संबंध में इस संबंध में प्रावधान

- यदि वे स्वेच्छा से अपनी पार्टी की सदस्यता का त्याग करते हैं, तो उन्हें अयोग्य घोषित नहीं किया जाएगा। यदि अध्यक्ष अपने पद के दौरान अपनी पार्टी को छोड़ किसी अन्य पार्टी की सदस्यता स्वीकार करता है, तो यह अयोग्यता के अधीन होगा। अध्यक्ष अपने पद से त्यागपत्र के बाद एक सामान्य सदस्य बन जाता है और केवल अपने मूल दल में ही शामिल हो सकता है न कि किसी अन्य दल में।
- साधारण सदस्यों की अयोग्यता से सम्बंधित मामलों में, अध्यक्ष या सभापति का निर्णय अंतिम होता है। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष या उपसभापति की अयोग्यता से संबंधित मामले में, सदन इस उद्देश्य के लिए किसी व्यक्ति को चुन सकता है। इस व्यक्ति के द्वारा लिया गया निर्णय अंतिम होगा।

स्थानों का रिक्त होना

संसद का कोई सदस्य निम्नलिखित मामलों में अपने स्थान को रिक्त करेगा:

a) दोहरी सदस्यता:

- यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य चुन लिया जाता है तो उसे परिणाम घोषित किए जाने के 10 दिन के भीतर यह संसूचित करना होगा कि वह किस सदन में कार्य करना चाहता है। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो दोनों में से एक सदन में उसका स्थान रिक्त हो जाएगा। इसी तरह,
- कोई व्यक्ति यदि संसद और राज्य विधानमंडल का सदस्य चुन लिया जाता है तो उसे 14 दिनों के भीतर राज्य विधानमंडल से अवश्य त्यागपत्र देना होगा; अन्यथा संसद में उसका स्थान रिक्त माना जाएगा।

b) निरर्हता: यदि कोई व्यक्ति संविधान के अनु. 102 में वर्णित प्रावधानों के तहत अयोग्य पाया जाता है तो उसका स्थान तुरंत रिक्त हो जाएगा।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

c) त्यागपत्र : कोई सदस्य अध्यक्ष या सभापति (सदन के अनुसार) को लिखित रूप में अपना त्यागपत्र सौंप सकता है। त्यागपत्र स्वीकार होते ही उसका स्थान रिक्त हो जाता है। हालाँकि, अध्यक्ष/सभापति यदि त्यागपत्र को स्वैच्छिक या वास्तविक नहीं पाता है तो वह त्यागपत्र अस्वीकृत भी कर सकता है।

d) बिना अनुमति के अनुपस्थित: अध्यक्ष किसी स्थान को रिक्त घोषित कर सकता है, यदि सदस्य बिना अनुमति के सदन की सभी बैठकों से लगातार 60 दिनों तक अनुपस्थित रहा हो। इन 60 दिनों की अवधि की गणना में, सदन के स्थगन या सत्रावसान की लगातार चार दिनों से अधिक अवधि, को शामिल नहीं किया जाता है।

vi) वेतन और भत्ते: संसद के सदस्यों को संसद द्वारा निर्धारित वेतन व भत्ते प्राप्त करने का अधिकार है। यद्यपि संविधान में पेंशन का कोई प्रावधान नहीं किया गया है, लेकिन संसद ने सदस्यों के लिए पेंशन का प्रावधान किया है। लोकसभा अध्यक्ष और राज्यसभा सभापति के वेतन और भत्तों का निर्धारण भी संसद द्वारा किया जाता है। ये भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं और संसद में मतदान योग्य नहीं होते हैं।

5. संसद के पीठासीन अधिकारी

5.1. लोक सभा अध्यक्ष

- लोकसभा अध्यक्ष का पद संसदीय लोकतंत्र में एक आधारभूत पद होता है। इस पद के विषय में यह कहा जाता है कि संसद के सदस्य अपने संसदीय निर्वाचन क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं जबकि अध्यक्ष सदन के पूर्ण प्राधिकार का प्रतिनिधित्व करता है।
- अध्यक्ष को संसदीय लोकतंत्र की परंपराओं के सच्चे अभिभावक के रूप में देखा जाता है। उसकी अनोखी स्थिति इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि उसे देश के वरीयता क्रम में अत्यंत उच्च स्थान दिया गया है। उसे भारत के मुख्य न्यायधीश के साथ सातवें स्थान पर रखा गया है। भारत में, संसदीय कार्यवाहियों एवं पद की स्वतंत्रता व निष्पक्षता की रक्षा करने हेतु देश के संविधान के माध्यम से, लोकसभा के प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियमों के माध्यम से तथा संसदीय परम्पराओं व प्रथाओं के माध्यम से लोकसभा अध्यक्ष को पर्याप्त शक्तियां दी गयी हैं।

चुनाव

- संसद के प्रत्येक सदन के अपने अधिकारी होते हैं जो उसके अधिवेशनों की अध्यक्षता करते हैं। लोक सभा की दशा में अनु. 93 में दो अधिकारियों (अध्यक्ष और उपाध्यक्ष) का उल्लेख हैं। लोक सभा के सदस्य अपने में एक को अध्यक्ष और एक को उपाध्यक्ष चुनते हैं। जब कभी अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद रिक्त होता है तब सदन उस स्थान को भरने के लिए अपने सदस्यों में से किसी एक को पीठासीन आधिकारी के रूप में चुनता है।
- प्रत्येक साधारण निर्वाचन के पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा नियत दिन को लोक सभा अध्यक्ष का निर्वाचन करती है (नियम 7)। उपाध्यक्ष का निर्वाचन अध्यक्ष द्वारा नियत तारीख को होता है। लोक सभा के विघटन पर अध्यक्ष अपना पद रिक्त नहीं करता है। वह विघटन के पश्चात् होने वाले लोक सभा के प्रथम अधिवेशन के ठीक पूर्व तक अध्यक्ष बना रहता है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद निम्नलिखित परिस्थितियों में रिक्त हो जाता है:
  - जब वह लोक सभा का सदस्य न रहे।
  - अध्यक्ष, उपाध्यक्ष को संबोधित अपने हस्ताक्षर सहित लेख द्वारा पद त्याग सकता है। इसी प्रकार उपाध्यक्ष, अध्यक्ष को संबोधित त्यागपत्र देकर अपना पद त्याग सकता है।
  - अपने पद से लोक सभा के तत्कालीन समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा हटाया जा सकता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अध्यक्ष को हटाया जाना

- अध्यक्ष को हटाने का संकल्प प्रस्तावित करने के 14 दिन पहले संकल्प प्रस्तावित करने के आशय की सूचना दी जानी चाहिए। जब अध्यक्ष को हटाने के संकल्प पर विचार चल रहा हो तब अध्यक्ष पीठासीन नहीं होगा किंतु उसे सभा में बोलने और कार्यवाहियों में अन्यथा भाग लेने का अधिकार होगा। उसे संकल्प पर प्रथमतः मत देने का अधिकार होगा। यदि मत बराबर हों तो उसे निर्णायक मत देने का अधिकार नहीं होगा (अनु. 96)।
- अध्यक्ष को तभी हटाया जा सकता है जब लोक सभा सदन के समस्त सदस्यों को बहुमत से हटाने का संकल्प पारित करे, सामान्य बहुमत से नहीं।
- अध्यक्ष के रूप में निर्वाचित होने के लिए कोई विशेष योग्यता निर्धारित नहीं की गयी है। संविधान के अनुसार लोकसभा अध्यक्ष का केवल सदन का सदस्य होना आवश्यक है।
- एक नव गठित सदन का पहला कार्य अध्यक्ष का चुनाव करना है। सामान्यतः सत्ताधारी दल से जुड़ा सदस्य अध्यक्ष के रूप में चुना जाता है।
- हालांकि गत वर्षों में एक स्वस्थ परंपरा विकसित हुई है जिसके तहत सत्तारूढ़ दल सदन में अन्य दलों तथा समूहों के साथ अनौपचारिक विचार- विमर्श के पश्चात् अपने उम्मीदवार को मनोनीत करता है। यह परंपरा सुनिश्चित करती है कि एक बार निर्वाचित होने के पश्चात् अध्यक्ष को सदन के सभी वर्गों का सम्मान प्राप्त हो। ऐसे उदाहरण भी मौजूद हैं जब अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल या गठबंधन का सदस्य नहीं था।
- किसी नवगठित सदन में **प्रोटेम स्पीकर** (तात्कालिक/सामयिक अध्यक्ष) उस बैठक की अध्यक्षता करता है जिसमें लोकसभा अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है।

भूमिका और कार्य

- अध्यक्ष का मुख्य कार्य सदन की अध्यक्षता करना तथा व्यवस्थित तरीके से सदन की बैठकें संचालित करना है। कोई भी सदस्य बिना उसकी अनुमति के सदन में भाषण नहीं दे सकता है। अध्यक्ष किसी सदस्य से उसके भाषण को समाप्त करने के लिए कह सकता है और यदि सदस्य उसकी बात नहीं मानता तो वह भाषण को रिकॉर्ड न करने का आदेश दे सकता है।
- सभी विधेयक, प्रतिवेदन, प्रस्ताव और संकल्प अध्यक्ष की अनुमति से ही सदन में पेश किये जाते हैं। वह प्रस्ताव या विधेयक को मतदान के लिए सदन के समक्ष रखता है।
- वह प्रथमतः मतदान में भाग नहीं लेता है, किन्तु दोनों पक्षों के बीच मतों की बराबरी (टाई) की स्थिति उत्पन्न होने पर वह अपने निर्णायक मत का प्रयोग कर सकता है।
- सभी संसदीय मामले में उसका निर्णय अंतिम हैं। वह सदस्यों द्वारा उठाये गए पॉइंट्स ऑफ़ ऑर्डर (औचित्य प्रश्न) पर भी अपना निर्णय देता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।
- वह सदस्यों के अधिकारों तथा विशेषाधिकारों का संरक्षक है।
- वह सदन को स्थगित करता है या गणपूर्ति के अभाव में बैठक को निलंबित करता है।
- वह 10वीं अनुसूची के प्रावधानों के तहत दलबदल के मामले में किसी सदस्य को उसकी सदस्यता के लिए अयोग्य ठहरा सकता है। इस सन्दर्भ में अध्यक्ष का निर्णय न्यायिक समीक्षा के अधीन है।
- वह सदस्यों के त्यागपत्र को स्वीकार करता है और त्यागपत्र की यथार्थता के बारे में निर्णय करता है।
- लोक सभा और राज्य सभा के संयुक्त अधिवेशन के मामले में लोकसभा अध्यक्ष ही बैठक की अध्यक्षता करता है।
- जब धन विधेयक निम्न सदन से उच्च सदन के लिए प्रेषित किया जाता है, तो लोकसभा अध्यक्ष विधेयक को प्रमाणित करता है कि यह धन विधेयक है। कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं इस सन्दर्भ में लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम है।
- वह अंतर संसदीय संघ के भारतीय संसदीय समूह के पदेन अध्यक्ष के रूप में कार्य करता है। वह देश में विधायी निकायों के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन के पदेन अध्यक्ष के रूप में भी कार्य करता है।
- वह लोकसभा की सभी संसदीय समितियों के अध्यक्षों की नियुक्ति और उनके कामकाज की देख रेख करता है।
- वह कार्य मंत्रणा समिति, नियम समिति और सामान्य प्रयोजन समिति का अध्यक्ष होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

5.2. प्रोटेम स्पीकर (सामयिक अध्यक्ष)

- अंतिम लोकसभा का अध्यक्ष नवगठित लोकसभा की पहली बैठक से ठीक पूर्व अपना पद त्याग देता है। अतः राष्ट्रपति द्वारा आमतौर पर लोकसभा के वरिष्ठतम सदस्य को प्रोटेम स्पीकर के तौर पर नियुक्त किया जाता है। राष्ट्रपति द्वारा उसे शपथ दिलवाई जाती है।
- प्रोटेम स्पीकर के पास लोकसभा अध्यक्ष की सभी शक्तियां होती हैं। वह नव निर्वाचित लोकसभा की पहली बैठक की अध्यक्षता करता है। वह नए अध्यक्ष का चुनाव करने के लिए सदन को सक्षम बनाता है। सामान्यतः प्रोटेम स्पीकर का केवल एक ही कार्य होता है और वह है नवनिर्वाचित सदस्यों को शपथ दिलाना।

5.3. उपाध्यक्ष

- उपाध्यक्ष लोकसभा का सदस्य होता है जिसे सदन उपाध्यक्ष के रूप् में निर्वाचित करता है। उपाध्यक्ष का निर्वाचन अध्यक्ष के निर्वाचन के पश्चात् होता है। 11वीं लोक सभा (1996) के बाद से सभी दल इस बात पर सहमत हुए कि उपाध्यक्ष का पद विपक्षी दल के सदस्य को दिया जाना चाहिए। इसके पहले अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों ही सत्ताधारी दल के सदस्य होते थे। उपाध्यक्ष, अध्यक्ष को संबांधित त्याग-पत्र देकर अपना पद त्याग सकता है। यदि वह लोक सभा का सदस्य नहीं रहता तो उसका पद रिक्त हो जाएगा।
- उपाध्यक्ष को, लोक सभा के समस्त सदस्यों के बहुमत से पारित संकल्प द्वारा अपने पद से हटाया जा सकता है। जब अध्यक्ष का पद रिक्त होता है या अध्यक्ष बैठक में अनुपस्थित होता है तो उपाध्यक्ष सदन में पीठासीन होता है। जब अध्यक्ष का पद रिक्त होता है तो उपाध्यक्ष अध्यक्ष के पद से जुड़े हुए सभी कृत्यों का निर्वहन करता है और कर्तव्यों का पालन करता है। जब उपाध्यक्ष सदन में पीठासीन होता है तो प्रथमतः मत देने का हकदार नहीं होता। किंतु बराबर मत होने की दशा में निर्णायक मत दे सकता है।
- सदन के पीठ पर रहते हुए उपाध्यक्ष को व्यवस्था बनाए रखना होता है और नियमों का निर्वचन करना पड़ता है। जब भी वह किसी संसदीय समिति के सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है, तो वह स्वतः इसका अध्यक्ष बन जाता है।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों की अनुपस्थिति में लोक सभा की अध्यक्षता

लोकसभा के प्रक्रिया तथा कार्यसंचालन नियम में उपबंध किया गया है कि सभा के आरंभ में अथवा समय-समय पर जैसा मामला हो, अध्यक्ष सदस्यों के बीच से दस सभापतियों से अनधिक एक तालिका नामनिर्दिष्ट करेगा जिसमें से कोई एक अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों की अनुपस्थिति में अध्यक्ष अथवा उसकी अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष द्वारा अनुरोध किए जाने पर सभा की अध्यक्षता करेगा।

5.4.राज्य सभा का सभापति

- भारत का उप-राष्ट्रपति राज्यसभा का पदेन सभापति होता है। वह राज्यसभा की बैठकों की अध्यक्षता करता है। उसकी अनुपस्थिति में उपसभापति सदन की बैठक की अध्यक्षता करता है। उपसभापति को सदन के सदस्यों द्वारा स्वयं में से ही चुना जाता है। उपसभापति को राज्य सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा हटाया जा सकता है।
- किन्तु सभापति (उपराष्ट्रपति) को उसके पद से, केवल राज्य सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा पारित तथा लोकसभा की सहमति प्राप्त संकल्प द्वारा ही हटाया जा सकता है। दोनों मामलों में, पदधारक को 14 दिनों की पूर्व सुचना दी जानी आवश्यक है।
- वह तब तक राज्य सभा का सभापति बना रहता है जब तक उसे राष्ट्रपति पद की आकस्मिक रिक्ति के दौरान राष्ट्रपति के रूप में पद ग्रहण न करना पड़े। ऐसी दशा में राज्य सभा का उपसभापति राज्य सभा के सभापति के कर्तव्यों का निर्वहन करता है।
- यदि संविधान द्वारा लोक सभा अध्यक्ष को प्रदत्त कुछ विशेष अधिकारों (जैसे एक विधेयक को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करना, दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन की अध्यक्षता करना) को छोड़ दिया जाए तो राज्य सभा के सभापति के कार्य लोकसभा अध्यक्ष के कार्यों के लगभग समान ही होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

सभापति और उप-सभापति, दोनों की अनुपस्थिति में राज्य सभा की कार्यवाही के दौरान पीठासीन अधिकारी

राज्य सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन विषयक नियम के नियम 8 के अधीन राज्य सभा के सभापति, उपसभाध्यक्ष के पैनल के लिए छः सदस्यों को नामनिर्देशित करते हैं, जिनमें से एक सदस्य सभापति और उपसभापति दोनों की अनुपस्थिति में सभा की अध्यक्षता करता है। जब सभापति, उपसभापति और उपसभाध्यक्ष में से कोई भी अध्यक्षता करने के लिए उपस्थित नहीं होता है तब सभा किसी अन्य उपस्थित सदस्य के अध्यक्षता करने के बारे में निर्णय कर सकती है।

6. संसदीय सचिव

वेस्टमिंस्टर प्रणाली में संसदीय सचिव संसद का एक सदस्य होता है जो अपने कार्यों द्वारा अपने से वरिष्ठ मंत्रियों की सहायता करता है। मूल रूप से इस पद का उपयोग भावी मंत्रियों के प्रशिक्षण के लिये किया जाता था।

- इस पद का सृजन समय-समय पर अनेक राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा, दिल्ली, राजस्थान आदि में किया गया है।
- हालाँकि उच्च न्यायालय में विभिन्न याचिकाओं द्वारा संसदीय सचिवों की नियुक्तियों को चुनौती दी गई है।
- जून 2015 में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल में 24 संसदीय सचिवों की नियुक्ति को असंवैधानिक ठहराते हुए रद्द कर दिया था।
- इसी प्रकार के कदम बंबई उच्च न्यायालय, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, दिल्ली उच्च न्यायालय आदि द्वारा भी उठाए गए थे।

इस पद के साथ समस्या क्या है?

- संसदीय सचिव, मूल रूप से **कार्यपालिका और विधायिका के बीच शक्ति-पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।**
- सैद्धांतिक रूप से विधायिका सरकार को नियंत्रित करती है किन्तु वास्तविकता में प्रायः यह देखा गया है कि सरकार जब तक सदन में बहुमत में होती है तब तक वह विधायिका को नियंत्रित करती है। विधायकों को खुश करने एवं लाभ पहुँचाने के लिए उन्हें निगमों के अध्यक्ष के पद, विभिन्न मंत्रालयों के संसदीय सचिवों के पद तथा लाभ के अन्य पद प्रदान कर दिये जाते हैं ताकि वे सरकार से सहयोगात्मक रुख बनाये रखें।
- संसदीय सचिवों की नियुक्ति, शक्ति-पृथक्करण के सिद्धांत से संबंधित **दो महत्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधानों के विपरीत है:**
  - **लाभ के पद की धारा:** संविधान के **अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क)** के अधीन, किसी व्यक्ति को संसद या किसी विधानसभा/परिषद के सदस्य के रूप में अयोग्य घोषित किया जाएगा यदि वह केंद्रीय या किसी राज्य सरकार के तहत 'लाभ का पद' धारण करता है (ऐसा तब नहीं होगा यदि संसद या राज्य विधायिका क़ानून बनाकर उक्त पद को धारण करने वाले को अयोग्य घोषित न किए जाने का उपबंध कर दे)।
  - इसके पीछे मूलभूत विचार विधायकों के विधायी कार्यों और उन्हें मिले पद के कर्तव्यों के बीच हितों के टकराव को टालना था।
- **मंत्रियों की संख्या बल की सीमाओं की धारा:** संसदीय सचिव का पद संविधान के **अनुच्छेद 164 (1A)** से असंगत है। इसके अनुसार राज्य मंत्रिमंडल में मंत्रियों की संख्या राज्य विधानसभा के सदस्यों की कुल संख्या का अधिकतम 15 प्रतिशत होनी चाहिए। क्योंकि संसदीय सचिव भी राज्य मंत्री का पद होता है, अतः इस पद के सृजन से इस सीमा का उल्लंघन हो सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

पदों के समर्थन में तर्क

- संविधान विधायिका को लाभ के किसी भी पद को धारण करने वाले को छूट प्रदान करने हेतु कानून पारित करने की अनुमति प्रदान करता है। पहले भी राज्यों और संसद द्वारा ऐसा किया जा चुका है। यू.सी. रमण मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इसे बरकरार रखा है।
- मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा की जाती है। वे उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। इन संवैधानिक आवश्यकताओं को पूरा किए बिना किसी व्यक्ति को मंत्री नहीं माना जा सकता। अनुच्छेद 239AA(4) के तहत संसदीय सचिव मंत्री नहीं माने जाते हैं, क्योंकि उन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त नहीं किया जाता और उनके द्वारा उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ भी नहीं दिलाई जाती।

7. लोकसभा महासचिव

- लोकसभा महासचिव सदन का महत्वपूर्ण अधिकारी होता है। वह सभी संसदीय क्रिया-कलापों, प्रक्रियाओं तथा प्रथाओं के सन्दर्भ में अध्यक्ष का, सदन का तथा सदस्यों का सलाहकार होता है। एक स्थायी अधिकारी के रूप में वह सभापटल का प्रमुख अधिकारी होता है। वह संसदीय परंपराओं और प्रथाओं का रक्षक होता है।
- महासचिव का राजनीतिक मामलों से कोई संबंध नहीं होता है। इससे अपेक्षा की जाती है कि उसका दृष्टिकोण दलगत राजनीति से रहित तथा निष्पक्ष हो, क्योंकि सदन संबंधी क्रियाकलापों में उसकी भूमिका बहुत ही व्यापक होती है। इसे उन अधिकारियों में से चुना जाता है जिसने सदन के सचिवालय में विभिन्न पदों पर कार्य करते हुए सराहनीय कार्य किया हो। महासचिव के रूप में इसकी नियुक्ति अध्यक्ष द्वारा होती है।
- इसके पद की स्वतंत्रता को बनाए रखने के लिए कई रक्षोपाय किए गए हैं जिससे कि वह अपना कार्य निष्पक्ष एवं निर्भीक होकर कर सके। सदन में उसकी आलोचना नहीं की जा सकती है तथा सदन के बाहर उसके सदन संबंधी क्रिया-कलापों पर चर्चा नहीं की जा सकती है। वह सीधे अध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होता है।
- महासचिव राष्ट्रपति की ओर से सदन के अधिवेशन में उपस्थिति होने के लिए सदस्यों को आमंत्रण जारी करता है। वह अध्यक्ष की अनुपस्थिति में विधेयकों को प्रमाणित करता हैं, सदन की ओर से संदेश भेजता है तथा प्राप्त करता है। वह अध्यक्ष की ओर से सदस्यों, मंत्रियों तथा अन्य के साथ पत्र व्यवहार करता है।
- वह सदन और इसके सचिवालय के वित्त एवं लेखाओं पर नियंत्रण रखता है। वह सदन का कार्यवाही वृतांत तैयार करवाता है।
- महासचिव का यह कर्तव्य है कि वह सचिवालय के सांगठनिक स्वरूप् को हमेशा इस प्रकार बनाए रखे जिससे कि संसदीय कार्य कुशलतापूर्वक किया जा सके।
- वह संसदीय कार्यों के लिए राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं की जानकारी रखता है।
- महासचिव अपने अधिकार से कई सारे विधायी, प्रशासनिक एवं कार्यपालिका कृत्यों का निर्वहन करता है। वह सदस्यों को सेवाएं एवं सुविधाएं उपलब्ध कराता हैं। वह सदन के परिसर में सुरक्षा को भी सुनिश्चित करता है।
- संसदीय संग्रहालय और अभिलेखागार के सर्वोच्च अधिकारी के रूप में वह संसद की विरासत का रक्षक होता है।
- वह लोकसभा के अध्यक्ष के नाम से बहुत से ऐसे कार्य करता है जो अध्यक्ष का कार्यक्षेत्र है। इस प्रकार का कार्य वह अध्यक्ष की ओर से उसकी सहमति से ही करता है।
- चूंकि महासचिव को संसदीय क्रियाकलापों एवं प्रथाओं के बारे में बहुत अनुभव होता है, अतः वह कई विधेयकों के निर्माण के संदर्भ में तकनीकी जानकारी प्राप्त करने एवं संसदीय गतिविधियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के एक स्रोत के रूप में भी होता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

लोक सभा सचिवालय के कार्यकरण का संक्षिप्त विवरण

- लोक सभा सचिवालय एक स्वतंत्र निकाय है जो लोक सभा अध्यक्ष के पूर्ण नियंत्रण और मार्गनिर्देशन में कार्य करता है। लोक सभा अध्यक्ष को उनके संवैधानिक और सांविधिक उत्तरदायित्वों के निर्वहन में लोक सभा के महासचिव (जिनका वेतन, पद और दर्जा आदि भारत सरकार के सर्वोच्च रैंक के अधिकारी अर्थात् मंत्रिमंडल सचिव के बराबर होता है), अपर सचिव, संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारियों और सचिवालय के विभिन्न स्तर के अन्य अधिकारी तथा कर्मचारी सहयोग प्रदान करते हैं।
- अपर सचिव/संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी को निदेशक अथवा उप-सचिव और समकक्ष रैंक के अधिकारी सहयोग प्रदान करते हैं। बीच के स्तर पर अवर सचिव या सहायक निदेशक और समकक्ष रैंक के अधिकारी होते हैं और सबसे निचले स्तर पर कार्यकारी अधिकारी/वरिष्ठ कार्यकारी सहायक/कार्यकारी सहायक और समकक्ष अधिकारी होते हैं। इसके अतिरिक्त, परिचारक सेवा के साथ-साथ लिपिकीय और सचिवालयीय सहायता भी उपलब्ध कराई जाती है।
- वर्तमान में, कुल दस सेवाएं हैं जिनका वर्गीकरण कार्यों के आधार पर किया गया है और जो सदन और उसके सचिवालय की विशिष्ट आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। प्रत्येक सेवा के कार्य एक-दूसरे के पूरक हैं और प्रत्येक सेवा की विशिष्ट और भिन्न प्रकृति के कारण उनके अधिकारियों तथा कर्मचारियों की अदला-बदली सामान्यतः नहीं की जाती है।

8. संसद में नेता

8.1. सदन का नेता

- लोकसभा के नियमों के अनुसार 'सदन के नेता' से आशय प्रधानमंत्री से है, यदि वह लोकसभा का सदस्य हो। प्रधानमंत्री के लोकसभा का सदस्य न होने की स्थिति में प्रधानमंत्री द्वारा नामित कोई मंत्री जो लोकसभा का सदस्य हो, सदन के नेता के रूप में कार्य करता है। इसी प्रकार राज्यसभा में सदन का नेता प्रधानमंत्री द्वारा नामित कोई ऐसा मंत्री होता है जो राज्यसभा का सदस्य हो। अमेरिका में भी यही पद्धति प्रचलित है और वहां इसे 'बहुमत का नेता (Majority Leader) कहा जाता है।

8.2. विपक्ष का नेता

- संसद के किसी सदन में उसकी कुल सदस्य संख्या से कम से कम 10 प्रतिशत सीटें हासिल करने वाली सबसे बड़ी विपक्षी पार्टी का नेता, सदन में विपक्ष का नेता कहा जाता है। इसका मुख्य कार्य सरकार की नीतियों की रचनात्मक आलोचना करना तथा वैकल्पिक सरकार का गठन करना है।
- लोकसभा और राज्यसभा में विपक्ष के नेता को वर्ष 1977 में वैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। विपक्ष के नेता को कैबिनेट मंत्री के समकक्ष वेतन, भत्ते तथा सुविधाएँ उपलब्ध हैं। अमेरिका में भी यह प्रणाली प्रचलित है और वहां इसे 'अल्पमत के नेता (minority leader)' के नाम से जाना जाता है।

8.3. व्हिप (whip)

- प्रत्येक राजनीतिक पार्टी का अपना व्हिप (सचेतक) होता है, जिसे पार्टी द्वारा सहायक नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- अपनी पार्टी के सदस्यों की अधिक संख्या में उपस्थिति सुनिश्चित करना एवं किसी विशेष मुद्दे के पक्ष या विपक्ष में उनका समर्थन प्राप्त करना, उसका उत्तरदायित्व होता है।
- वह संसद में उनके व्यवहार का विनियमन एवं निगरानी करता है।
- वह पार्टी के नेता का निर्णय सदस्यों को एवं पार्टी के सदस्यों की राय पार्टी के नेता तक पहुंचाता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- सदस्यों से व्हिप द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। ऐसा करने में विफल रहने में पार्टी की सदस्यता से अयोग्यता या दल-बदल विरोधी कानून के अंतर्गत पार्टी से निष्कासन जैसी अनुशासनात्मक कार्रवाईयाँ की जा सकती हैं।
- भारत में व्हिप के पद का उल्लेख संविधान में नहीं है। फिर भी, सदन के नियमों और संसदीय कानून में क्रमशः इसका उल्लेख है।
- यह संसदीय सरकार के कन्वेंशनों पर आधारित है। भारत में, व्हिप की अवधारणा औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन से ली गई थी।

हाल ही में, राजनीतिक पार्टियों द्वारा अनेक मुद्दों पर व्हिप जारी किए जाने पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में व्हिप

- संयुक्त राज्य अमेरिका में, पार्टी के व्हिप का कार्य, यह पता लगाना है कि विधेयक के पक्ष में कितने विधायक है और कितने इसके विपक्ष में [एवं जहाँ तक संभव हो, उन्हें इस मुद्दे पर पार्टी की विचारधारा के अनुसार मतदान करने के लिए सहमत करना।

ब्रिटेन में, सामान्यतया व्हिप के उल्लंघन को गंभीरतापूर्वक लिया जाता है। कभी-कभी इसके परिणामस्वरूप सदस्य को पार्टी से निष्कासित कर दिया जाता है। इस प्रकार का सदस्य पार्टी द्वारा पुन: स्वीकार किए जाने तक संसद में स्वतंत्र सदस्य के रूप में बना रह सकता है।

समस्या

- आलोचकों का मानना है कि व्हिप संबंधी विवादों में वृद्धि के कारण, राजनीतिक दलों ने पार्टी के आंतरिक लोकतंत्र को सीमित कर दिया हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत सदस्यों को अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व करने की अनुमति नहीं होती है। यह पार्टी के सदस्यों की भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है।
- यह विभिन्न मुद्दों पर 'विवशतापूर्ण सर्वसम्मति' निर्मित करता है और लोकतंत्र के उद्देश्य को निरर्थक बना देता है, क्योंकि व्हिप द्वारा पार्टी सदस्यों के लिए पार्टी के निर्णय का पालन करना अनिवार्य बना दिया जाता है। यह पार्टी के सदस्यों को अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण या अपने निर्वाचन क्षेत्र की जनता के दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की क्षमता को प्रतिबंधित करता है।
- इस विषय पर राजनीतिक आम सहमति निर्मित करने की आवश्यकता है, ताकि संसद में व्यक्तिगत सदस्य के लिए राजनीतिक और नीतिगत अभिव्यक्ति के अवसरों का विस्तार किया जा सके। यह कार्य कई रूपों में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, व्हिप जारी किया जाना केवल ऐसे विधेयकों तक सीमित किया जा सकता है जो सरकार के अस्तित्व के लिए खतरा बन सकते हैं, जैसे कि धन विधेयक या अविश्वास प्रस्ताव।
- सरकार द्वारा देश में ऐसे मुद्दों पर व्यापक बहस करवाई जानी चाहिए, जो लंबे समय में लाभदायक जन भागीदारी को प्रोत्साहित करेगी।

व्हिप का महत्व

संभव है कि संसद के सभी सदस्यों के दृष्टिकोण भिन्न हों, चाहे उनकी किसी भी पार्टी से संबद्धता हो (यहाँ तक कि ये दृष्टिकोण संबंधित पार्टी के नेतृत्व के दृष्टिकोण से भी भिन्न हो सकते हैं)। ऐसे मामले में, वह मतदान के समय पार्टी के दृष्टिकोण का उल्लंघन कर सकता/सकती है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

9. संसदीय कार्यवाही के साधन

9.1. प्रश्न काल

प्रश्नकाल किसी संसदीय बैठक के पहले घंटे में संसद सदस्यों द्वारा किसी प्रशासनिक क्रियाकलाप के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे जाने के लिए नियत समय होता है। इस दौरान सम्बंधित मंत्री पूछे गए प्रश्नों की प्रकृति के अनुसार लिखित या मौखिक रूप में उत्तर देने के लिए बाध्य होते हैं। ये प्रश्न कार्यपालिका की जवाबदेहिता के लिए आवश्यक उपकरण हैं। ये प्रश्न निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं:

- **तारांकित प्रश्न:** तारांकित प्रश्न वह होता है, जिसका मौखिक उत्तर सदस्य सभा में चाहता है और उसे तारे के चिन्ह द्वारा विशेषांकित किया जाता है। ऐसे प्रश्न के उत्तर के पश्चात् सदस्यों द्वारा पूरक प्रश्न पूछे जा सकते हैं जिनका उत्तर मंत्री सभा में देता है।
- **अतारांकित प्रश्न:** अतारांकित प्रश्न वह होता है जिसका सदस्य लिखित उत्तर चाहता है और इसका उत्तर मंत्री द्वारा सभा पटल पर रखा गया माना जाता है। इस पर पूरक प्रश्न नहीं पूछे जा सकते हैं।
- **अल्पसूचना के प्रश्न:** अल्प सूचना प्रश्न का संबंध किसी सदस्य द्वारा लोक महत्व के मामले पर मौखिक उत्तर के लिए दस दिनों से कम समय में दी गयी सूचना से है। यदि अध्यक्ष/सभापति की राय में प्रश्न अविलंबनीय महत्व का है तो संबंधित मंत्री से यह पूछा जाता है कि क्या वह उसका उत्तर कम समय में देने की स्थिति में है और यदि हां तो किस तारीख को। यदि संबंधित मंत्री उत्तर देने को सहमत हो जाता है तो ऐसे प्रश्न का उत्तर उसके द्वारा बताए गए दिन को उस दिन की सूची के मौखिक उत्तर हेतु प्रश्नों के निपट जाने के तुरंत बाद किया जाता है।
- **गैर सरकारी सदस्यों से प्रश्न:** कोई प्रश्न किसी गैर-सरकारी सदस्य को भी संबोधित किया जा सकता है परंतु यह तब होता है जब उस प्रश्न की विषय-वस्तु किसी विधेयक, संकल्प अथवा सभा के कार्य से संबंधित किसी अन्य मामले, जिसके लिए वह सदस्य उत्तरदायी है, से संबंध रखती है। ऐसे प्रश्नों के मामले में प्रक्रिया वही है जो किसी मंत्री को ऐसे परिवर्तनों के साथ, जैसा कि अध्यक्ष/सभापति आवश्यक समझे, संबोधित प्रश्नों के मामले में अपनायी जाती है। ऐसे प्रश्न पर अनुपूरक प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

एक दिन विशेष के लिए ग्राह्य प्रश्नों की अधिकतम सीमा:

- एक दिन की तारांकित प्रश्न सूची में प्रश्नों की कुल संख्या 20 होती है। उन सभी गृहीत तारांकित प्रश्नों को, जो तारांकित प्रश्न सूची में सम्मिलित होने से रह जाते हैं, उस दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में रखने पर विचार किया जा सकता है।
- किसी एक दिन की अतारांकित प्रश्न सूची में सामान्यतया 230 से अधिक प्रश्न नहीं होते हैं। तथापि, इनमें अधिक से अधिक 25 प्रश्न और जोड़े जा सकते हैं, जो राष्ट्रपति शासन वाले राज्य/राज्यों से संबंधित हों।

किसी सदस्य द्वारा दी जाने वाली प्रश्नों की सूचनाओं की संख्या पर निर्बंधन:

- तारांकित और अतारांकित प्रश्नों की सूचनाओं, जो कोई सदस्य नियमों के अधीन दे सकता है, की संख्या पर कोई निर्बंधन नहीं है। परंतु किसी दिन की तारांकित प्रश्न सूची में एक सदस्य का एक से अधिक प्रश्न शामिल नहीं किया जा सकता है। एक सदस्य के गृहीत किए गए एक से अधिक तारांकित प्रश्नों को अतारांकित प्रश्न-सूची में शामिल किया जाता है, लेकिन साथ ही किसी भी सदस्य के नाम से किसी एक दिन तारांकित तथा अतारांकित दोनों सूचियों में पाँच से अधिक प्रश्न गृहीत न करने की सीमा भी है। तथापि यदि किसी सदस्य के तारांकित प्रश्न-सूची में शामिल किए गए प्रश्न को अंतरित करने के बाद किसी दिन की तारांकित प्रश्न-सूची में शामिल किया जाता है, तो उस अंतरित प्रश्न के अतिरिक्त उसी सदस्य का एक और प्रश्न उसी दिन की तारांकित प्रश्न-सूची में शामिल किया जा सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

9.2. शून्य काल

- प्रश्नकाल की तरह प्रक्रिया के नियमों में इसका उल्लेख नहीं है। प्रश्नकाल के ठीक बाद के समय को शून्यकाल के नाम से जाना जाता है। यह करीब दोपहर 12:00 बजे (नाम के अनुसार) प्रारंभ होता है और इसके दौरान सदस्य पीठासीन अधिकारी को पूर्व सूचना दिए बिना लोकहित के महत्वपूर्ण मुद्दों को उठा सकते हैं। वस्तुतः यह भारतीय संसदीय व्यवस्था द्वारा विकसित किया गया एक नवाचार है तथा यह 1962 से जारी है।

9.3. प्रस्ताव

- सदन में किसी भी मुद्दे पर चर्चा के लिए पीठासीन अधिकारी की पूर्व सहमति से एक प्रस्ताव लाना आवश्यक है। सदन मंत्रियों या निजी सदस्यों द्वारा लाये गए प्रस्तावों को स्वीकृत या अस्वीकृत कर विभिन्न मुद्दों पर अपने निर्णयों या अपनी राय को सामने रखता है। प्रस्ताव **तीन** मुख्य श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं:
  - **मूल प्रस्ताव (Substantive Motion):** यह अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र प्रस्ताव है जिसके माध्यम से अत्यधिक महत्वपूर्ण मामले यथा राष्ट्रपति के महाभियोग या मुख्य चुनाव आयुक्त को हटाने पर विचार किया जाता है।
  - **स्थानापन्न प्रस्ताव (Substitute Motion):** जो प्रस्ताव मूल प्रस्ताव के स्थान पर और उसके विकल्प के रूप में प्रस्तुत किये जाएं, उन्हें स्थानापन्न प्रस्ताव कहते हैं। यदि यह सदन द्वारा स्वीकार कर लिया जाए तो यह मूल प्रस्ताव को प्रतिस्थापित कर देता है।
  - **सहायक प्रस्ताव (Subsidiary Motion):** यह एक ऐसा प्रस्ताव है, जिसका स्वयं में कोई महत्व नहीं होता है। मूल प्रस्ताव या सदन की कार्यवाही के सन्दर्भ के बगैर इसपर सदन के द्वारा कोई निर्णय नहीं दिया जाता। यह तीन उप-श्रेणियों में विभाजित है:
- **अनुषंगी प्रस्ताव** (Ancillary Motion): यह विभिन्न कार्यवाहियों के नियमित रूप से चलते रहने के तरीके के रूप में प्रयोग में लाये जाते हैं।
- **प्रतिस्थापक प्रस्ताव (superseading Motion):** यह किसी अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दे पर वाद-विवाद के लिए लाया जाता है तथा वर्तमान चर्चा के मुद्दे को अन्य मुद्दे से प्रतिस्थापित करने का प्रयास करता है।
- **संशोधन (Amendment):** यह मूल प्रस्ताव का केवल एक हिस्सा संशोधित या स्थानापन्न करना चाहता है।

समापन प्रस्ताव

- सदन के किसी सदस्य द्वारा लाए गए समापन प्रस्ताव का उद्देश्य सदन में चल रही चर्चा को बीच में ही रोकना होता है। यदि यह प्रस्ताव पारित हो जाता है तो चर्चा को बीच में ही रोक कर संबंधित विषय पर मतदान करा लिया जाता है।

विशेषाधिकार प्रस्ताव

- यह प्रस्ताव किसी सदस्य द्वारा सदन में तब प्रस्तुत किया जाता है जब उसे लगता है कि किसी मंत्री या मंत्रियों ने संसद सदस्यों के विशेषाधिकारों का उल्लंघन किया है। यदि मंत्री ने सही तथ्यों को छिपाया हो या सदन को गलत सूचना दी हो तो मंत्री के इस व्यवहार की निंदा करने के उद्देश्य से यह प्रस्ताव लाया जाता है।

ध्यानाकर्षण प्रस्ताव

- ध्यानाकर्षण प्रस्ताव के माध्यम से सदन का कोई सदस्य अध्यक्ष या सभापति की अनुमति से किसी मंत्री का ध्यान एक ऐसे विषय की ओर आकर्षित करता है जो अविलंबनीय लोक महत्व का है। इस प्रस्ताव के माध्यम से संबंधित मंत्री से अपेक्षा की जाती है कि वह इस मुद्दे पर संक्षिप्त वक्तव्य दे। शून्यकाल की तरह संसदीय प्रक्रिया में यह भारतीय नवाचार है, जो 1954 से अस्तित्व में है। शून्यकाल के विपरीत प्रक्रिया नियमों में इसका उल्लेख है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

स्थगन प्रस्ताव

- यह किसी अविलंबनीय लोक महत्व के मामले पर सदन में चर्चा करने के लिए, सदन की कार्यवाही को स्थगित करने का प्रस्ताव है। इसके लिए 50 सदस्यों का समर्थन आवश्यक है। यह प्रस्ताव, केवल लोकसभा में पेश किया जा सकता है। सदन का कोई भी सदस्य इस प्रस्ताव को पेश कर सकता है। स्थगन प्रस्ताव पर चर्चा ढाई घंटे से कम की नहीं होती है। सदन की कार्यवाही के लिए स्थगन प्रस्ताव की निम्नलिखित सीमायें भी हैं:
  - इसके माध्यम से ऐसे मुद्दों को ही उठाया जा सकता है, जो कि निश्चित, तथ्यात्मक, अत्यंत जरूरी एवं लोक महत्व के हों।
  - इसमें एक से अधिक मुद्दों को शामिल नहीं किया जाता है।
  - इसके माध्यम से वर्तमान घटनाओं के किसी महत्वपूर्ण विषय को ही उठाया जा सकता है न कि साधारण महत्व के विषय को।
  - इसके माध्यम से विशेषाधिकार के प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता है।
  - इसके माध्यम से ऐसे किसी भी विषय पर चर्चा नहीं कि जा सकती है, जिस पर उसी सत्र में चर्चा हो चुकी है।
  - इसके माध्यम से किसी ऐसे विषय पर चर्चा नहीं कि जा सकती है, जो न्यायालय में विचाराधीन हो।
  - इसे किसी पृथक प्रस्ताव के माध्यम से उठाये गये विषयों को पुनः उठाने की अनुमति नहीं होती है।
- स्थगन प्रस्ताव का उद्देश्य किसी गंभीर चूक या कृत्य की स्थिति में सरकार को कार्यवाही के लिए बाध्य करना है। इसका क्रियान्वयन एक प्रकार से सरकार की निंदा मानी जाती है, अतः राज्यसभा को इस प्रस्ताव का उपयोग करने की अनुमति नहीं है।

अविश्वास प्रस्ताव

- भारत में अविश्वास प्रस्ताव केवल लोकसभा (लोकसभा के नियम 198 के अंतर्गत) में लाया जा सकता है। इस प्रस्ताव पर तभी चर्चा की जा सकती है जब कम से कम लोकसभा के 50 सदस्यों द्वारा इसे समर्थन दिया गया हो। यदि प्रस्ताव आगे बढ़ता है तो लोकसभा इस पर वाद-विवाद एवं मतदान करती है। यदि लोक सभा के सदस्यों का बहुमत प्रस्ताव के समर्थन में होता है तो प्रस्ताव पारित हो जाता है तब सरकार को अनिवार्य तौर पर इस्तीफा देना पड़ता है।

निंदा प्रस्ताव

- यह प्रस्ताव सिर्फ लोकसभा में विपक्ष के द्वारा लाया जा सकता है। यह मंत्रिपरिषद् अथवा किसी मंत्री विशेष अथवा मंत्रियों के समूह के खिलाफ उनके किसी कृत्य के करने, किसी कृत्य के न करने, उनकी किसी नीति अथवा मंत्री या मंत्रियों के समूह की विफलता पर सदन की ओर से अफसोस, आक्रोश या आश्चर्य व्यक्त करने के लिए लाया जाता है।
- इसमें यह बताना जरुरी होता है कि सरकार की किन नीतियों या कार्यों के विरुद्ध इसे लाया जा रहा है। (अविश्वास प्रस्ताव में ऐसे किसी कारण को बताने की आवश्यकता नहीं होती)। निंदा प्रस्ताव के लिए सदन की कार्यवाही स्थगित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि प्रस्ताव लोकसभा में पारित हो जाता है तो मंत्रिपरिषद् के लिए इस्तीफा देना जरूरी नहीं होता किंतु उस पर यह दबाव आ जाता है कि वह जल्दी से जल्दी विश्वास प्रस्ताव या किसी अन्य माध्यम से लोकसभा में अपना बहुमत सिद्ध करे।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

धन्यवाद प्रस्ताव

- प्रत्येक आम चुनाव के पहले सत्र एवं वित्तीय वर्ष के पहले सत्र में राष्ट्रपति सदन को संबोधित करता है। अपने संबोधन में राष्ट्रपति पूर्ववर्ती वर्ष और आने वाले वर्ष में सरकार की नीतियों एवं योजनाओं का खाका खींचता है। राष्ट्रपति के इस संबोधन को 'ब्रिटेन के राजा का भाषण' से लिया गया है। दोनों सदनों में इस पर चर्चा होती है। इसी को धन्यवाद प्रस्ताव कहा जाता है। बहस के बाद प्रस्ताव को मत विभाजन के लिए रखा जाता है। इस प्रस्ताव का सदन में पारित होना आवश्यक है, नहीं तो इसका तात्पर्य सरकार का पराजित होना माना जाता है। राष्ट्रपति का यह प्रारंभिक भाषण सदस्यों को चर्चा तथा वाद-विवाद के मुद्दे उठाने और त्रुटियों एवं कमियों हेतु सरकार और प्रशासन की आलोचना का अवसर उपलब्ध कराता है।

आधे घंटे की बहस

- यह पर्याप्त लोक महत्व के मामलों आदि पर चर्चा के लिए है। अध्यक्ष ऐसी बहस के लिए सप्ताह में तीन दिन निर्धारित कर सकता है। इसके लिए सदन में कोई औपचारिक प्रस्ताव या मतदान नहीं होता।

अल्पकालिक चर्चा

- इसे दो घंटे का चर्चा भी कहते हैं क्योंकि इस तरह की चर्चा के लिए दो घंटे से अधिक का समय नहीं लगता। संसद सदस्य किसी जरूरी सार्वजनिक महत्व के मामले को बहस के लिए रख सकते हैं। अध्यक्ष एक सप्ताह में इस पर बहस के लिए तीन दिन उपलब्ध करा सकता है।

विशेष उल्लेख

- ऐसा मामला जो औचित्य प्रश्न नहीं है, उसे प्रश्नकाल के दौरान नहीं उठाया जाता। आधे घंटे की बहस जिसमें कई सारे मामले शामिल हैं, इसे विशेष उल्लेख के तहत राज्यसभा में उठाया जाता है। इसे लोकसभा में नियम 377 के अधीन 'नोटिस' कहा जाता है।

9.4. संकल्प (Resolution)

- संकल्प, साधारण लोक महत्व के विषय पर सदन में चर्चा आरम्भ करने के लिए प्रक्रियात्मक साधनों में से एक है। नियमों के उपबंधों के अधीन कोई मंत्री या सदस्य संकल्प ला सकता है। किसी सदस्य द्वारा प्रस्तावित संकल्प या संकल्प के संशोधन को सभा की अनुमति के बिना वापस नहीं किया जा सकता। संकल्पों को तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है:
  - **गैर सरकारी सदस्यों का संकल्प:** यह संकल्प गैर सरकारी सदस्य द्वारा लाया जा सकता है।
  - **सरकारी संकल्प:** यह एक मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।
  - **सांविधिक संकल्प:** यह एक गैर सरकारी सदस्य या एक मंत्री द्वारा लाया जा सकता है। इसे ऐसा इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसे संविधान के उपबंध या अधिनियम के तहत लाया जा सकता है।

9.4.1 प्रस्ताव और संकल्प के बीच अंतर

- सभी संकल्प महत्वपूर्ण प्रस्ताव होते हैं किन्तु यह अनिवार्य नहीं कि सभी प्रस्ताव महत्वपूर्ण हो।
- यह आवश्यक नहीं कि सभी प्रस्तावों को सदन में मतदान के लिए रखा जाए जबकि सभी संकल्पों पर मतदान आवश्यक है।
- स्थानापन्न प्रस्ताव, मूल प्रस्ताव को स्थानांतरित नहीं कर सकता है। उसी प्रकार स्थानापन्न प्रस्ताव को संकल्प के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, स्थानापन्न प्रस्ताव को एक प्रस्ताव के रूप में लाया जा सकता है, जो मूल प्रस्ताव न हो।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

9.5. औचित्य प्रश्न

- औचित्य प्रश्न वस्तुतः संचालन नियमों या संविधान के कुछ अनुच्छेदों जो सदन की कार्यवाही का विनियमन करते हैं, आदि की व्याख्या या प्रवर्तन से संबंधित प्रश्न होते हैं। ऐसे प्रश्न निर्णय हेतु पीठासीन अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं।
- यदि सदन संचालन के सामान्य नियमों का पालन नहीं करता है तों एक सदस्य सदन में औचित्य प्रश्न के माध्यम से ध्यान आकर्षित कर सकता है। यह एक असाधारण युक्ति है क्योंकि यह सदन की कार्यवाहियों को समाप्त कर सकती है। औचित्य प्रश्न में यद्यपि किसी तरह की बहस की अनुमति नहीं होती है।

10. संसद में विधायी प्रक्रिया

संसद में प्रस्तुत विधेयकों को निम्नलिखित **चार श्रेणियों** में वर्गीकृत किया जा सकता है:

1. **साधारण विधेयक,** जो वित्तीय विषयों के अलावा अन्य विषयों से सम्बद्ध होते हैं।
2. **धन विधेयक**, जो वित्तीय विषयों (अनु. 110) से सम्बंधित होते हैं।
3. **वित्तीय विधेयक,** जो वित्तीय विषयों से सम्बंधित होते हैं (किन्तु धन विधेयकों से अलग होते हैं)।
4. **संविधान संशोधन विधेयक**, जो संविधान के विभिन्न उपबंधों में संशोधन से सम्बंधित होते हैं।

10.1. साधारण विधेयक

संसद में साधारण विधेयकों के संबंध में विधायी प्रक्रिया के विभिन्न चरण निम्नलिखित हैं:

10.1.1 प्रथम पाठन

- साधारण विधेयकों के संबंध में विधायी प्रक्रिया संसद के किसी भी सदन लोकसभा या राज्यसभा में विधेयक की प्रस्तुति के साथ आरम्भ होती है। यह विधेयक मंत्री या गैर सरकारी सदस्य किसी के भी द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।
- मंत्री द्वारा प्रस्तुत किये जाने पर यह एक सरकारी विधेयक जबकि गैर सरकारी सदस्य द्वारा प्रस्तुति पर यह गैर सरकारी सदस्य विधेयक के रूप में जाना जाता है। जब कोई सदस्य सदन में विधेयक प्रस्तुत करना चाहता है तो पहले उस सदस्य को सदन की अनुमति लेनी आवश्यक होती है। अनुमति के बाद ही इसे प्रस्तुत किया जा सकता है। यह चरण विधेयक के प्रथम पाठन के रूप में जाना जाता है।
- यदि विधेयक को अनुमति देने के प्रस्ताव का विरोध किया जाता है तो उस दशा में पीठासीन अधिकारी अपने विवेकाधिकार का प्रयोग कर विधेयक को प्रस्तुत करने वाले सदस्य और उसका विरोध करने वाले सदस्य दोनों को संक्षिप्त व्याख्यात्मक विवरण देने की अनुमति दे सकता है। यदि विधेयक प्रस्तुत करने की अनुमति मांगने वाले प्रस्ताव का विरोध इस आधार पर हो कि विधेयक ऐसे विधायन का सूत्रपात करता है जो सदन के विधायी सामर्थ्य के अंतर्गत नहीं है, तो पीठासीन अधिकारी उस पर पूर्ण चर्चा की अनुमति दे सकता है। तत्पश्चात् प्रश्न सदन के समक्ष मतदान हेतु प्रस्तुत किया जाता है।
- **राजपत्र में प्रकाशन:** विधेयक की प्रस्तुति के बाद इसे भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया जाता है। यदि विधेयक सदन में प्रस्तुत करने से पहले ही राजपत्र में प्रकाशित हो जाये तो विधेयक के संबंध में सदन की अनुमति की आवश्यकता नहीं होती है।

विधेयक को स्थायी समिति को भेजना:

- विधेयक की प्रस्तुति के बाद सम्बंधित सदन का अध्यक्ष उस विधेयक के मूल्यांकन तथा उस पर प्रतिवेदन तैयार करने हेतु सम्बद्ध स्थायी समिति को प्रेषित कर सकता है। यदि कोई विधेयक स्थायी समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो समिति विधेयक के सामान्य सिद्धांतों तथा प्रावधानों पर विचार करेगी और उस पर प्रतिवेदन (रिपोर्ट) तैयार करेगी। समिति, विशेषज्ञों या जनता की राय भी ले सकती है। विधेयक पर विचार करने के पश्चात् समिति प्रतिवेदन सदन को सौंप देती है। इस प्रतिवेदन को समिति द्वारा दिए गए सुविचारित परामर्श के रूप में देखा जाता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

10.1.2 द्वितीय पाठन

इस चरण में विधेयक की विस्तृत समीक्षा की जाती है जो दो चरणों में होती है:

- **प्रथम चरण:** प्रथम चरण में सम्पूर्ण विधेयक पर चर्चा की जाती है। इसमें विधेयक में अन्तर्निहित उद्देश्यों पर चर्चा की जाती है। इस चरण में इसे सदन द्वारा प्रवर समिति या दोनों सदनों की संयुक्त समिति को भेजा जा सकता है अथवा जनता के विचार जानने के लिए इसे सार्वजनिक किया जा सकता है या इस पर तुरंत चर्चा की जा सकती है।
    - कोई विधेयक प्रवर/संयुक्त समिति के पास भेजा जाता है तो समिति सदन की ही भांति विधेयक पर खंडवार चर्चा करती है। समिति के सदस्य विधेयक की विभिन्न धाराओं में संशोधन भी कर सकते हैं। समिति विभिन्न संघों, सार्वजनिक निकायों या विशेषज्ञों से, जिनकी इसमें रूचि हो, राय ले सकती है। विधेयक पर इस प्रकार विचार करने के पश्चात् समिति अपनी रिपोर्ट सदन को सौंपती है जो विधेयक पर पुनर्विचार करता है।
- **दूसरा चरण:** द्वितीय पाठन के दूसरे चरण में विधेयक पर प्रवर/संयुक्त समिति के प्रतिवेदन के आधार पर खंडवार विचार-विमर्श किया जाता है। विधेयक के प्रत्येक खंड पर चर्चा होती है। इस चरण में विभिन्न प्रावधानों में संशोधन भी किया जा सकता है। किसी प्रावधान में प्रस्तावित संशोधन को सदन के समक्ष मतदान के लिए रखा जाता है। उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर वे संशोधन विधेयक का भाग बन जाते हैं।

10.1.3 तृतीय पाठन

- उपर्युक्त प्रक्रिया के पश्चात्, सदस्य विधेयक को पारित कराने के लिए उसे सदन में ला सकते हैं। यह चरण विधेयक के तृतीय पाठन के रूप में जाना जाता है। इस चरण में केवल विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के संबंध में चर्चा होती है तथा विधेयक में कोई संशोधन नहीं किया जा सकता है। एक साधारण विधेयक को पारित करने के लिए उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों का साधारण बहुमत अनिवार्य है। यदि सदन का बहुमत इसे पारित कर देता है तो विधेयक को दूसरे सदन में भेजा जाता है।

10.1.4 दूसरे सदन में विधेयक

एक सदन से पारित होने के उपरान्त दूसरे सदन में भी विधेयक का प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय पाठन होता है। इस संबंध में दूसरे सदन के पास निम्नलिखित विकल्प होते हैं:

- यह विधेयक को पूरी तरह अस्वीकार कर सकता है। ऐसी स्थिति में अनुच्छेद 108(1) के तहत राष्ट्रपति दोनों सदनों की संयुक्त बैठक बुला सकता है।
- यह विधेयक को संशोधनों के साथ पारित करके प्रथम सदन को पुनः विचारार्थ भेज सकता है। यदि प्रथम सदन, जहाँ विधेयक सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया था, उसे संशोधित रूप में स्वीकार कर लेता है तो उसे राष्ट्रपति की सहमति (अनुच्छेद 111) के लिए भेजा जाएगा।
- यदि प्रारंभिक सदन दूसरे सदन द्वारा किए गए संशोधनों पर सहमत नहीं है और इस सन्दर्भ में दोनों के बीच अंतिम रूप से असहमति है तो राष्ट्रपति इस गतिरोध को दूर करने के लिए संयुक्त बैठक आहूत कर सकता है।
- यह विधेयक पर किसी भी प्रकार की कार्यवाही न करके उसे लंबित कर सकता है। ऐसे मामले में यदि विधेयक पर दूसरा सदन विधेयक की प्राप्त करने की तिथि से 6 माह तक कोई कार्यवाही नहीं करता है तो राष्ट्रपति संयुक्त बैठक का आह्वान कर सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

10.1.5 राष्ट्रपति की स्वीकृति

- जब विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा पृथक रूप से पारित या संयुक्त बैठक (अनुच्छेद 108 के प्रावधान के तहत) में पारित कर दिया गया हो तो उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। यदि राष्ट्रपति अपनी सहमति नहीं देता है, तो विधेयक निरस्त या समाप्त हो जाता है। यदि वह सहमति दे देता है तो उस तिथि से वह विधेयक अधिनियम बन जाता है।
- विधेयक को स्वीकार या अस्वीकार करने के बजाय राष्ट्रपति उसे पुनर्विचार हेतु सदन को वापस लौटा सकता है। हालांकि यदि सदन संशोधन के साथ या बिना संशोधन किये उसे राष्ट्रपति को दोबारा भेजता है तो राष्ट्रपति इस पर सहमति देने हेतु बाध्य होता है।

10.1.6 दोनों सदनों की संयुक्त बैठक

किसी विधेयक को पारित करने के संदर्भ में गतिरोध की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब:

- दूसरे सदन द्वारा विधेयक को अस्वीकार कर दिया गया हो, या
- यदि विधेयक में किये जाने वाले संशोधनों के संबंध में दोनों सदन अंतिम रूप से असहमत हो गए हों, या
- यदि दूसरे सदन ने विधेयक प्राप्त होने की तारीख से 6 महीने पूरे होने तक विधेयक को पारित न किया हो।

10.1.6 दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के संबंध में सीमाएं

- धन विधेयकों के मामले में संयुक्त बैठक का आयोजन नहीं हो सकता है, क्योंकि लोकसभा में इसे पारित करने की अंतिम शक्ति है। यदि धन विधेयकों के मामले में कोई असहमति होती भी है तो लोकसभा के पास राज्यसभा के संशोधनों को नकार कर विधेयक उसी रूप में पारित कर देने की शक्ति होती है।
- संविधान संशोधन विधेयक के मामले में, संयुक्त बैठक का कोई प्रावधान नहीं है। यह दोनों सदनों में अलग अलग पारित होना चाहिए। {अन्य सभी विधेयकों (वित्तीय विधेयक भी शामिल) की स्थिति में यदि कोई गतिरोध उत्पन्न हो जाता है तो संविधान के अनुच्छेद 108 के तहत संयुक्त बैठक आहूत किये जाने का प्रावधान है।}

10.1.7 संयुक्त बैठक के संबंध में अन्य प्रावधान

- संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार राष्ट्रपति दोनों सदनों के बीच असहमति होने पर उसकी संयुक्त बैठक आहूत करने के अपने आशय की अधिसूचना दे सकता है। यदि विधेयक लोकसभा का विघटन होने के कारण व्यपगत हो गया है, तो राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना नहीं निकाली जाएगी। किन्तु यदि राष्ट्रपति ने संयुक्त बैठक करने के अपने आशय की अधिसूचना जारी कर दी है तो लोकसभा के पश्चात्वर्ती विघटन से संयुक्त बैठक में कोई बाधा नहीं आएगी।
- ऐसी संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोकसभा अध्यक्ष करता है। यदि वह अनुपस्थित हो तो बैठक की अध्यक्षता लोकसभा का उपाध्यक्ष करता है। उसके भी अनुपस्थित होने की स्थिति में राज्यसभा का उपसभापति बैठक की अध्यक्षता करता है। यदि वह भी उपस्थित न हो तो उपस्थित सदस्यों द्वारा चुना गया कोई अन्य सदस्य इस बैठक की अध्यक्षता करता है। यह स्पष्ट है कि किसी भी स्थिति में राज्यसभा का सभापति संयुक्त बैठक की अध्यक्षता नहीं करता, क्योंकि वह सदन का सदस्य नहीं होता।
- संसद के संयुक्त अधिवेशन के लिए गणपूर्ति दोनों सदनों के सदस्यों की कुल संख्या का 1/10 भाग होती है।
- संयुक्त बैठक की कार्यवाहियां लोकसभा की प्रक्रिया की नियमावली के अनुसार होती हैं, न कि राज्यसभा के। सामान्यतः अधिक सदस्य संख्या होने के कारण संयुक्त बैठक की स्थिति में लोकसभा अपनी मांगों को मनवाने में सफल रहती है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संयुक्त बैठक के दौरान प्रस्तुत किए जा सकने वाले संशोधनों पर कुछ प्रतिबन्ध भी लगाए गए हैं, यथा:
  - यदि विधेयक के एक सदन से पारित होने के बाद वह दूसरे सदन द्वारा अस्वीकृत कर दिया गया हो या वापस न किया गया हो, तो संयुक्त बैठक में केवल वे ही संशोधन प्रस्तुत किये जायेंगे जिनके कारण विधेयक के पारित होने में देरी हुई है।
  - अन्य संशोधन जो उन विषयों से संबंधित हैं जिनपर सदन में असहमति है, संयुक्त बैठक के दौरान प्रस्तावित किये जायेंगे।
- देश के संसदीय इतिहास में अब तक केवल तीन बार किसी विवादित विधेयक को पारित करवाने के लिए संसद का संयुक्त अधिवेशन आहूत किया गया है। संयुक्त बैठक में पारित किये गए विधेयक निम्नलिखित हैं:
  - दहेज प्रतिषेध विधेयक, 1960
  - बैंकिंग सेवा आयोग (निरसन) विधेयक, 1978
  - आतंकवाद निवारण विधेयक, 2002

10.2. धन विधेयक

अनुच्छेद 110 (1) में धन विधेयक की परिभाषा दी गयी है, इसके अनुसार कोई विधेयक धन विधेयक समझा जाएगा यदि उसमें निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों से संबंधित उपबंध होंगे:

(a) किसी कर का अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन।

(b) भारत सरकार द्वारा धन उधार लेने का या कोई प्रत्याभूति देने का विनियमन अथवा भारत सरकार द्वारा अपने ऊपर ली गई या ली जाने वाली किन्हीं वित्तीय बाध्यताओं से संबंधित विधि का संशोधन।

(c) भारत की संचित निधि या आकस्मिकता निधि की अभिरक्षा, ऐसी किसी निधि में धन जमा करना या उसमें से धन निकालना।

(d) भारत की संचित निधि में से धन का विनियोग; किसी व्यय को भारत की संचित निधि पर भारित व्यय घोषित करना या ऐसे किसी व्यय की रकम को बढ़ाना।

(e) भारत की संचित निधि या भारत की लोक लेखा में किसी प्रकार के धन की प्राप्ति या ऐसे धन की अभिरक्षा या उसका व्यय अथवा संघ या राज्य के लेखाओं की संपरिक्षा; या

(f) उपखंड (a) से उपखंड (e) में निर्दिष्ट किसी विषय का आनुषंगिक कोई विषय।

- कोई भी विधेयक केवल इस कारण धन विधेयक नहीं माना जाएगा कि उसमें:
  - जुर्माना या अन्य आर्थिक दण्ड (शास्तियों) के अधिरोपण का, या,
  - अनुज्ञप्तियों या की गई सेवाओं के लिए फीसों का, या,
  - किसी स्थानीय प्राधिकारी या निकाय द्वारा स्थानीय प्रयोजनों के लिए किसी कर के अधिरोपण, उत्सादन, परिहार, परिवर्तन या विनियमन का उपबंध है।

धन विधेयक: कुछ महत्वपूर्ण तथ्य

- धन विधेयक केवल लोकसभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है।
- यह केवल राष्ट्रपति की संस्तुति/अनुसंशा से ही पुरःस्थापित किया जा सकता है।
- यह केवल मंत्री द्वारा पुरः स्थापित किया जा सकता है।
- इसमें राज्यसभा कोई संशोधन नहीं कर सकती लेकिन संशोधन की सिफारिश कर सकती है।
- राज्यसभा के लिए यह आवश्यक है कि विधेयक को प्राप्ति की तिथि से 14 दिन की अवधि के भीतर सिफारिश के साथ या सिफारिश के बिना लोकसभा को लौटा दे।
- राष्ट्रपति धन विधेयक को पुनर्विचार के लिए लौटा नहीं सकता है।
- धन विधेयक के लोकसभा में अस्वीकृत होने पर सरकार को त्यागपत्र देना पड़ता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

धन विधेयकों का प्रमाणन

- यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, तो उस पर लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम होता है। अध्यक्ष को किसी विधेयक को धन विधेयक का प्रमाण-पत्र प्रदान करने के अपने निर्णय में किसी से परामर्श लेने की बाध्यता नहीं है।
- धन विधेयक पर अध्यक्ष द्वारा प्रमाण-पत्र प्रदान करने का आशय यह है कि अध्यक्ष को पृष्ठांकित करना होता है कि विधेयक, धन विधेयक है। जब विधेयक राज्यसभा को प्रेषित किया जाता है तथा राष्ट्रपति के समक्ष सहमति हेतु प्रस्तुत किया जाता है, तब अध्यक्ष द्वारा इसे धन विधेयक के रूप में समर्थित (पृष्ठांकन) और हस्ताक्षरित करना होता है।
- धन विधेयक पर अध्यक्ष द्वारा प्रदत्त प्रमाण-पत्र का विनिश्चय अंतिम होता है और उसे चुनौती नहीं दी जा सकती है।
- धन विधेयक हेतु संयुक्त बैठक का प्रावधान नहीं है।

धन विधेयक बनाम वित्तीय विधेयक

- यद्यपि धन विधेयक सम्पूर्ण रूप से संविधान के अनुच्छेद 110(1)(a) से (f) में निर्दिष्ट विषयों के साथ संबंधित है, वहीं वित्तीय विधेयक विशेष रूप से निर्दिष्ट इन सभी विषयों अथवा वर्णित अनुच्छेद के किसी भी एक विषय या इसमें कुछ अन्य प्रावधानों से संबंधित है।
- वित्तीय विधेयकों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी में वह विधेयक जो अन्य विषयों के साथ संविधान के अनुच्छेद 110(1)(a) से (f) के प्रावधानों को भी शामिल करता है। ये संविधान के अनुच्छेद 117(1) के तहत वित्तीय विधेयकों के रूप में वर्गीकृत किए गए हैं। धन विधेयकों की तरह, वे राष्ट्रपति की संस्तुति पर केवल लोकसभा में ही पुर:स्थापित किए जा सकते हैं। हालांकि, धन विधेयकों से सम्बंधित अन्य प्रतिबंध इस श्रेणी के विधेयकों पर लागू नहीं होते है। संविधान के अनुच्छेद 117(1) के तहत आने वाले वित्त विधेयक को गतिरोध की स्थिति में दोनों सदनों की संयुक्त बैठक के समक्ष प्रस्तुत करने का उपबंध है।
- दूसरी श्रेणी में, भारत की संचित निधि पर भारित व्यय से संबंधित उपबंध होते हैं लेकिन उसमें वह कोई मामला नहीं होता, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 110 में होता है। इस प्रकार के विधेयक संविधान के अनुच्छेद 117(3) के तहत वित्त विधेयकों के रूप में वर्गीकृत किए जाते हैं। इन वित्त विधेयकों को किसी अन्य साधारण विधेयक की तरह संसद के किसी भी सदन में पुर:स्थापित किया जा सकता है। किंतु विधेयक तभी पारित किया जाएगा जब राष्ट्रपति संबद्ध सदन को उस विधेयक पर विचार करने की सिफारिश करे, हालांकि इसके पुर:स्थापन के लिए उसकी सिफारिश की आवश्यकता नहीं है।

विधेयकों को कई बार निम्नलिखित भागों में भी विभाजित किया जाता है:

मंत्रियों द्वारा लाए गए विधेयक सरकारी विधेयक कहलाते हैं और ऐसे सदस्यों द्वारा, जो मंत्री नहीं हैं, पुर:स्थापित विधेयक गैर-सरकारी विधेयक कहलाते हैं। विधेयकों की विषय-वस्तु के आधार पर विधेयकों को मोटे तौर पर निम्निलिखित वर्गों में भी विभाजित किया जा सकता है:

- मूल विधेयक, जो नये प्रस्तावों से संबंधित होते हैं,
- संशोधनकारी विधेयक, जिनका आशय मौजूदा अधिनियमों का संशोधन करना होता है,
- समेकन विधेयक, जिनका आशय किसी खास विषय पर विद्यमान कानूनों का समेकन करना होता है,
- किसी निर्दिष्ट तिथि को समाप्त हो रहे कानूनों को जारी रखने के लिए विधेयक
- निरसनकारी विधेयक
- अध्यादेशों को प्रतिस्थापित करने के लिए विधेयक
- धन और वित्त विधेयक तथा
- संविधान संशोधन विधेयक।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

10.3. बजट

- संविधान में 'बजट' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसके स्थान पर संविधान में **"वार्षिक वित्तीय विवरण"** का प्रयोग किया गया है।
- यह राष्ट्रपति का संवैधानिक उत्तरदायित्व है कि वह बजट को दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत करवाएगा।
- बजट केवल एक वर्ष की अवधि के लिए होता है, अतः कार्यपालिका एक वर्ष से अधिक अवधि के लिए संसद को नजरअंदाज नहीं कर सकती है।
- बजट की प्रस्तुति विपक्ष के लिए सरकार की नीतियों की आलोचना करने का एक अवसर होता है।
- एक बार जब सरकार अनुमान प्रस्तुत करती है, विचार-विमर्श शुरू हो जाता है।

कटौती प्रस्ताव

ये प्रस्ताव केवल लोकसभा में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। ये बजटीय प्रक्रिया का हिस्सा हैं।
कटौती प्रस्ताव को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

- **नीति अनुमोदन कटौती (Disapproval of Policy Cut):** यह प्रस्ताव करता है कि "मांग की राशि घटा कर 1 रुपया कर दी जाए"। इसके द्वारा प्रस्तावक मांग की मूल नीति के प्रति असहमति व्यक्त करता है। सदस्य को इस तरह के प्रस्ताव में, सटीक शब्दों में नीति के विशेष बिंदु, जिस पर चर्चा प्रस्तावित है, का संकेत देना होता है। चर्चा, प्रस्ताव में उल्लिखित विशिष्ट बिंदु तक या प्रस्ताव में वर्णित किसी बिंदु तक सीमित होनी चाहिए एवं सदस्य कोई वैकल्पिक नीति का सुझाव भी प्रस्तुत कर सकते हैं।
- **मितव्ययिता कटौती (Economy Cut):** इस प्रस्ताव का उद्देश्य व्यय में मितव्ययिता लाना होता है और यह प्रस्ताव इस रूप में होता है कि "मांग की राशि में .....रुपये की कमी की जाए (उल्लिखित राशि)"। इस तरह उल्लिखित राशि या मांग में एकमुश्त कटौती हो सकती है या फिर पूर्ण समाप्ति या मांग की किसी मद में कटौती हो सकती है।
- **सांकेतिक कटौती (Token Cut):** इस प्रस्ताव का उद्देश्य यह होता है कि ऐसी विशिष्ट शिकायत व्यक्त की जाए जिसके लिए भारत सरकार उत्तरदायी हो और इसमें कहा जाता है कि "मांग की राशि में 100 रुपये की कमी की जाए"।

लेखानुदान (Vote on Account)

- बजट पारित करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया बजट पेश किए जाने से लेकर इस पर चर्चा करने, अनुदानों की मांगें स्वीकृत होने तथा विनियोग एवं वित्त विधेयक के पारित होने तक सामान्यतया चालू वित्त वर्ष के आरंभ होने के बाद तक चलती रहती है। अतः संविधान में लोकसभा को सशक्त बनाने के लिए एक प्रावधान किया गया है, जिससे सरकार लेखानुदान के माध्यम से अनुमानित व्यय में से अग्रिम अनुदान प्राप्त कर सके एवं विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के पारित होने तक देश का शासन व्यवस्था बनाये रखने में सक्षम बनी रहे।
- साधारणतया, अनुदानों की विभिन्न मांगों के अंतर्गत सम्पूर्ण वर्ष के लिए अनुमानित व्यय के 1/6वें भाग के बराबर, दो माह हेतु राशि का लेखानुदान प्राप्त किया जाता है। किसी चुनावी वर्ष के दौरान, यदि ऐसी प्रत्याशा हो कि सदन द्वारा मुख्य मांगों और विनियोग विधेयक को पास किए जाने में दो माह से अधिक का समय लगेगा तो लेखानुदान लंबी अवधि के लिए, अर्थात तीन या चार माह के लिए प्राप्त किया जा सकता है।
- परम्परा के अनुसार, लेखानुदान को एक औपचारिकता माना जाता है एवं लोकसभा द्वारा चर्चा के बिना पारित कर दिया जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

अंतरिम बजट

- एक अंतरिम बजट 'लेखानुदान' के समान नहीं होता है। हालांकि 'लेखानुदान' केवल सरकारी बजट के व्यय पक्ष से जुड़ा है, परन्तु एक अंतरिम बजट सम्पूर्ण लेखों का संग्रह होता है, जिसमें व्यय और प्राप्तियां दोनों शामिल होती हैं।
- अंतरिम बजट सम्पूर्ण वित्तीय विवरण प्रदान करता है एवं पूर्ण बजट के समान ही होता है, हालांकि यह एक वर्ष से भी कम अवधि के लिए होता है।
- हालांकि सामान्यतया चुनावी वर्ष के दौरान, यह कानून केंद्र सरकार को कर परिवर्तन करने से वंचित नहीं करता है, फिर भी उत्तरोतर सरकारों द्वारा अंतरिम बजट के दौरान, आयकर कानून में किसी भी बड़े परिवर्तन से परहेज किया जाता रहा है।

विनियोग विधेयक

- बजट प्रस्तावों पर आम बहस और अनुदानों की मांगों पर मतदान प्रक्रिया पूर्ण होने के उपरांत, सरकार विनियोग विधेयक प्रस्तुत करती है। विनियोग विधेयक का प्रयोजन भारत सरकार को संचित निधि में से व्यय के विनियोग हेतु अधिकार प्रदान करना है।
- इस विधेयक को पारित करने की प्रक्रिया वही है जो अन्य धन विधेयकों के मामले में अपनायी जाती है।

10.4. वित्त विधेयक

- वित्त विधेयक सरकार के कराधान प्रस्तावों को प्रभावी बनाने के लिए लाया जाता है और यह आम बजट की प्रस्तुति के तुरंत बाद लोकसभा में प्रस्तुत किया जाता है।
- विनियोग विधेयक के पारित होने के पश्चात् वित्त विधेयक को विचार करने और पारित करने हेतु प्रस्तुत किया जाता है। हालांकि, अनंतिम कर संग्रह अधिनियम (Provisional Collection of Taxes Act), 1931 के तहत की गई एक घोषणा के प्रभावस्वरूप, विधेयक में उल्लखित करारोपण और नए करों के संग्रह या मौजूदा करों में परिवर्तन से संबंधित कुछ प्रावधान वित्त विधेयक को प्रस्तुत करने की तिथि से संबद्ध दिन की समाप्ति से ही लागू हो जाते हैं।
- वित्त विधेयक के प्रस्तुत किये जाने के पश्चात् संसद को 75 दिनों के भीतर इसे पारित करना होता है।

10.5. भारत सरकार के खाते

सरकार के खातों को तीन भागों में विभाजित किया जाता है: -

- भारत की संचित निधि
- भारत की आकस्मिकता निधि
- लोक लेखा

10.5.1 भारत की संचित निधि

- यह अनुच्छेद 266(1) के तहत वर्णित भारत सरकार की मुख्य निधि है। इस निधि के लिए धन का प्रवाह आयकर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क इत्यादि से प्राप्त कर राजस्व और सरकार के कार्य-व्यापार के संचालन के परिणामस्वरूप प्राप्त गैर-कर राजस्व से होता है। ट्रेजरी बिलों के प्रयोग द्वारा एकत्रित ऋण भी इसी निधि में संचित होता है। सरकार इस कोष से ऋण के भुगतान सहित अपने सभी व्ययों को पूरा करती है।
- इस निधि में से कोई भी धन केवल तभी निकाला जा सकता है जब संसद में विनियोग अधिनियम या अनुपूरक अनुदान संबंधी अधिनियम पारित किया गया हो।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

10.5.2 भारत की आकस्मिकता निधि

- भारत की आकस्मिकता निधि का गठन संविधान के अनुच्छेद 267(1) के तहत एक अग्रिम खाते के रूप में किया गया है। इस निधि में 500 करोड़ की धनराशि उपलब्ध होती है।
- इस निधि का उद्देश्य यह है कि जब तक किसी आकस्मिक खर्च के लिए संसद ने सरकार को प्राधिकृत न किया हो तब तक राष्ट्रपति इसमें से आवश्यक धनराशि सरकार को अग्रिम के तौर पर दे सकते हैं। संसद द्वारा जैसे ही इस व्यय को प्राधिकृत कर दिया जाता है, यह धन पुनः निधि में जमा कर दिया जाता है। राष्ट्रपति की ओर से भारत सरकार का वित्त सचिव इस निधि का संचालन करता है।

10.5.3 लोक लेखा

- लोक लेखा संविधान के अनुच्छेद 266(2) के तहत गठित किया गया है। संचित निधि में शामिल धन के अतिरिक्त सरकार द्वारा या भारत सरकार की ओर से प्राप्त किया गया समस्त सार्वजनिक धन भारत सरकार के लोक लेखा में जमा किए जाते हैं।
- इस भाग के तहत ऋण, जमा और अग्रिमों से संबद्ध वे लेनदेन हैं जिनके संबंध में सरकार प्राप्त किये गए धन को वापस करने का दायित्व या जमा किये गए धन को उगाहने की शक्ति रखती है। लोक लेखा की प्राप्तियां सरकार की नियमित प्राप्तियों से भिन्न हैं। इसीलिए लोक लेखा से धन निकालने के लिए संसद द्वारा कोई विधेयक पारित किये जाने की आवश्यकता नहीं है। यह निधि सिर्फ कार्यपालिका के द्वारा संचालित की जाती है।

10.5.4 भारित व्यय

- कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थानों की स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिए संविधान में उनके खर्चों को भारत की संचित निधि में शामिल करने का प्रावधान किया गया है। इसका अर्थ यह है कि भले ही संसद इन व्ययों पर चर्चा कर सकती है, किन्तु इनपर बजट के दौरान मतदान नहीं किया जाता। अतः सरकार का इन संस्थानों पर प्रत्यक्ष वित्तीय नियंत्रण नहीं है।

ये भारित व्यय निम्नलिखित हैं:

- राष्ट्रपति के वेतन एवं भत्ते तथा उनके कार्यालय के व्यय
- लोकसभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा के सभापति तथा उपसभापति के वेतन एवं भत्ते
- उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की पेंशन
- भारत के नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक के वेतन, भत्ते तथा पेंशन
- संघ लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष तथा सदस्यों के वेतन, भत्ते तथा पेंशन
- भारत के नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक, संघ लोक सेवा आयोग तथा उच्चतम न्यायालय के प्रशासनिक व्यय
- ऋण, जिनके लिए भारत सरकार उत्तरदायी है
- किसी निर्णय, डिक्री इत्यादि के प्रवर्तन के लिए आवश्यक धन
- संसद के किसी अधिनियम द्वारा परिभाषित भारत की संचित निधि पर आरोपित अन्य व्यय

10.6. संविधान संशोधन विधेयक

- भारतीय संविधान एक प्रगतिशील प्रलेख है। समय और देश की परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुसार संविधान में भी परिवर्तन लाना आवश्यक होता है। अतः देश में समय समय पर उत्पन्न विभिन्न सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के अनुसार संविधान में परिवर्तन किया जाता रहा है। संविधान संशोधन की प्रक्रिया का संविधान के भाग 20 के अनुच्छेद 368 में विस्तृत वर्णन किया गया है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संविधान संशोधन के लिए नम्य एवं कठोर दोनों प्रक्रियाओं को अपनाया गया है। संविधान संशोधन प्रक्रिया की दृष्टि से भारतीय संविधान के विभिन्न उपबंधों को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:
  1. ऐसे उपबंध, जिन्हें संसद में साधारण बहुमत से संशोधित किया जा सकता है।
  2. ऐसे उपबंध, जिन्हें संसद में विशेष बहुमत से संशोधित किया जा सकता है।
  3. ऐसे उपबंध, जिन्हें संसद में विशेष बहुमत के साथ भारत के आधे राज्यों के विधानमंडलों के संकल्पों की स्वीकृति द्वारा संशोधित किया जा सकता है।

साधारण बहुमत द्वारा संशोधन

संविधान के अनेक ऐसे उपबंध हैं, जिनके संशोधन हेतु संसद के दोनों सदनों में केवल साधारण बहुमत की आवश्यकता होती है। इन्हें दो वर्गों में बांट सकते हैं:

- **जहाँ संविधान का पाठ नहीं बदलता किंतु विधि में परिवर्तन हो जाता है:**
  - अनुच्छेद 11 संसद को नागरिकता के बारे में विधि अधिनियमित करने की शक्ति देता है। इस शक्ति के अनुसरण में जो अधिनियम बनाया जाएगा वह नागरिकता से संबंधित विधि को परिवर्तित कर देगा किंतु अनु. 5 से 10 तक के अनुच्छेद जैसे हैं वैसे ही बने रहेंगे। अनुच्छेद 124 में लिखित है कि उच्चतम न्यायालय मुख्य न्यायमूर्ति और सात से अनधिक न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा। किंतु संसद ने न्यायाधीशों की संख्या 7 से बढ़ाकर 31 कर दी है।
- **जहां संविधान का पाठ परिवर्तित हो जाता है:**
  - नए राज्यों की रचना, अनुसूची 1 और 4 का संशोधन आदि सामान्य विधि द्वारा किए जा सकते हैं। संसद विधि बनाकर पांचवीं और छठी अनुसूची को संशोधित कर सकती है।
  - जो उपबंध सामान्य विधि द्वारा बदले जा सकते हैं उनमें (जो ऊपर गिनाए गए हैं उनके अतिरिक्त) शामिल हैं: विधान परिषदों का सृजन और उत्सादन; संघ राज्यक्षेत्रों के लिए मंत्रिपरिषद् का सृजन; अनुच्छेद 343 में अंग्रेजी के प्रयोग के लिए 15 वर्ष की अवधि का विस्तार; संसदीय विशेषाधिकारों को परिनिश्चित करना; राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, न्यायाधीशों आदि के वेतन और भत्ते।

विशेष बहुमत द्वारा संशोधन

- इस संशोधन प्रक्रिया में प्रत्येक सदन के सदस्यों की कुल संख्या का बहुमत तथा उस सदन में उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत की आवश्यकता होती है। **प्रथम श्रेणी** (साधारण बहुमत से संशोधित होने वाले उपबंधों) और **तृतीय श्रेणी** (विशेष बहुमत के साथ भारत के आधे राज्यों के विधानमंडलों द्वारा संशोधित होने वाले उपबंधों) में शामिल अनुच्छेदों के अतिरिक्त अन्य सभी अनुच्छेद ऐसे हैं, जिन्हें संसद विशेष बहुमत द्वारा ही संशोधित कर सकती है।

विशेष बहुमत तथा कम से कम आधे राज्य विधान मंडलों की स्वीकृति द्वारा संशोधन

- इस प्रक्रिया के तहत संविधान के कुछ विशिष्ट अनुच्छेद शामिल हैं, जिन्हें संशोधित करने हेतु कठिन प्रक्रिया अपनायी जाती है। इन अनुच्छेदों में संशोधन करने के लिए संसद के विशेष बहुमत के साथ-साथ भारत के कम से कम आधे राज्यों के विधानमंडलों की स्वीकृति आवश्यक होती है। इस श्रेणी में निम्नलिखित अनुच्छेद सम्मिलित हैं:
  - अनुच्छेद 54- राष्ट्रपति का निर्वाचन
  - अनुच्छेद 55- राष्ट्रपति के निर्वाचन की विधि
  - अनुच्छेद 73–संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
  - अनुच्छेद 162- राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार
  - अनुच्छेद 241- संघ राज्य क्षेत्रों के लिए उच्च न्यायालय
  - संघीय न्यायपालिका (भाग-5 अध्याय-4)

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- राज्यों के लिए उच्च न्यायालय (भाग-VI अध्याय-V)
- संघ-राज्य-संबंध (विधायी) (भाग-XI अध्याय-I)
- सातवीं अनुसूची का कोई भी विषय
- संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व
- संविधान-संशोधन से संबंधित अनुच्छेद-368

संविधान संशोधन विधेयक से संबंधित विशेष प्रावधान

- **केवल संसद में प्रारंभ:** ऐसे विधेयक केवल संसद में ही प्रारंभ (प्रस्तुत) किये जा सकते हैं, राज्य विधानसभाओं में नहीं। हालाँकि इन्हें संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है।
- **संयुक्त अधिवेशन नहीं:** ऐसे विधयक पर दोनों सदनों में गतिरोध उत्पन्न होने की स्थिति में राष्ट्रपति द्वारा संयुक्त अधिवेशन नहीं बुलाया जा सकता है।
- **राष्ट्रपति अनुमति देने के लिए बाध्य:** राष्ट्रपति संविधान संशोधन विधेयक पर सहमति देने हेतु बाध्य है। इस हेतु 24वें संविधान (संशोधन) अधिनियम, 1971 के पश्चात् अनुच्छेद 368(2) के अंतर्गत 'अनुमति देगा' वाक्यांश जोड़े गए हैं।
- **संसद की संविधान संशोधन की शक्ति असीम नहीं है :** केशवानंद भारती वाद में संसद की इस शक्ति पर संविधान के आधारभूत ढांचे से संबंधी सीमिततायें आरोपित की गयी है।

लोक सभा में मतदान की प्रणालियां

लोक सभा में मतदान और मत-विभाजन संबंधी प्रक्रिया संविधान के अनुच्छेद 100(1) और लोक सभा के प्रक्रिया और कार्य-संचालन नियमों के नियम 367, 367क, 367कक और 367ख द्वारा संचालित होती है। लोक सभा में मतदान हेतु अपनायी गयी विभिन्न प्रणालियां निम्न हैं:

- **ध्वनिमत:** यह किसी सदस्य द्वारा किए गए प्रस्ताव पर पीठ द्वारा रखे गए प्रश्न पर निर्णय लेने की एक सरल प्रणाली है। इस प्रणाली के अंतर्गत सभा के समक्ष रखे गए प्रश्न का निर्धारण 'हां' या 'नहीं', जैसी भी स्थिति हो, द्वारा किया जाता है।
- **मत-विभाजन:** मत-विभाजन कराने की तीन प्रणालियां हैं, अर्थात (एक) स्वचालित मत अभिलेख यंत्र द्वारा (दो) सभा में 'हां' और 'न' पर्चियां वितरित करके और (तीन) सदस्य द्वारा लॉबी में जाकर। तथापि, जबसे स्वचालित मत अभिलेख यंत्र लगा दिया गया है तबसे लॉबी में जाकर मतदान करने की प्रणाली अप्रचलित हो गयी है।
- **गुप्त मतदान:** गुप्त मतदान, यदि कोई हो, उसी प्रकार किया जाता है, सिवाय इसके कि लैम्प-फील्ड तथा मशीन रूप में बोर्ड पर लगा बल्ब केवल सफेद प्रकाश फेंकता है, जिससे यह प्रकट होता है कि मत अभिलिखित कर लिया गया है।
  - 'प्रकट' मतदान अवधि के दौरान व्यक्तिगत परिणाम को, व्यक्तिगत परिणाम डिसप्ले पैनल पर 'A', 'N' और 'O' तीन विशेषताओं द्वारा दर्शाया जाता है, किंतु गुप्त मतदान के दौरान केवल डाले गए मतों को सफेद प्रकाश में 'P' चिह्न द्वारा दर्शाया जाता है।
- **पर्चियों के वितरण द्वारा मतों का अभिलेखन:** 'हां' या 'नहीं' पर्चियों पर सदस्यों के मतों का अभिलेखन का तरीका सामान्यतया निम्नलिखित परिस्थितियों में अपनाया जाता है:- (एक) स्वचालित मत अभिलेखन यंत्र का संचालन अकस्मात बंद हो जाने के कारण, तथा (दो) नई लोक सभा के आरंभ होने पर, सदस्यों को स्थानों/विभाजन संख्याओ का आवंटन किए जाने से पूर्व।
- **औपचारिक विभाजन की बजाय सदस्यों की उनके स्थानों पर वास्तविक गणना:** यदि पीठासीन अधिकारी की राय में, विभाजन की अनावश्यक मांग की गयी है, तो वह 'हां' तथा 'नहीं' पक्ष वाले सदस्यों से क्रमश: अपने स्थानों पर खड़े होने के लिए कह सकते हैं और गिनती होने के बाद वह सभा के निश्चय की घोषणा कर सकते हैं। ऐसे मामले में सदस्यों के मतदान के विवरण का अभिलेखन नहीं किया जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **निर्णायक मत:** यदि किसी विभाजन में 'हां' तथा 'नहीं' पक्षों के मतों की संख्या समान हो, तो उस का निर्णय पीठासीन अधिकारी के निर्णायक मत द्वारा किया जाता है। संविधान के अंतर्गत, अध्यक्ष अथवा उसके रूप में काम करने वाला व्यक्ति किसी विभाजन में मतदान नहीं कर सकता, उसका केवल निर्णायक मत होता है, जिसका प्रयोग उसे मतों के समान होने पर अनिवार्यत: करना चाहिए।

11. संसद की समितियां

- आधुनिक समय में संसद के कार्य न केवल विविध और जटिल प्रकृति के हैं, बल्कि यह अत्यधिक विस्तृत भी हैं। संसद के पास समय काफी सीमित होता है। अतः यह स्वयं समस्त विधायी उपायों और अन्य मामलों की गहन छानबीन नहीं कर सकती है। इसलिए सदन की समितियों को अधिक मात्रा में कार्य हस्तांतरित किए जाते हैं, जिन्हें संसदीय समितियों के रूप में जाना जाता है। इस प्रकार संसदीय समितियों से तात्पर्य उन समितियों से हैं:
  - जिसकी नियुक्ति या चुनाव सदन द्वारा किया गया हो अथवा अध्यक्ष/सभापति द्वारा इसको नामनिर्दिष्ट किया गया हो।
  - जो अध्यक्ष/सभापति के निर्देशानुसार कार्य करती है।
  - जो अपनी रिपोर्ट सदन को या अध्यक्ष/सभापति को प्रस्तुत करती है।
  - जिसे लोक सभा/राज्य सभा सचिवालय द्वारा सचिवालय की सुविधा प्रदान की गयी हो।

हाल ही में संसदीय समितियां चर्चा का विषय बनी रहीं जिसके निम्नलिखित कारण थे:

- 16वीं लोकसभा के गठन के बाद से संसदीय समितियों द्वारा अब तक केवल 29% विधेयकों की जांच की गई है, जबकि 14वीं व 15वीं लोकसभा द्वारा इसी अवधि में क्रमशः 60% और 70% विधेयकों की जांच की गई थी।
- इससे संसदीय समितियों के घटते महत्व के संबंध में चिंता उत्पन्न होती है। साथ ही, यह चिंता भी रहती है कि विभिन्न विधेयकों के पारित होने से पहले उचित विचार-विमर्श किया जा रहा है या नहीं।

- प्रकृति के आधार पर संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं: स्थायी समितियां और तदर्थ समितियां।
- **स्थायी समितियां**, स्थायी और नियमित होती हैं, जो समय-समय पर संसद के किसी अधिनियम या प्रक्रिया एवं कार्य संचालन नियम के प्रावधानों के अनुसार गठित की जाती हैं। इन समितियों के कार्य निरंतर प्रकृति के होते हैं।
- **तदर्थ समितियां** एक विशिष्ट प्रयोजन के लिए गठित की जाती हैं और यह प्रयोजन समाप्त होते ही तथा रिपोर्ट प्रस्तुत करने के साथ ही समाप्त हो जाता है। तदर्थ समितियों को क्रमशः दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है:
  - **जांच समितियां:** विनिर्दिष्ट विषयों की जांच करने एवं प्रतिवेदन तैयार करने हेतु। उदाहरणतः 2G घोटाले, शेयर बाजार घोटाले पर गठित समिति आदि।
  - **सलाहकार समितियां:** विधेयकों के लिए गठित प्रवर या संयुक्त समितियां, जिनका गठन किसी विशिष्ट विधेयकों पर विचार करने तथा प्रतिवेदन देने हेतु किया जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

संयुक्त संसदीय समिति (Joint Parliamentary Committee: JPC)

- यह एक तदर्थ समिति होती है जो किसी विशेष उद्देश्य एवं सीमित अवधि हेतु गठित होती है। यह मुख्य रूप से राष्ट्रीय स्तर पर सुर्ख़ियों में रहने वाले विवादित मुद्दों/विषयों अथवा सरकार पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने हेतु गठित की जाती है। इसके सदस्यों के बारे में विवरण, शक्तियां, जांच के दायरे आदि का निर्धारण संसद द्वारा किया जाता है।
- ये एक सदन में पारित प्रस्ताव एवं इस पर दूसरे सदन के सहमत होने के पश्चात् ही गठित किए जाते हैं। इसके सदस्यों की संख्या का निर्धारण संसद करती है। सामान्यतया इसमें लोकसभा के सदस्यों की संख्या राज्यसभा के सदस्यों की संख्या की दोगुनी होती है। आजादी के बाद से कई संयुक्त समितियां बनाई गई हैं, इनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:
  - बोफोर्स संविदा पर संयुक्त समिति;
  - प्रतिभूतियों और बैंकिंग लेनदेन में अनियमितताओं की जांच करने के लिए संयुक्त समिति;
  - शेयर बाजार घोटाले पर संयुक्त समिति;
  - शीतल पेय पदार्थों में कीटनाशक अवशेषों और सुरक्षा मानकों पर संयुक्त समिति;
  - 2G स्कैम पर संयुक्त समिति आदि।

11.1. कार्यपालिका पर संसदीय वाचडॉग की तरह कार्य करने वाली कुछ स्थायी समितियां:

- लोक लेखा समिति,
- प्राक्कलन समिति,
- सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति,
- विभाग से संबद्ध स्थायी समितियां आदि।

लोक लेखा समिति

- इस समिति की स्थापना 1921 में भारत सरकार अधिनियम, 1919 के तहत की गई और यह अभी भी विद्यमान है।
- इसमें 22 सदस्य (15 लोकसभा से एवं 7 राज्यसभा से) होते हैं। संसद, प्रत्येक वर्ष अपने सदस्यों के बीच से एकल संक्रमणीय सिद्धांत के आधार पर हस्तांतरणीय मत के माध्यम से इनका चयन करती है। इस तरह इसमें सभी दलों का प्रतिनिधित्व रहता है।
- इसके सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है। किसी मंत्री को इसका सदस्य नहीं चुना जा सकता।
- मुख्य रूप से नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा प्रस्तुत विनियोग लेखों से संबंधित लेखा परीक्षा रिपोर्ट की जांच करना समिति का प्रमुख कार्य है। समिति का मुख्य कर्तव्य यह सुनिश्चित करना भी है कि क्या व्यय किया गया धन सरकार द्वारा "मांग के दायरे के भीतर" संसद द्वारा प्राधिकृत रूप में खर्च किया गया है।
- घाटा, अपव्यय और वित्तीय अनियमितताओं से जुड़े मामलों को प्रकाश में लाने में यह समिति रूचि रखती हैं। हालांकि इस समिति का नीति के प्रश्न से कोई सरोकार नहीं होता। इसका संबंध केवल संसद द्वारा निष्पादित नीति और उसके परिणामों से है। 1966-67 तक समिति का अध्यक्ष सत्तारूढ़ दल से होता था, हालांकि 1967 से यह परंपरा प्रारंभ हो गयी कि समिति का अध्यक्ष विपक्षी दल से चुना जाये।

प्राक्कलन समिति

- तत्कालीन सरकार आर्थिक नीतियां बनाती है और नीतियों को क्रियान्वित करने के लिए संसद के समक्ष मांग प्रस्तुत करती है। सरकार द्वारा प्रस्तावित व्यय की समीक्षा करने के लिए एक प्राक्कलन समिति गठित की जाती है। इसका गठन लोक सभा में बजट प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् होता है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

समिति में दल की भावना की छोड़कर अनौपचारिक वातावरण में काम किया जाता है। लोक सभा की यह समिति प्रकरणों की जांच करके निम्नलिखित के बारे में सुझाव देती है:

- किस प्रकार मितव्ययिता की जा सकती है और संगठन में दक्षता लाने के लिए कौन से सुधार या प्रशासनिक सुधार किए जा सकते हैं जो प्राक्कलनों से संबंधित नीति से संगत हों।
- प्रशासन में दक्षता और मितव्ययिता लाने के लिए वैकल्पिक नीतियों का सुझाव।
- यह जांच करना कि प्राक्कलन में जो नीति निर्धारित की गई है, उसकी सीमाओं में रहते हुए धन ठीक से लगाया गया है।
- प्राक्कलन संसद को किस रूप में प्रस्तुत किए जाएंगे।

- समिति के कृत्यों में सरकारी उपक्रम सम्मिलित नहीं है क्योंकि सरकारी उपक्रमों के लिए एक पृथक समिति है।
- इस समिति का उद्भव 1921 में स्थायी वित्तीय समिति के गठन से देखा जा सकता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद तत्कालीन वित्त मंत्री जॉन मथाई की सिफारिश पर 1950 में ऐसी पहली समिति गठित की गई थी।
- समिति में 30 से अधिक सदस्य नहीं होंगे। सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है। कोई मंत्री समिति का सदस्य निर्वाचित नहीं हो सकता। यदि निर्वाचन के पश्चात् कोई सदस्य मंत्री नियुक्त हो जाता है तो वह समिति का सदस्य नहीं रहेगा।
- सदस्य अधिक से अधिक एक वर्ष के लिए नियुक्त किए जा सकते हैं। समिति के प्रतिवेदन पर सदन में बहस नहीं होगी। समिति वर्ष भर कार्य करती है और अपने विचार सदन के समक्ष रखती है। सरकार की अनुदान की मांगें प्राक्कलन समिति के प्रतिवेदन की प्रतीक्षा नहीं करती। प्राक्कलन समिति उपयोगी सुझाव देती है और आगामी वित्तीय वर्ष में सरकार को बढ़ी-चढ़ी मांग करने से रोकती है।

सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति

- लोक सभा के नियमों में विनिर्दिष्ट सरकारी उपक्रमों (जैसे- दामोदर घाटी निगम, औद्योगिक वित्त निगम, एयर इंडिया, जीवन बीमा निगम, भारतीय खाद्य निगम आदि) के प्रतिवेदन और लेखाओं की जांच करना, इस समिति के प्रमुख कृत्य हैं।
  - समिति ऐसी सरकारी कंपनी के लेखाओं की भी जांच करती है जिसके लेखा कंपनी अधिनियम के अधीन सदन के पटल पर रखे जाते हैं।
- इस समिति के अन्य कृत्य निम्नलिखित हैं:
  - सरकारी उपक्रमों के संबंध में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों की जांच करना।
  - यह देखना कि क्या सरकारी उपक्रम समुचित व्यापारिक सिद्धांतों और विवेकपूर्ण वाणिज्यिक प्रादर्शों के अनुरूप चल रहे हैं या नहीं।
  - ऐसे विषयों की जांच करना जो अध्यक्ष द्वारा समिति को निर्दिष्ट किए जाएं।
- समिति में 22 से अधिक सदस्य नहीं होते। इनमें से 15 सदस्य लोक सभा से (अनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा) और 7 सदस्य राज्य सभा से चुने जाते हैं।
- समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होता है।
- अन्य समितियों के समान इस समिति में भी मंत्री सदस्य नहीं हो सकता। यदि कोई सदस्य मंत्री बन जाता है तो वह सदस्य नहीं रह जाता।

कार्य मंत्रणा समिति

- यह समिति सदन के कार्यक्रम तथा सदन की समय सारणी को नियमित रखती है। यह सदन के समक्ष सरकार द्वारा लाए गए विधायी तथा अन्य कार्यों पर चर्चा हेतु समय आवंटित करती है।
- लोकसभा में समिति में अध्यक्ष सहित 15 सदस्य होते हैं। लोकसभा अध्यक्ष इसके पदेन सभापति होते हैं। राज्यसभा में 11 सदस्य होते हैं तथा राज्यसभा सभापति इसके पदेन अध्यक्ष होते हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

विभागों से संबद्ध संसदीय स्थायी समितियां (Department-related Parliamentary Standing Committees)

- अप्रैल 1993 में, विभागों से संबद्ध संसदीय स्थायी समितियों की एक पूर्णांग प्रणाली अस्तित्व में आई।
- विभागों से संबद्ध संसदीय स्थायी समितियों की संख्या 24 है जिनके क्षेत्राधिकार में भारत सरकार के सभी मंत्रालय/विभाग आते हैं।
- प्रत्येक समिति में 31 सदस्य होते हैं। इसमें 21 सदस्यों को लोक सभा से तथा 10 सदस्यों को राज्य सभा से (जिन्हें क्रमश: लोक सभा के अध्यक्ष तथा राज्य सभा के सभापति द्वारा नाम-निर्दिष्ट किया जाता है) चुना जाता है। इन समितियों का कार्यकाल एक वर्ष से अनधिक होता है। इन 24 समितियों के नाम निम्नलिखित हैं:

राज्यसभा के अंतर्गत आने वाली समितियां	लोकसभा के अंतर्गत आने वाली समितियां
1. वाणिज्य संबंधी समिति 2. गृह कार्य संबंधी समिति 3. मानव संसाधन विकास संबंधी समिति 4. उद्योग संबंधी समिति 5. विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी, पर्यावरण और वन संबंधी समिति 6. परिवहन, पर्यटन और संस्कृति संबंधी समिति 7. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण संबंधी समिति 8. कार्मिक, लोक शिकायत, विधि और न्याय संबंधी समिति	9. कृषि संबंधी समिति 10. सूचना प्रौद्योगिकी संबंधी समिति 11. रक्षा संबंधी समिति 12.ऊर्जा संबंधी समिति 13.विदेशी मामलों संबंधी समिति 14.वित्त संबंधी समिति 15.खाद्य, नागरिक पूर्ति और सार्वजनिक वितरण संबंधी समिति 16.श्रम संबंधी समिति 17.पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस संबंधी समिति 18.रेल संबंधी समिति 19.शहरी विकास संबंधी समिति 20.जल संसाधन संबंधी समिति 21.रसायन और उर्वरक संबंधी समिति 22.ग्रामीण विकास संबंधी समिति 23.कोयला और इस्पात संबंधी समिति 24.सामाजिक न्याय और अधिकारिता संबंधी समिति

- इन 24 समितियों में से 8 समितियां (क्रम सं. 1 से 8) राज्य सभा के अंतर्गत कार्य करती हैं तथा उन्हें राज्य सभा सचिवालय द्वारा सेवा प्रदान किया जाता है तथा 16 समितियां (क्रम सं. 9 से 24) लोक सभा के अंतर्गत कार्य करती हैं तथा उन्हें लोक सभा सचिवालय द्वारा सेवा प्रदान किया जाता है। एक मंत्री, समिति का सदस्य नामांकित किए जाने के पात्र नहीं होता है।
- इन समितियों के सदस्यों का कार्यकाल एक वर्ष होता है। इन समितियों के निम्नलिखित कार्य हैं:
  - संबद्ध मंत्रालय या विभाग के अनुदान मांगों पर विचार करना।
  - राज्य सभा के सभापति या लोकसभा अध्यक्ष द्वारा भेजे गए विधेयकों का निरीक्षण करना, जैसा भी मामला हो।
  - संबद्ध मंत्रालय या विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार करना।
  - दोनों सदनों में प्रस्तुत राष्ट्रीय मूलभूत दीर्घकालीन नीतिगत दस्तावेजों पर विचार करना और उनपर प्रतिवेदन देना।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- ये समितियां मंत्रालयों/विभागों के दिन-प्रतिदिन के प्रशासन से जुड़े मामलों पर विचार नहीं करती हैं।
- ये समितियां कार्यपालिका को दीर्घकालिक राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने एवं व्यापक नीति निर्माण हेतु आवश्यक दिशा-निर्देश, मार्गदर्शन और जानकारी प्रदान करने के मामले में विशेष स्थान रखती हैं।

नोट: राज्य सभा का सभापति कार्य मंत्रणा समिति, सामान्य प्रयोजन समिति और नियम समिति के अध्यक्ष होता है। उपसभापति विशेषाधिकार समिति का अध्यक्ष होता है।

12. संसदीय विशेषाधिकार

- अनुच्छेद 105 संसद और उसके सदस्यों की शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों के बारे में हैं। इसी प्रकार अनु. 194 राज्य विधान मंडलों और उनके सदस्यों की शक्तियों, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों के बारे में है। मूलतः इन अनुच्छेदों के उपअनुच्छेद (3) में इंग्लैंड के हाउस ऑफ़ कॉमन्स के और उसके सदस्यों एवं समितियों के संविधान के प्रारंभ पर विद्यमान विशेषाधिकारों के प्रति निर्देश था। संसद और राज्य विधान मंडलों को वहीं विशेषाधिकार और शक्तियां दी गई थीं जो ब्रिटिश संसद और उसके सदस्यों की थीं। संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम द्वारा ब्रिटिश संसद के प्रति निर्देश हटा दिया गया। इन्हीं अनुच्छेदों द्वारा अर्थात् अनु. 105(3) और 194(3) द्वारा संसद और राज्य विधान मंडलों को यह शक्ति दी गई कि वे अपनी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां परिनिश्चित करें।
- ऐतिहासिक दृष्टि से यदि कोई व्यक्ति यह जानना चाहता है कि 26 जनवरी 1950 के तुरंत पश्चात् संसद की क्या शक्तियां और विशेषाधिकार थे तो उसे यह पता करना होगा कि उस तारीख को ब्रिटिश संसद की क्या शक्तियां और विशेषाधिकार थे। अनुच्छेद 105(3) में संसद को यह सुझाव दिया गया है कि वह सदनों की शक्तियों, विशेषाधिकारों और उन्मुक्तियों को परिनिश्चित करने वाली विधि बनाए। यदि ऐसी विधि निर्मित की जाती है तो शक्तियां और विशेषाधिकार क्या हैं, यह उस अधिनियम को पढ़कर सरलता से ज्ञात हो सकेगा। अभी तक न तो संसद ने और न 28 राज्य विधान मंडलों में से किसी ने अपनी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियों को संहिताबद्ध किया है।

विशेषाधिकारों का वर्गीकरण

संसद के दोनों सदनों की शक्तियों और विशेषाधिकारों का वर्गीकरण को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है:

- वे जो सामूहिक रूप से सदनों के हैं।
- वे जो व्यक्तिगत रूप से सदस्यों के हैं।

12.1. सामूहिक विशेषाधिकार

संसद के दोनों सदनों के सामूहिक विशेषाधिकार निम्नलिखित हैं:

- इसे सदन में होने वाली सभी बहस और कार्यवाही के प्रकाशन पर नियंत्रण का अधिकार का है। 44वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1978 ने सदन की पूर्व अनुमति के बिना संसद की कार्यवाही की सही रिपोर्ट के प्रकाशन की प्रेस की स्वतंत्रता को पुनर्स्थापित किया। किन्तु यह सदन की गुप्त बैठकों के मामले में लागू नहीं होता है।
- इसे सदन की कार्यवाही से दूसरों को बाहर करने का अधिकार है। कार्यवाही के नियमों के तहत, लोकसभा अध्यक्ष और सभापति को सदन से किसी अन्य को बाहर करने का अधिकार है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- इसे सदन के आंतरिक मामलों को विनियमित करने का और सदन के भीतर उत्पन्न होने वाले मामलों के निर्णयन का अधिकार है। संसद के भीतर क्या कहा गया और क्या किया गया, इस पर किसी भी न्यायालय में प्रश्न नहीं उठाया जा सकता है।
- सदस्यों के साथ-साथ बाहरी लोगों को भी इसके विशेषाधिकार के हनन के मामले में दण्डित करने का अधिकार है।
- सदन के परिसर के भीतर पीठासीन अधिकारी के बिना अनुमति के किसी व्यक्ति को न ही गिरफ्तार किया जा सकता है और न ही कोई कानूनी कार्यवाही की जा सकती है।

12.2. व्यक्तिगत विशेषाधिकार

इन विशेषाधिकारों को संसद सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से प्रयोग किया जाता है। ये निम्नलिखित हैं:

- **सिविल गिरफ्तारी से मुक्ति:** संसद सदस्यों को संसद की कार्यवाही के दौरान, कार्यवाही चलने से 40 दिन पूर्व तथा 40 दिन बाद तक गिरफ्तार नहीं किया जा सकता है। यह अधिकार केवल दीवानी मामलों में उपलब्ध हैं तथा आपराधिक तथा प्रतिबंधात्मक निषेध मामलों में नहीं।
- **गवाह के रूप में उपस्थिति से स्वतंत्रता:** संसद सदस्यों को संसद के सत्र के दौरान किसी न्यायालय में लंबित मुकदमे में प्रमाण प्रस्तुत करने या उपस्थिति होने से मना करने का अधिकार प्राप्त है।
- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता:** कोई सदस्य संसद या इसकी समिति में दिए गए वक्तव्य या मत के लिए किसी भी न्यायालय की किसी भी कार्यवाही के लिए जिम्मेदार नहीं है। यह स्वतंत्रता हालांकि, सदन के द्वारा बनाये गए क़ानून एवं स्थायी आदेश के संचालन से संबंधित है। इसके अलावा संविधान एक और प्रतिबंध आरोपित करता है अर्थात् संसद में उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश (जब किसी न्यायाधीश को हटाने का प्रस्ताव विचाराधीन हो, को छोड़कर) के कर्तव्यों के निर्वहन में आचरण के संबंध में कोई चर्चा नहीं की जाएगी।

12.3. विशेषाधिकारों का हनन एवं सदन की अवमानना

- सांसदों / संसद की अवमानना ही विशेषाधिकार का उल्लंघन है। अन्य बातों के अलावा, सांसदों, संसद या इसकी समितियों पर कोई भी असद्भावपूर्ण कारवाई को विशेषाधिकारों का उल्लंघन समझा जाएगा। इसमें समाचार, सम्पादकीय, या अखबार / पत्रिका / टीवी साक्षात्कार आदि के माध्यम से किए गए अविवेकपूर्ण प्रकाशन शामिल हो सकते हैं।
- सदन की अवमानना को सामान्यतया इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है, "संसद के किसी भी सदन की कार्यवाही में या इसके किसी सदस्य या अधिकारी के अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में बाधा उत्पन्न करना ही सदन की अवमानना कहलाता है।
- विशेषाधिकार के सभी उल्लंघन सदन की अवमानना के तहत आते हैं। कोई व्यक्ति सदन की अवमानना का दोषी हो सकता है यद्यपि उसने सदन के किसी भी विशेषाधिकार का उल्लंघन न किया हो; उदाहरण के लिए जब वह सदन के किसी समिति के सामने उपस्थित होने के निर्णय की अवहेलना करता हो या सदन के किसी सदस्य के आचरण पर कोई लेख प्रकाशित करता हो।

12.4. सदन की अवमानना या विशेषाधिकार के उल्लंघन के मामले में सजा

सदन दोषी व्यक्ति को उपस्थित होने का आदेश दे सकता है। सजा के रूप में चेतावनी, फटकार या कारावास दिया जा सकता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

संसदीय मंच

संसदीय मंच ऐसे संसद सदस्यों का एक समूह होता है जो संबंधित विषय में विशेष जानकारी/गहरी रूचि रखने वाले विभिन्न राजनीतिक दलों/समूहों के नेताओं अथवा उनके द्वारा नामित व्यक्तियों के बीच से लोक सभा के अध्यक्ष और राज्य सभा के सभापति, जैसा भी मामला हो, द्वारा नाम-निर्देशित किए जाते हैं। प्रत्येक मंच में 31 से अनधिक सदस्य होते हैं (अध्यक्ष और पदेन उपाध्यक्षों को छोड़कर) जिनमें से 21 से अनधिक सदस्य लोक सभा से और 10 से अनधिक सदस्य राज्य सभा से होते हैं। वर्तमान में, लोक सभा के आठ संसदीय मंच है, अर्थात्

- जल संरक्षण और प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच;
- बच्चों संबंधी संसदीय मंच;
- युवाओं संबंधी संसदीय मंच;
- जनसंख्या और जन-स्वास्थ्य संबंधी संसदीय मंच;
- वैश्विक तापवर्धन और जलवायु परिवर्तन संबंधी संसदीय मंच;
- आपदा प्रबंधन संबंधी संसदीय मंच;
- शिल्पकारों और कारीगरों संबंधी संसदीय मंच और
- सहस्राब्दी विकास लक्ष्यों (अब सतत विकास लक्ष्य) संबंधी संसदीय मंच।

13. राज्यसभा की भूमिका

- **पुनरीक्षण सदन के रूप में:** पुनरीक्षण सदन के रूप में राज्यसभा की विशेष भूमिका होती है। हालांकि पुनरीक्षण बहुत कम बार किये गए हैं, तथापि पुनरीक्षण की संभावना सदैव बनी रहती है। हमारी संसदीय प्रणाली में, राज्यसभा को विधान पर विचार विमर्श करने तथा उसे स्थगित करने का अधिकार प्राप्त है परन्तु अनुचित ढंग से अवरोध उत्पन्न करने या समाप्त करने का नहीं। द्वितीय सदन के रूप में, यह जल्दबाजी में बनाए गए विधान पर गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए अधिकृत है।
- **संघीय सदन के रूप में:** राज्यसभा की एक अन्य महत्वपूर्ण भूमिका, संघीय विधानमंडल में राज्यों को प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता से निर्देशित थी। राज्यसभा एक संघीय सदन है, जहां प्रत्येक राज्य के प्रतिनिधि, राज्य विधानसभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। संघीय सदन के रूप में, राज्यसभा को संघीय हितों को प्रभावित करने वाली कुछ विशेष शक्तियां सौंपी गयी हैं। राज्यसभा, राज्यों की आकांक्षाओं के प्रति सदैव संवेदनशील और हितबद्ध रहती है। इस प्रक्रिया में, यह देश के संघीय ढांचे को मजबूत बनाती है और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देती है।
- **विचारशील सदन के रूप में**: एक विचारशील सदन के रूप में राज्यसभा की प्रमुख भूमिका, राज्यसभा के 12 सदस्यों का साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा में उनके योगदान के आधार पर नामांकन के प्रावधान से सुदृढ़ होती है। सदन में विचार-विमर्श और चर्चा की प्रमुख परंपराओं ने राज्य सभा के सदस्यों को न केवल जनता के मुद्दों पर प्रभावशाली विचार-विमर्श आयोजित करने के लिए, बल्कि कार्यवाही को जनता के कल्याण के लिए प्रासंगिक बनाने का प्रयास करने के लिए भी पथप्रदर्शन किया है।
- **निरंतर चलने वाले सदन के रूप में**: राज्यसभा एक स्थायी सदन है, इसका विघटन नहीं होता है तथा इसके सदस्यों में से एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक दूसरे वर्ष सेवानिवृत होते है। राज्यसभा एक अनवरत सदन के रूप में निरंतरता के सिद्धांत का अनुपालन करती है। चूंकि राज्य सभा एक स्थायी सदन है, अत: लोकसभा का विघटन होने पर राज्यसभा द्वारा आरंभ एवं उसके समक्ष लंबित विधेयकों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इस प्रकार, राज्यसभा की निरंतरता, विधायी निरंतरता का एक महत्वपूर्ण उपाय सुनिश्चित करती है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **सरकार के गठन से असंबद्ध सदन**: मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। एक परोक्ष रूप से निर्वाचित सदन होने के कारण राज्यसभा की सरकार के गठन या विघटन में कोई भूमिका नहीं होती है। चूंकि इस सदन की सरकारों के गठन में कोई भूमिका नहीं होती है तथा सरकार, राज्य सभा की संख्यात्मक ताकत के आधार पर विघटित भी नहीं होती हैं, अत: यह सदन प्रतिस्पर्धी दलगत राजनीति की बाध्यताओं से अपेक्षाकृत मुक्त होता है। कुछ विशेषज्ञों का तर्क है कि यदि राज्यसभा सरकार नहीं गिरा सकती है, तो राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में उसकी भूमिका सीमित है। परन्तु, कई विद्वान यह मानते हैं कि संसद के किसी सदन की भूमिका सरकार गिराने मात्र में ही सीमित नहीं है, इसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका राष्ट्रीय मुद्दों पर बहस के लिए एक जीवंत योगदानकर्ता के रूप में है। राज्यसभा ने राष्ट्रीय बहस में योगदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **प्रभावी लघु सदन के रूप में**: संख्याबल के मामले में राज्यसभा, लोकसभा की तुलना में अपेक्षाकृत लघु सदन है। लघु सदन होने के कारण, यह सदस्यों के मध्य घनिष्ट सौहार्द और अधिक से अधिक आम सहमति के निर्माण हेतु अवसर प्रदान करता है। सभी दलों के सदस्यों के बीच सामंजस्य और समायोजन की भावना, इस सदन की प्रभावशीलता में योगदान करती है।
- **कार्यकारी जवाबदेहिता प्राप्त करने वाले सदन के रूप में**: संसद के एक मूल अंग के रूप राज्यसभा ने इसकी विभिन्न समितियों के माध्यम से कार्यकारी जवाबदेही प्राप्त की है। वर्तमान में, संसद में विभाग से संबंधित 24 संसदीय स्थायी समितियां हैं, जिसमें से 8 राज्यसभा के सभापति के दिशानिर्देश और नियंत्रण के अधीन कार्य करते हैं। ऐसी समितियों द्वारा की गई रचनात्मक आलोचना एवं सुविचारित अनुसंशाओं व सिफारिशों को मंत्रालयों एवं विभागों को उनकी कार्यपद्धति को बेहतर बनाने और लोगों के कल्याण हेतु यथार्थवादी बजट, योजनाओं और कार्यक्रमों को तैयार करने के संबंध में उपयोगी पाया गया है।
- **लोक शिकायतों को प्रस्तुत करने वाले सदन के रूप में**: राज्यसभा, विभिन्न राज्यों द्वारा सामना की जा रही समस्याओं का दर्शाने वाला एक मंच है। राज्यों के प्रतिनिधियों के रूप में इसके सदस्य, अपने से संबद्ध राज्यों और वहां की जनता की समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। पूर्णतया स्थापित प्रक्रियात्मक उपायों यथा प्रश्नों, ध्यानाकर्षण, विशेष उल्लेख, अल्पकालिक चर्चा, आधे घंटे की चर्चा, प्रस्तावों, संकल्पों, आदि के माध्यम से यह सार्वजनिक महत्व के विषयों एवं सरकार की नीतियों को प्रभावित करने वाले मामलों पर ध्यान केंद्रित करने वाले मुद्दे उठाती है तथा जनता की शिकायतों को प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करती है।

13.1. राज्यसभा में राज्यों के प्रतिनिधित्व की समानता

अमेरिकी सीनेट में, जहां प्रत्येक राज्य को 2 सीटें आवंटित हैं, के विपरीत भारतीय संसद के उच्च सदन (राज्यसभा) में विभिन्न राज्यों का प्रतिनिधित्व असमान है। सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व देकर राज्यसभा में सुधार का सुझाव दिया गया है। इस सुझाव के सकारात्मक और नकारात्मक पक्ष निम्नलिखित हैं:

सकारात्मक पक्ष

- यदि सभी राज्यों का समान प्रतिनिधित्व होगा, तो सभी राज्यों के हितों को संसद में समान रूप से प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा। इस प्रकार, यह हमारी राजव्यवस्था को और अधिक संघीय स्वरुप प्रदान करेगा। वास्तव में संविधान सभा के कुछ सदस्यों (के.टी. शाह, लक्ष्मी नारायण साहू और लोकनाथ मिश्रा) ने इसका सुझाव दिया था।
- छोटे राज्य तब इस बात का आरोप नहीं लगायेंगे कि बड़े राज्य राज्यसभा में हावी रहते हैं।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

नकारात्मक पक्ष

- राज्य सभा के सदस्य किसी राज्य के हित के अनुसार मतदान नहीं करते, अपितु पार्टी लाइन के अनुसार मतदान करते हैं। इस प्रकार यह आरोप वास्तव में सच नहीं है कि राज्यसभा में एक राज्य, अन्य राज्य पर हावी होता है।
- फिर भी यदि सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व दे भी दिया जाता है, तो यह संदिग्ध ही है कि राज्यसभा के सदस्य राज्यों के हितों का ही प्रतिनिधित्व करेंगे, पार्टी के हितों का नहीं।
- भारत के राज्यों में उनके आकार और आबादी में काफी भिन्नता है। यह बहस का मुद्दा है कि उन सभी को बराबर प्रतिनिधित्व देना, क्या एक सही कदम होगा।

13.2. राज्यसभा की लोकसभा से तुलना

13.2.1 लोकसभा के संबंध में समान शक्तियाँ

संविधान ने कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों के सन्दर्भ में संसद के दोनों सदनों को समान अधिकार प्रदान किये हैं। ये विषय निम्नलिखित हैं:

- इसे राष्ट्रपति के चुनाव एवं उसके महाभियोग के सन्दर्भ में लोकसभा के समान अधिकार (अनुच्छेद 54 और 61) प्राप्त हैं।
- उपराष्ट्रपति के चुनाव के मामले में भी इसे लोकसभा के समान अधिकार (अनुच्छेद 66) प्राप्त हैं।
- संसदीय विशेषाधिकारों को परिभाषित करने वाले तथा अवमानना के लिए दण्डित करने वाले क़ानून बनाने के सन्दर्भ में इसे लोक सभा के समान अधिकार (अनुच्छेद 105) प्राप्त हैं।
- आपातकाल की उद्घोषणा की स्वीकृति (अनुच्छेद 352) तथा राज्यों में संवैधानिक तंत्र की विफलता की उद्घोषणा के सन्दर्भ में (अनुच्छेद 356) भी इसे लोकसभा के समान अधिकार प्राप्त हैं।
- उच्चतम न्यायालय और संघ लोक सेवा आयोग के अधिकार क्षेत्र में विस्तार के संबंध में।
- राष्ट्रपति द्वारा जारी किए गए अध्यादेश की स्वीकृति।
- निम्नलिखित विभिन्न प्राधिकरणों से रिपोर्ट और दस्तावेज़ प्राप्त करने के मामले में इसे लोकसभा के समान अधिकार प्राप्त हैं:
  - भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट;
  - संघ लोक सेवा आयोग की रिपोर्ट;
  - अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए नियुक्त विशेष अधिकारी की रिपोर्ट;
  - पिछड़े वर्गों की दशा की जांच के लिए गठित आयोग की रिपोर्ट;
  - भाषाई अल्पसंख्यकों के लिए नियुक्त विशेष अधिकारी की रिपोर्ट, आदि।

13.2.2 लोकसभा के साथ असमान स्थिति

- धन विधेयक को केवल लोकसभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है, राज्य सभा में नहीं।
- राज्यसभा, धन विधेयक को अस्वीकृत या संशोधित नहीं कर सकती। उसे इस विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ या सिफारिशों के बिना ही 14 दिन के भीतर लोकसभा को लौटाना अनिवार्य होता है। लोकसभा, राज्यसभा की सिफारिशों को स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। दोनों मामलों में इसे दोनों सदनों द्वारा पारित माना जाएगा।
- वित्त विधेयक (1) को सिर्फ लोकसभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है, हालांकि इसे पारित करने के मामलों में दोनों की शक्तियां समान हैं।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

- कोई विधेयक धन विधेयक है या नहीं, यह प्रमाणित करने की अंतिम शक्ति लोकसभा अध्यक्ष के पास है।
  - दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता लोक सभा का अध्यक्ष करता है।
  - सामान्य स्थितियों में संयुक्त बैठक में ज्यादा सदस्य संख्या होने के कारण लोकसभा को विजय प्राप्त होती है। बशर्ते सत्तारूढ़ पार्टी के सदस्यों की संयुक्त संख्या दोनों सदनों में विपक्ष की संयुक्त संख्या से कम न हो।
  - राज्यसभा केवल बजट पर चर्चा कर सकती है, उसके अनुदानों की मांगों पर मतदान नहीं करती।
  - राष्ट्रीय आपातकाल की समाप्ति के लिए संकल्प को लोकसभा द्वारा ही पारित कराया जा सकता है, राज्यसभा द्वारा नहीं।
  - राज्यसभा अविश्वास प्रस्ताव पारित कर मंत्रिपरिषद् को नहीं हटा सकती। इसका कारण यह है कि मंत्रिपरिषद् सामूहिक रूप से केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। हालाँकि राज्य सभा सरकार की नीतियों एवं कार्यों पर चर्चा और आलोचना कर सकती है।

13.2.3 राज्य सभा की विशेष शक्तियां

संविधान में भारत के संघीय ढाँचे को ध्यान में रखते हुए राज्य सभा को कुछ विशिष्ट शक्तियां सौंपी गयी हैं। इस तरह की शक्तियां लोकसभा के समक्ष उच्च सदन के रूप में इसकी प्रस्थिति को बल प्रदान करती हैं।

- **राज्य के मामलों पर कानून:** संविधान का अनुच्छेद 249 यह प्रावधान करता है कि यदि राज्य सभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में यह आवश्यक या समीचीन है कि संसद राज्य सूची में प्रगणित ऐसे विषय के संबंध में ,जो उस संकल्प में विनिर्दिष्ट है, विधि बनाए तो जब तक वह संकल्प प्रवृत्त है संसद के लिए उस विषय के संबंध में भारत के सम्पूर्ण राज्यक्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बनाना विधिपूर्ण होगा।
  - अगर इस तरह का कोई प्रस्ताव स्वीकृत होता है तो संसद पूरे या भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भाग के लिए इस संकल्प में विनिर्दिष्ट विषय पर कानून बनाने के लिए अधिकृत होगी।
  - इस तरह से पारित संकल्प एक वर्ष से अनधिक ऐसी अवधि के लिए प्रवृत्त रहेगा जो उसमें विनिर्दिष्ट की जाए। किन्तु, इसके आगे प्रस्ताव पारित करके एक समय में एक वर्ष के लिए इस अवधि को बढ़ाया जा सकता है।
- **अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन:** अनुच्छेद 312 में राज्य सभा को एक और विशिष्ट शक्ति दी गयी है कि यदि राज्य सभा ने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों में से कम से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा यह घोषित किया है कि राष्ट्रीय हित में ऐसा करना आवश्यक या समीचीन है तो संसद, विधि द्वारा संघ और राज्यों के लिए सम्मिलित एक या अधिक अखिल भारतीय सेवाओं के सृजन के लिए उपबंध कर सकेगी।
- **उद्घोषणा का अनुमोदन:** राज्यसभा की एक और विशेष शक्ति आपातकाल की घोषणा से संबंधित है। अनुच्छेद 352 के खंड(4) के नियम/परंतुक के अनुसार, अन्य बातों के साथ-साथ, यदि आपातकाल की उद्घोषणा उस समय जारी की जाती है जब लोकसभा का विघटन हो गया हो और उद्घोषणा का अनुमोदन करने वाला संकल्प राज्य सभा द्वारा पारित कर दिया गया है तो उद्घोषणा उस तिथि से, जब लोकसभा अपने पुनर्गठन के पश्चात् प्रथम बार बैठती है, अधिकतम 30 दिनों की अवधि तक ही प्रभावी रहेगी। अतः यह प्रावधान यह परामर्श देता हुआ प्रतीत होता है कि ऐसा अवसर आ सकता है जब राज्य सभा का सत्र आहूत किया गया हो किन्तु लोकसभा का विघटन हो चुका हो। संविधान के अनुच्छेद 356(3), जो राष्ट्रपति द्वारा राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता की दशा में राज्य आपातकाल की उद्घोषणा से सम्बंधित है, में भी कुछ ऐसी ही शर्त रखी गयी है।

VISION IAS

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

राज्यसभा एवं लोकसभा : एक तुलना

राज्यसभा	लोकसभा
राज्यसभा संसद का उच्च सदन अथवा द्वितीय सदन है। इसे वरिष्ठ सदन भी कहा जाता है।	लोकसभा संसद का निम्न सदन अथवा प्रथम सदन है। इसे लोकप्रिय सदन भी कहा जाता है।
राज्यसभा में अधिकतम 250 सदस्य हो सकते हैं, परंतु वर्तमान में सदस्यों की संख्या 245 (233 सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित एवं 12 मनोनीत सदस्य) है।	लोकसभा में अधिकतम 552 सदस्य हो सकते हैं, परन्तु वर्तमान में सदस्यों की संख्या 545 (543 सदस्य प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित एवं 2 मनोनीत सदस्य) है।
राज्यसभा में सभी राज्यों को समान प्रतिनिधित्व प्रदान नहीं किया गया है। यह राज्यों एवं संघीय क्षेत्रों का प्रतिनिधित्व करती है।	यह समस्त जनता का प्रतिनिधित्व करती है।
राष्ट्रपति द्वारा 12 सदस्यों को मनोनीत किया जाता है।	राष्ट्रपति द्वारा आंग्ल-भारतीय समुदाय के 2 सदस्यों को मनोनीत किया जाता है।
राज्यसभा एक स्थायी सदन है, जिसका विघटन नहीं किया जा सकता। इसके सदस्यों का कार्यकाल 6 वर्षों का होता है। प्रत्येक दो वर्ष बाद एक-तिहाई सदस्य अवकाश ग्रहण कर लेते हैं तथा उतने ही नवनिर्वाचित भी हो जाते हैं।	लोकसभा स्थायी सदन नहीं है तथा इसका कार्यकाल पांच वर्षों का होता है; कार्यकाल पूर्ण होने के पहले भी राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की सलाह पर इसे भंग किया जा सकता है।
राज्यों के प्रतिनिधि राज्य की विधानसभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा चुने जाते हैं।	लोकसभा के सदस्यों का चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष रूप से गुप्त मतदान प्रक्रिया द्वारा होता है।
धन विधेयक राज्यसभा में पुरःस्थापित नहीं किए जा सकते।	धन विधेयक केवल लोकसभा में पुरःस्थापित किए जा सकते हैं।
मंत्रिपरिषद् राज्य सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है।	मंत्रिपरिषद् केवल लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है।
राज्यसभा द्वारा राज्य सूची के किसी विषय को राज्यसभा में उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के कम-से कम दो-तिहाई सदस्यों द्वारा समर्थित संकल्प द्वारा राष्ट्रीय महत्व का घोषित किया जा सकता है।	लोकसभा को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।
राज्यसभा को अखिल भारतीय सेवाओं का सृजन करने का अधिकार प्रदान किया गया है।	लोकसभा को यह अधिकार प्राप्त नहीं है।
उपराष्ट्रपति को हटाने हेतु प्रस्ताव का आरम्भ राज्यसभा में ही किया जाता है।	लोकसभा, राज्यसभा द्वारा पारित प्रस्ताव का अनुमोदन कर सकती है।
लोकसभा के भंग होने की स्थिति में आपातकाल की उद्घोषणा का अनुमोदन राज्यसभा द्वारा किया जा सकता है।	लोकसभा को इस प्रकार के विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि राज्यसभा विघटित नहीं होती है।
राज्यसभा का सभापति इसका सदस्य नहीं होता। भारत का उपराष्ट्रपति ही इसका पदेन सभापति होता है। उपसभापति राज्यसभा का सदस्य होता है, जिसका निर्वाचन सदस्यों द्वारा किया जाता है।	लोकसभा के अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष, इसके सदस्य होते हैं तथा इनका निर्वाचन सदस्यों द्वारा किया जाता है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

14. संसद की संप्रभुता

- संसद की संप्रभुता का सिद्धांत ब्रिटिश संसद के साथ संबद्ध है। संसदीय संप्रभुता (इसे संसदीय सर्वोच्चता या विधायी सर्वोच्चता भी कहा जाता है) वस्तुतः कुछ संसदीय लोकतांत्रिक देशों के संविधान में निहित एक अवधारणा है। इसके अनुसार विधायी निकाय को पूर्ण संप्रभुता प्राप्त है तथा यह कार्यपालिका एवं न्यायपालिका समेत सरकार के अन्य संस्थानों की तुलना में यह सर्वोच्च होता है। ब्रिटिश संसद की अधिकारिता एवं न्यायाधिकार क्षेत्र पर कोई विधिक प्रतिबन्ध नहीं है। वहीं दूसरी ओर भारतीय संसद को इन प्रतिमानों के आधार पर एक संप्रभु निकाय नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि इसकी अधिकारिता एवं न्यायाधिकार क्षेत्र पर कई विधिक प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। भारतीय संसद की सर्वोच्चता को सीमित करने वाले कुछ प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:
  - **लिखित संविधान:** संविधान हमारे देश का सर्वोच्च मौलिक कानून है। संसद संविधान में निर्धारित सीमा के भीतर काम करने हेतु बाध्य है।
  - **सरकार का संघीय ढाँचा:** भारत में सरकार का संघीय ढांचा प्रचलित है, जिसके तहत संवैधानिक रूप से केंद्र और राज्यों के मध्य शक्तियों का विभाजन किया गया है। केंद्र एवं राज्य दोनों को अपने-अपने कार्यक्षेत्र के भीतर रहकर कार्य करना होता है। अतः संसद की विधि निर्माण की शक्ति संघीय सूची एवं समवर्ती सूची में वर्णित विषयों तक सीमित रहती है तथा राज्य सूची में वर्णित विषयों तक विस्तारित नहीं होती। इसका अपवाद केवल कुछ विशिष्ट परिस्थितियां हैं।
  - **न्यायिक समीक्षा का तंत्र:** एक स्वतंत्र न्यायपालिका के गठन तथा न्यायिक समीक्षा की प्रणाली ने भी संसद की सर्वोच्चता को सीमित किया है। संसद द्वारा पारित कोई भी ऐसा कानून जो संविधान के किसी प्रावधान का विशेष रूप से मूल ढांचे का उल्लंघन करता है, उसे उच्च न्यायालय एवं उच्चतम न्यायालय द्वारा शून्य अथवा असंवैधानिक घोषित किया जा सकता है।
  - **मूल अधिकार :** संविधान के भाग 3 के तहत प्रदत्त न्यायोचित मूल अधिकारों की व्यवस्था भी संसद के प्राधिकार पर निर्बंधन आरोपित करती है। अनुच्छेद 13 संसद को कोई भी ऐसा कानून बनाने से रोकता है जो किसी मूल अधिकार के किसी अंश या सम्पूर्ण अधिकार को छीनने का प्रावधान करता हो। अतः मूल अधिकारों का उल्लंघन करने वाला कोई भी संसदीय कानून शून्य घोषित किया जा सकता है।

15. संसद के कार्य तथा इसकी भूमिका

हमारे संविधान में सरकार की संसदीय प्रणाली को अपनाया गया है। यह प्रणाली राज्य के विधायी एवं कार्यपालक अंगों का विशिष्ट सम्मिश्रण है। अतः संसद के कार्यों पर चर्चा करते हुए इस आयाम पर ध्यान देना आवश्यक है। संसद के कुछ प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:

- **कार्यपालिका पर नियंत्रण:** संसद का एक महत्त्वपूर्ण कार्य मंत्रिपरिषद् को इसके कार्यों के करने या न करने के लिए उत्तरदायी ठहराकर उसपर नियंत्रण बनाये रखना है। अनुच्छेद 75(3) स्पष्ट रूप से कहता है कि मंत्रिपरिषद् केवल तबतक अस्तित्व में होगी जबतक उसे लोकसभा का विश्वास प्राप्त है। संसद के सदस्य मंत्रियों से प्रश्न पूछकर, स्थगन प्रस्ताव, कटौती प्रस्ताव तथा निंदा प्रस्ताव लाकर अथवा वाद-विवाद द्वारा मंत्रिपरिषद् पर संसद का नियंत्रण सुनिश्चित करते हैं। यहाँ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि लोकसभा, मंत्रिपरिषद् के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव ला सकती है जिसके पारित हो जाने की स्थिति में इसे अनिवार्यतः त्यागपत्र देना होता ह। अतः संसद मंत्रियों पर व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से नियंत्रण रखती है तथा इसका एक महत्वपूर्ण कार्य जवाबदेह एवं उत्तरदायी सरकार सुनिश्चित करना है।
- **विधि निर्माण:** विधि बनाना किसी भी विधायिका का मुख्य कार्य है। भारतीय संसद संघ सूची तथा समवर्ती सूची में शामिल समस्त विषयों पर कानून बनाती है। इसके साथ ही, कुछ विशेष स्थितियों में यह राज्य सूची के विषयों पर भी कानून बना सकती है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- **वित्त पर नियंत्रण:** भारतीय संविधान ने संसद (मुख्यतः लोकसभा) को राष्ट्रीय वित्त के नियंत्रण हेतु विशिष्ट शक्तियां सौंपी है।
  - देश की कार्यपालिका या सरकार के पास बिना संसद की मंजूरी के धन व्यय करने का अधिकार नहीं है। इस हेतु प्रत्येक वर्ष वित्त मंत्री द्वारा लोकसभा में इसकी मंजूरी के लिए बजट प्रस्तुत किया जाता है।
  - इसके साथ ही, संसद की दो अतिमहत्त्वपूर्ण समितियां लोक लेखा समिति एवं प्राक्कलन समिति तथा नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, व्यय की वैधता की जांच करते हैं और संसद में चर्चा के लिए रिपोर्ट प्रस्तुत करते हैं।
  - हालाँकि यह ध्यान देने योग्य है कि राष्ट्रीय वित्त के नियंत्रण की शक्ति विशिष्टतः लोकसभा को सौंपी गयी हैं। राज्यसभा की इसमें कोई विशेष भूमिका नहीं रहती। एक धन विधेयक सिर्फ लोकसभा में पुरःस्थापित किया जा सकता है। लोकसभा में पारित होने के बाद इसे राज्यसभा में भेज दिया जाता है जिसके लिए 14 दिनों के भीतर अपनी सलाहों के साथ या उनके बिना इसे वापस करना अनिवार्य है।
- **विचार-विमर्श:** सभी महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक नीतियों पर संसद में चर्चा की जाती है। यह निसंदेह लोगों के मध्य राजनीतिक जागरूकता बढ़ाने में सहायक है। .
- **संवैधानिक कार्य:** संसद संविधान में निहित एकमात्र निकाय है जो संविधान में संशोधन के लिए प्रक्रिया प्रारंभ कर सकती है। संविधान में संशोधन का कोई भी प्रस्ताव संसद के किसी भी सदन में लाया जा सकता है।
- **निर्वाचन कार्य:** संसद विभिन्न निर्वाचनों को भी संपादित करती है। यह भारत के राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के चुनाव में भाग लेती है तथा अपने विभिन्न समितियों के सदस्यों, पीठासीन अधिकारियों आदि का चुनाव करती है।
- **न्यायिक कार्य:** संसद द्वारा कुछ न्यायिक प्रकृत्ति के कार्यों को भी संपादित किया जाता है। इसे राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों, संघ लोक सेवा आयोग तथा राज्य लोक सेवा आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों तथा नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक को पद से हटाने की शक्ति प्राप्त है। यह अपनी अवमानना के लिए अपने सदस्यों और अधिकारियों को दंडित कर सकती है। यह शक्ति न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं है।

संसद की दक्षता को बढ़ाना

16.1. भारतीय संसद से संबंधित विभिन्न मुद्दे

- **बैठकों की कम संख्या:** 1950 के दशक में संसदीय बैठकों की संख्या एक वर्ष में लगभग 140 दिन थी, जो पिछले पांच वर्षों में घटकर प्रतिवर्ष औसतन 65 दिन हो गयी है।
- **अनुशासन और शिष्टाचार:** रुकावट और व्यवधान के कारण कभी-कभी सदन की कार्यवाही को स्थगित करना पड़ता है। इससे न केवल सदन के समय की बर्बादी होती है, बल्कि संसद के महत्वपूर्ण उद्देश्य भी प्रभावित होते हैं। यह प्रवृत्ति अब पहले से अधिक देखी जा रही है।
- **गुणवत्ताविहीन संसदीय बहस :** पूर्व में संसदीय बहस सामान्यतया राष्ट्रीय और महत्वपूर्ण मुद्दों पर केंद्रित हुआ करती थी। अब बहसें स्थानीय समस्याओं के बारे में अधिक होती हैं एवं अक्सर संकीर्ण दृष्टिकोण से प्रेरित होती हैं।
- **महिलाओं की निम्न भागीदारी:** लोकसभा और राज्यसभा में महिला सांसदों की भागीदारी अत्यल्प रही है (सामान्यतया 12% से अधिक नहीं)।
- विधेयक को चर्चा के बिना या न्यूनतम चर्चा के और ध्वनि मत द्वारा पारित करने की परंपरा में वृद्धि हुई है। साथ ही, निजी सदस्यों के द्वारा प्रस्तुत विधेयकों के पारित न होने की प्रवृत्ति में भी सुधार नहीं हुआ है।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

16.2. सांसदों की भूमिका को प्रभावित करने वाले कारक

- 1985 में दल-बदल कानून के पारित होने के बाद से सांसदों के लिए संसद में जाने से पहले अपने कार्यों की तैयारी करना कम महत्त्वपूर्ण हो गया है। इसका कारण यह है कि मतदान की स्थिति में उनके लिए पार्टी व्हिप का पालन करना अनिवार्य सा हो गया है।
- गठबंधन की राजनीति के कारण विभिन्न दलों के मध्य संबंध अधिक जटिल हो गए हैं।

16.3. संसद के खराब कामकाज का प्रभाव

- **सरकार की जवाबदेहिता का अभाव:** यदि संसद ठीक से काम नहीं करती है, तो सरकार अपने कार्यों के लिए जवाबदेह नहीं रह जाती।
- **निम्न उत्पादकता:** 2016 के शीतकालीन सत्र में लोकसभा की उत्पादकता केवल 14% तथा राज्य सभा की उत्पादकता केवल 20% थी।
- संसदीय सत्र के संचालन में सार्वजनिक धन की उच्च लागत के कारण, इनके ठीक से न चलने से करदाताओं के पैसे की बर्बादी होती है।

16.4. सुझाव

- **न्यूनतम कार्य दिवस:** संविधान समीक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग ने सिफारिश की है कि राज्यसभा और लोक सभा की बैठकों के लिए न्यूनतम कार्य दिवसों की अवधि क्रमश: 100 और 120 दिन तय की जानी चाहिए। ओडिशा राज्य विधानसभा की बैठक के लिए न्यूनतम 60 दिन अनिवार्य करने वाला पहला राज्य बना है।
- **क्षतिपूर्ति:** यदि अवरोधों के कारण समय ख़राब हो जाता है तो उसकी क्षतिपूर्ति उसी दिन बैठक की समयावधि बढ़ाकर की जानी चाहिए।
- **महिला आरक्षण विधेयक** (108वां संविधान संशोधन विधेयक) को पारित कर महिलाओं के लिए संसद के दोनों सदनों और राज्य विधानसभाओं में 33% आरक्षण सुनिश्चित करना चाहिए।
- **विधायी प्रक्रिया को व्यवस्थित करना:** संसदीय समितियां इस प्रक्रिया में संस्थागत महत्व ग्रहण कर सकती हैं। ये समितियां विधायी इंजीनियरिंग के साथ-साथ आम जनता के हित में मुद्दों को उठाने और उनका पक्ष प्रस्तुत करने के लिए अवसर प्रदान करती हैं।
- **दल-बदल विरोधी कानून में बदलाव:** दल-बदल विरोधी कानून को पुनर्गठित किये जाने की आवश्यकता है। इसे केवल असाधारण परिस्थितियों में उपयोग किया जाना चाहिए, जिससे सांसद स्व-अभिव्यक्ति के अनुसार नियन्त्रण मुक्त होकर निर्णय ले सकें। उदाहरण के लिए, UK में एक स्वतंत्र वोट की अवधारणा है, जिसके अनुसार सांसद अपनी इच्छा से किसी विशेष विधायी विषय पर स्वतंत्र वोट दे सकता है।
- **बजट जांच प्रक्रिया में सुधार:** अमेरिकी संसदीय बजट कार्यालय के समान ही भारत को भी एक संसदीय बजट कार्यालय की जरूरत है। यह एक स्वतंत्र संस्था होगी और व्यय या राजस्व जुटाने की आवश्यकताओं के साथ किसी भी अधिनियम का तकनीकी और उद्देश्यपूर्ण विश्लेषण करने के लिए समर्पित होगी।

17. संसदीय गरिमा का ह्रास

- वर्तमान परिप्रेक्ष्य में संसद का काम केवल विधि निर्माण ही नहीं है। इसकी अनेक प्रकार की भूमिकाएं है जो परस्पर संबद्ध हैं। एक स्वस्थ लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में संसद की भूमिका कई रूपों में महत्वपूर्ण होती है, जैसे कार्यपालिका को निरंकुश होने से रोकना, राष्ट्रीय एकीकरण के माध्यम से राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित करना तथा ऐसी नीतियों का निर्माण करना जो लोक कल्याणकारी राज्य के आदर्शों को स्थापित करें।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- संसद एक सर्वोच्च विधायिका के रूप में विद्यमान है जो लोक आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करती है। अतः संसद से अपेक्षा होती है कि वह लोकमत का प्रतिनिधित्व करे। जनतांत्रिक शासन प्रणाली की नींव इसी सिद्धांत को प्रदर्शित करता है। लेकिन, हाल के दिनों में संसद की भूमिका में विपथगमन दृष्टिगोचर होता है। दूसरे अर्थों में यह संसद की गरिमा में हुए ह्रास को दर्शाता है। इसे निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है:
  - एकल दलीय व्यवस्था के अन्तर्गत, संसद की भूमिका प्रतिकूल रूप से प्रभावित होती है। चूंकि संसद से एक स्वस्थ नीति के निर्माण की अपेक्षा होती है। एकदलीय सरकार व्यवस्था में बहुमत दल की ही कार्यपालिका होती है। अतः संसदीय नियंत्रण की सीमाएं स्थापित होती हैं। इसमें कार्यपालिका की भूमिका ही अधिक महत्वपूर्ण होती है।
  - लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्गत सांसदों की स्वतंत्र स्थिति होती है जो लोगों के हितों का प्रतिनिधित्व करते हैं। परंतु, दलीय अनुशासन व्यवस्था के विकास से स्वतंत्रता की इस संकल्पना का हनन हुआ है। सदस्यों को अपने दल के प्रति निष्ठावान होना पड़ता है। जबकि संसद में स्वस्थ नीतियों के अंतर्गत कई ऐसे मुद्दे होते हैं जिसे दलगत राजनीति से ऊपर उठकर समझे जाने की आवश्यकता होती है।
  - संसद का एक प्रमुख कार्य है- विधि का निर्माण करना। विधि निर्माण में कई चरण होते हैं जिसमें उस विधि के प्रमुख पक्षों पर चर्चाएं होती है। इससे विधि को सम्यक् लोक आकांक्षाओं के अनुरूप भी बनाया जा सकता है। लेकिन, अधीनस्थ विधान की प्रवृत्तियों से संसद की उस भूमिका का ह्रास हुआ है। उसके अंतर्गत कार्यपालिका की शक्ति में वृद्धि हुई है। सरकारी कार्यों का स्वरूप अत्यधिक जटिल हो गया है। विधेयकों के निर्माण में तकनीकी ज्ञान एवं विशेषज्ञता की आवश्यकता होती है जिसे सरकारी सदस्य ही अधिकांशतः पूरे कर पाते हैं।
  - प्रधानमंत्री के नेतृत्व में कैबिनट व्यवस्था का विकास हुआ है। शासन व्यवस्था में निर्णय लेने एवं विधि के निर्माण में कैबिनेट की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। वास्तव में जो कार्य विधायिका का है, उसे कुछ अर्थों में कैबिनेट करने लगी है। इससे भी संसद की भूमिका में कमी आई है।
  - राजनीति के अपराधीकरण की प्रक्रिया से भी संसदीय गरिमा का ह्रास हुआ है।
  - हाल के दिनों में मीडिया के स्टिंग आॅपरेशन के माध्यम से संसद सदस्यों द्वारा रिश्वत लेकर प्रश्न पूछने के तथ्य प्रकाश में आए है। यह लोकतंत्र की भावना एवं संसदीय मर्यादा के विरूद्ध है।
  - विगत कुछ वर्षों में सदन की बैठकें भी कम होती जा रही है।

18. दलबदल विरोधी कानून की समीक्षा

मुद्दे

- किसी सदस्य की अयोग्यता से संबंधित मामले में अध्यक्ष के लिए कोई समय सीमा तय नहीं की गयी है जोकि इस क़ानून से बचाव का मुख्य रास्ता है।
- इस क़ानून के अनुसार पीठासीन अधिकारी का निर्णय अंतिम है और न्यायिक समीक्षा के अधीन नहीं है। बाद में, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि पीठासीन अधिकारी द्वारा अंतिम निर्णय लिए जाने तक न्यायालय कोई हस्तक्षेप नहीं करेगा। हालाँकि, अंतिम निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है।
- यद्यपि इस संबंध में न्यायिक समीक्षा का प्रावधान है (किहोतो होलोहन वाद, 1992), फिर भी न्यायपालिका निर्णय-पूर्व अवस्था में असहाय है।

समाधान

- पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए पूरी प्रक्रिया को स्पष्ट रूप से परिभाषित करने और प्रक्रिया के प्रत्येक चरण के लिए एक निश्चित और उचित समय सीमा निर्धारित करने की जरुरत है।
- सदस्यों की निरर्हता से संबंधित प्रश्न को सुलझाने की शक्ति अध्यक्ष से लेकर किसी अन्य संवैधानिक निकाय जैसे भारत के निर्वाचन आयोग को सौंपी जा सकती है।

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

- सर्वोच्च न्यायलय ने 1992 के **किहोतो होलोहन** मामले में यह आदेश दिया कि पार्टी को केवल सरकार की स्थिरता जैसे महत्वपूर्ण स्थिति में ही मत हेतु निर्देश जारी करना चाहिए।
- इस कानून में संशोधन की आवश्यकता है ताकि यह प्रतिनिधिमूलक लोकतंत्र के साथ समन्वय रख सके और पार्टी नेतृत्व के निर्देशों का अंधानुकरण करने की परंपरा विकसित न हो। इससे विधायकों के असहमति के अधिकार और स्वतंत्र सोच को प्रोत्साहन मिलेगा जैसा कि अमेरिका, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया आदि जैसे विश्व के अन्य लोकतांत्रिक देशों मे प्रावधान है।

18.1. दलबदल विरोधी कानून के लाभ एवं हानि

लाभ

- यह सदस्यों को पार्टी के प्रति निष्ठावान बनाते हुए सरकार को स्थिरता प्रदान करता है।
- यह सुनिश्चित करता है कि पार्टी के समर्थन और पार्टी के घोषणापत्रों के आधार पर निर्वाचित उम्मीदवार पार्टी की नीतियों के प्रति वफादार रहें। इसके अलावा पार्टी के अनुशासन को बढ़ावा देता है।

हानि

- सांसदों को पार्टी बदलने से रोककर, यह संसद और जनता के प्रति सांसदों की जवाबदेही को कम कर देता है।
- यह पार्टी की नीतियों के खिलाफ असहमति को दबाकर सदस्यों की वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करता है।

18.2. दलबदल विरोधी कानून में सुधार हेतु विभिन्न निकायों/समितियों की सिफारिशें

चुनाव सुधारों पर दिनेश गोस्वामी समिति (1990)

- निरर्हता को ऐसे मुद्दों तक सीमित किया जाना चाहिए जहां (क) कोई सदस्य स्वेच्छा से अपनी राजनीतिक पार्टी की सदस्यता त्याग देता है, (ख) कोई सदस्य मतदान से अनुपस्थित है, या विश्वास प्रस्ताव अथवा अविश्वास प्रस्ताव पर पार्टी व्हिप के विपरीत वोट करता है।

दलबदल विरोधी कानून पर हलीम समिति (1998)

- वाक्यांश 'स्वेच्छा से किसी राजनीतिक पार्टी की सदस्यता त्यागना' को व्यापक रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।
- सरकारी कार्यालयों का अधिकारी बनने या किसी अन्य पार्टी में शामिल होने पर निषेध जैसे प्रतिबंध निष्कासित सदस्यों पर लगाया जाना चाहिए।
- राजनीतिक दल जैसे शब्द को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाना चाहिए।

विधि आयोग (170 वीं रिपोर्ट, 1999)

- विभाजन और विलय के मामलों में निर्हरता से छूट देने वाले प्रावधानों को हटाया जाना चाहिए।
- दलबदल विरोधी कानून के तहत, चुनाव पूर्व गठबंधनों से राजनीतिक दलों की तरह व्यवहार किया जाना चाहिए।
- सरकार के संकट में होने की स्थिति में राजनीतिक दलों द्वारा व्हिप जारी करने पर एक सीमा होनी चाहिए।

चुनाव आयोग

- चुनाव आयोग की बाध्यकारी सलाह पर राष्ट्रपति / राज्यपाल द्वारा दसवीं अनुसूची के तहत निर्णय लेना चाहिए।

संविधान समीक्षा आयोग (2002)

- दलबदल करने वाले को शेष अवधि के दौरान किसी भी सार्वजनिक पद या लाभप्रद राजनीतिक पद धारण करने से रोक दिया जाना चाहिए।
- किसी सरकार को गिराने के लिए दलबदल करने वाले व्यक्ति के द्वारा दिए गए वोट को अमान्य माना जाना चाहिए।

VISION IAS

Website - https://upscpdf.com

https://t.me/UPSC_PDF Website - https://upscpdf.com https://t.me/UPSC_PDF

19. संसद में विपक्ष की भूमिका

- संसदीय लोकतंत्र की परिकल्पना एकदलीय व्यवस्था में संभव नहीं है। यदि किसी संसद या विधानमण्डल में एक ही दल हो और वहीं सरकार का संचालन करे तो इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि वह सरकार तानाशाही स्वरूप अपना लेगी। अतः एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में विपक्ष का होना आवश्यक शर्त है। सुदृढ़ और संगठित विपक्ष परिपक्व लोकतंत्र का प्रतीक होता है और ऐसा विपक्ष सदैव वैकल्पिक सरकार देने के लिए तत्पर रहता है। लोकतंत्र की मान्यता है कि एक संगठित तथा निश्चित विपक्ष सरकार के विरूद्ध हो।
- सत्तारूढ़ दल विपक्ष द्वारा किए जाने वाले आलोचना के भय से प्रत्येक क्षण भयभीत रहता है। यह सराहनीय विषय है कि भारत में विपक्ष को सरकारी मान्यता ही नहीं दी गई अपितु विपक्ष के नेता को कैबिनेट स्तर का दर्जा देकर वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाएं भी प्रदान की जाती है। यह राजनीतिक व्यवस्था सहनशीलता और सौहार्द्र का सर्वोतम पक्ष है।

विपक्ष के कार्य एवं दायित्व

- चुनाव, वास्तविक अर्थों में तब तक निष्पक्ष नहीं हो सकता, जब तक कि निर्वाचकों के सामने कम से कम दो या अधिक विकल्प मौजूद न हों। लोकतंत्र में विविध दलों का रहना आवश्यक है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में तो विपक्ष का दायित्व व्यापक है क्योंकि सत्तारूढ़ दल की तुलना में सभी विपक्षी दलों को सामान्यतया मतदान का बड़ा प्रतिशत प्राप्त होता रहा है। भारत में विपक्ष की भूमिका को निम्नलिखित बिन्दुओं के अंतर्गत प्रदर्शित किया जा सकता है:
- **लोकतंत्र को लोकपथ की ओर अग्रसरित करना:** लोकतंत्र में लोकमत सरकार का आधार स्तम्भ होता है। इस संदर्भ में चुनाव वह मानदण्ड है जो यह प्रकट कर देता है कि लोकमत किस राजनीतिक दल के साथ है। चुनाव में विजयी होने वाला दल सरकार का गठन करता है। इसके पश्चात् सत्ताधारी दल अपनी नीतियों और कार्यक्रमों को जन सामान्य तक पहुंचाने का प्रयास करता है। विपक्ष का लक्ष्य सदैव आगामी चुनावों में सत्ता प्राप्त करना होता है। अतः स्पष्ट है कि लोकतंत्र को लोकपथ पर लाने के लिए विपक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।
- **जनता में राजनीतिक जागरूकता लाने का प्रयास करना:** लोकतंत्र में शासन किसी का जन्मसिद्ध अधिकार नहीं होता। निश्चित समय पर स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव करवाना आवश्यक होता है। सत्तारूढ़ दल अपनी उपलब्धियों पर तथा विपक्ष सत्तारूढ़ दल की गलतियों पर जन समर्थन जुटाकर सत्ता प्राप्त करना चाहते हैं। विपक्ष सत्तारूढ़ दल की खामियों को प्रचार, भाषण, पोस्टर, दृश्य और श्रव्य साधनों द्वारा प्रकट कर जनता को संदेश देता है कि सत्तारूढ़ दल की नीतियां और नियत में भारी खोट रहा है वरना आमुक कार्य कभी का हो गया होता।
- **सत्तारूढ़ दल की निरंकुश प्रवृत्ति पर रोक:** सत्ता के नशे में सरकार पर यदि कोई नियंत्रण न हो तो संभव है, लोकतंत्र से 'लोक' शब्द का विलोप हो जाए। सरकार की निरंकुश प्रवृत्ति पर रोक लगाने के लिए विपक्ष की आवश्यकता होती है। यह सरकार से प्रश्न एवं पूरक प्रश्न पूछ सकती है, जिसका सत्तापक्ष को संतोषजनक उत्तर देना होता है। वर्तमान में तो सदन की कार्यवाही का सीधा प्रसारण होने से जनता को प्रत्यक्ष विवरण प्राप्त हो जाता है।
- **जनता एवं सरकार के मध्य सेतु:** विपक्ष निरंतर जनता के निकट सम्पर्क में रहकर शासन तथा जनता के बीच एक कड़ी का काम करता है। राजनीतिक दलों के व्यापक फैलाव के परिणामस्वरूप विरोध केवल संसदीय दीर्घाओं तक ही सीमित नहीं रहा है, गांव-गांव तक विरोधी दलों का विकास हो चुका है।
- **सत्तारूढ़ दल की अकर्मण्यता पर प्रहार:** लोकतांत्रिक प्रणाली में लगभग सभी राजनीतिक दल चुनाव के समय अपना चुनावी घोषणा पत्र जारी कर उन्हें देश व प्रदेश की जनता के समक्ष रखते हैं। विपक्षी दलों का यह कर्तव्य है कि यदि सरकार अपने घोषणा पत्र के अनुसार आचरण नहीं करती है या उसके कदम उस ओर नही बढ़ते हैं तो ऐसी स्थिति में विपक्षी दल जनता के सम्मुख इन्हें प्रमुखता से प्रदर्शित करते हैं।

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS.

Website - https://upscpdf.com

Courier service Available

whatsapp NO 9310521834

DEEPAK PHOTOSTAT

& Consultant

Most appreciated SHOP by TOPPERS from last many years..
By a survey No.1 Shop in INDIA who deals with IAS,IES, PCS,SSC,Bank Po, NET/JRF/All Competitive exams.

Study Materials for IAS,PCS,SSC BANK PO NET/JRF,

Old/New NCERT,IGNOU etc are available here.

741/4,Near AGGARWAL SWEET,DR.MUKHERJEE NAGAR,DELHI-110009

E-mail; deepakkumarnirala88@gmail.com